जीवन
संध्या
आशापूर्णा देवी

आदरणीय कविशेखर
श्री कालिदासराय
को सादर

जीवन-संध्या

उनकी गाड़ी जिस समय इनके दरवाजे पर आकर रुकी, उस समय तक शहर के इस मुहल्ले मे दैनिक काम के पहिये ने पूरी रफ्तार से घूमना शुरू नहीं किया था। यहाँ तक कि सड़क भी नीद से उठकर जम्हाई लेती हुई सग रही थी।

फुटपाथ पर जहाँ-तहाँ, भाग्यवानों के मकानों के बाहर ओने-कोने में या किसी दुकान के साइनबोर्ड को सुरक्षित रखने के लिए बढ़ाये गये शेड के नीचे जो बेचारे गरीब गहरी नींद के गुलगुले बिछावन पर सोये हुए थे, उनकी गहरी नींद को तोड़ने के लिए उस समय तक रास्ते के होजपाइप ने मटमैला पानी उगलना नहीं शुरू किया था। यहाँ तक कि दुकान-दौरियों के भी दोनों पट बन्द आँखों की तरह मूँदे हुए थे, कोई-कोई ही एक आँख खोलकर ताक रहा था।

उस समय अखबार वाले अपनी साइकिल की घंटी बजाकर खास-खास मकानों की खुली खिड़की या बरामदे में रोज का अखबार फेंककर तेजी से भाग रहे थे, एक-आध बोतलबन्द दूध वाले भी अपनी साइकिल-गाड़ी को ग्राहकों के दरवाजों पर रोक-रोककर सीटी बजाकर अपने आने की सूचना देते हुए नजर आ रहे थे। दूध लेने के लिए बन्द दरवाजे का एक पल्ला जरा-सा खुलकर किसी का हाथ आगे बढ़ता और फिर दरवाजों के पीछे जाकर अदृश्य हो जाता।

गति की तत्परता घर-घर चौका-बासन करने वाली नौकरानियों मे ही नजर आ रही थी। इनकी संख्या कम नहीं थी। अभी भी वहाँ पर चारों तरफ काफी संख्या में झोपड-पट्टियाँ आबाद थी। उनके जल्दी ही वहाँ से उखाड़े जाने की अफवाह जरूर थी लेकिन निश्चित तिथि कोई नही जानता था। कम-से-कम उन बस्तियों मे रहने वालों को तो कोई फ़िक्र नही थी। जरा-जरा-सी बातों मे परेशान होने की उनकी आदत ही खतम हो गयी थी। वे जानते थे कि होनी होकर रहेगी। इसीलिए परम निर्लिप्त भाव से वे अपनी गृहस्थी जमाए हुए आखिरी समय तक वहाँ डटे रहने वाले थे।

यह इलाका कुछ दिन पहले तक एक उपनगर के रूप मे जाना जाता था। फिलहाल पूर्वार्द्ध के रूप को गायब करके शहर ने इसे अपने पंजे में समेट लिया था। शहर ने इसे अपने कब्जे मे जरूर कर लिया था लेकिन वह पूरी तौर से अभी इसे अपने अनुरूप नही बना पाया था। मुख्य मार्ग से थोड़ा इधर-उधर हटकर नल, सेनिटरी ड्रेन आदि का अभाव देखकर ही इस बात का सुबूत मिल जाता था।

लोगों का मकान खास सड़क पर ही था। मकान देखने में अच्छा ही
था। उसे देखकर बिल्कुल नया तो नहीं कहा जा सकता था लेकिन वह
पुराना भी नहीं था।

जिन दिनों यहाँ की जमीन पानी के भाव बिक रही थी, उन्हीं दिनों निरुपम,
ांजन और इन्द्रनील के पिता अनुपम मित्तिर ने यह जमीन खरीदी थी। इसके
जब जमीन अपने असली दाम पर आ गयी थी, तब, उन्हीं दिनों, रिटायर
ने के बाद उन्होंने बड़े उत्साह से इस मकान को बनवाना शुरू किया था।

लेकिन उन्हें मालूम नहीं था कि कहीं और भी उनके नाम से जमीन ली जा
रही थी। इसकी नोटिस अचानक मिली थी। बीवी-बच्चों को साथ ले जाने की
जगह नहीं थी, फलतः उन्हें अकेले ही जाना पड़ा। उन दिनों इस मकान की छत
ढाली जा रही थी।

कुछ दिनों के लिए काम रुक गया, फिर शुरू हुआ और एक दिन खत्म भी
हो गया। सब कुछ अनुपम मित्तिर की योजनानुसार ही हुआ, इसमें कोई कसर
नहीं छोड़ी गयी। कमरों की दीवारों पर रंग-रोगन हुआ, बाथरूम में मोजेक का
फर्श बना। सुचिन्ता मित्तिर का कहना था, जैसा उनके पति चाहते थे सब कुछ
वैसा ही हो।

सिर्फ गृह-प्रवेश की रस्म ही अनुपम मित्तिर की योजनानुसार नहीं निभायी
गयी थी। सुचिन्ता मित्तिर बगैर किसी आडम्बर के एक दिन अपने माल-असबाब
और तीनों बेटों के साथ अनुपम कुटीर में रहने चली आयी थी।

उनके आने के बाद काफी तेज रफ्तार से आस-पास मकान खड़े होने लगे
में छोटे-बड़े, दरमियाने, बहुत बड़े, चमकदार, साफ-सुथरे, आधुनिक, अ
आधुनिक सभी तरह के मकान शामिल थे। इन मकानों की रौनक के अ
अनुपम मित्तिर का मकान करीब-करीब फीका ही पड़ गया। लेकिन इस फीके
का अनुपम कुटीर के वासिन्दों पर कोई असर ही नहीं पड़ा। वे लोग अपने अं
के बंधे-बंधाये ढर्रे में मस्त थे।

अगर भाइयों में सबसे छोटा इन्द्रनील बाहर से आकर कभी कहता थ
"उस कोने वाली जमीन पर एक और मकान बन रहा है," तो "कौन ब
है" या "कैसा बन रहा है," इस तरह की बातें कहकर कोई बात ब
बढ़ाता था। शायद कभी सुचिन्ता कहती, "तो क्या जमीन ऐसे ही पड़ी र
या कभी नीलांजन कहता, "तुम सड़क पर घूम-फिर कर क्या यही दे
हो कि कहाँ पर, किसका क्या बन रहा है?"

निरुपम इतना भी नहीं कहता था।
की एक नयी बनी यूनिवर्सिटी में अध्यापन करता
भटकने के बाद वर्मा शेल

तनख्वाह वाली नौकरी जुटा ली थी। बस इन्द्रनील ही अभी एम० एस-सी० कर रहा था।

घर में अनुपम के जमाने का एक नौकर था जो घर-गृहस्थी का सारा भार सँभाले हुए था, एक नौकरानी थी जो दो वक्त आकर छोटा-मोटा काम करके चली जाती थी। चूँकि ये लोग शायद ही कभी किसी-किसी रिश्तेदार के यहाँ जाते थे, इसीलिए इनके यहाँ भी नाते-रिश्तेदार कभी-कभार ही आया करते थे।

मुहल्ले में भी किसी से जान-पहचान नहीं थी। मुहल्ले में आये हुए एक-आध नये लोग भी पड़ोसी धर्म के नाते यहाँ आकर सम्पर्क नहीं बना पाये। सुचिन्ता और सुचिन्ता-तनयों की निर्लिप्तता के कारण वे कमलपत्र से जलबिन्दु की तरह ढुलक गये।

उनकी टैक्सी अगर दिन की भरपूर रोशनी में आकर उनके दरवाजे पर खड़ी हुई होती तो जरूर अड़ोस-पड़ोस की कौतूहली नजरें आपस में मुखातिब होकर पूछ बैठतीं, "माजरा क्या है? इस अनुपम कुटीर में भला कौन आ सकता है?" तब आने वाले को बिना एक नजर देखे कोई भी अपनी खिड़की से नहीं हट पाता।

लेकिन वह टैक्सी जब यहाँ आकर रुकी तब अधिकतर मकान नींद की खुमारी में डूबे हुए थे। थोड़ी बहुत हलचल थी भी तो वह घर की कुछ खास जगहों में—रसोईघर, भण्डारघर, स्नानघर—आदि में थी।

जैसा अनुपम कुटीर में था।

हालाँकि अनुपम कुटीर में काम का पहिया कभी भी तेज रफ्तार से नहीं घूमता था, न उसकी धड़-धड़ाहट से उस घर में रहने वाले चार सभ्य-शान्त लोगों की दिनचर्या में कोई बाधा ही पड़ती थी। लेकिन अनुपम के जमाने में मामला बिल्कुल उलटा था। वे खुद ही सारे समय गुल-गपाड़ा मचाये रहते थे। रोज के भोजन में अगर किसी दिन छप्पन व्यंजनों की सूची में कोई कमी रह जाती तो वे घर में महाभारत मचा देते थे। यार-दोस्तों की नित्य की बैठकों के आयोजन में किसी दिन कोई त्रुटि रह जाने पर आसमान सिर पर उठा लेते थे। साथ ही बातें तो वह इतनी अधिक करते थे कि घर के और चार प्राणियों की खामोशी को कोई दूसरा समझ ही नहीं पाता था। खैर, एक दिन इसी सारे शोर-गुल को अपने साथ लेकर उन्होंने किराये के मकान से सदैव के लिए विदा ले ली।

अनुपम कुटीर हमेशा से खामोश था।

यहाँ तक कि पुराने दिनों का नौकर मुबल जो चौबीसों घण्टे बाबू से डाँट खाता रहता और चौबीसों घण्टे घर के नौकर-नौकरानियों-ड्राइवर से झगड़ा करता फिरता था, वह भी खामोश और गूँगा हो गया था।

मुँह से कुछ न कहकर मुबल ने स्वीकारात्मक भाव से सिर हिला दिया।

लड़की अपने पिता का हाथ पकड़कर बिना किसी निर्देश के आगे बढ़ आयी और सीढ़ी से चढ़कर ऊपर चली गयी। अपने हाथ में सूटकेस और बेडिंग थामे मुबल चकित होकर उन्हें देखता रह गया।

सीढ़ी से चढ़ते ही सामने पड़ी मेज-कुर्सियां नजर आयीं।

इन्हीं पर सुचिन्ता और उनके बेटे बैठकर चाय पीते और अखबार पढ़ते थे।

"पिताजी, तुम यहीं बैठ जाओ।"

उसने बैठने का इशारा किया।

उस व्यक्ति ने असहाय दृष्टि से देखकर कुछ संकोचपूर्वक कहा, "देख लिया न बेटी, यहां कोई नहीं है। जो यहाँ थे, वे सब मर गये। फिर तुम मुझे लेकर यहाँ क्यों चली आयीं?"

"तुम भी कैसी बातें करते हो पिताजी। सुचिन्ता बुआ अभी जीवित हैं।"

"गलत कह रही हो नीतू," उस व्यक्ति ने जिद भरे स्वर में कहा, "कहीं कोई नहीं है। सब मर गये हैं।"

नीतू अथवा नीता ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा, "छिः पिताजी क्या ऐसी बातें कही जाती हैं। जरा बताना तो ऐसी बातें सुनकर सुचिन्ता बुआ क्या सोचेंगी?"

"ऐं, कुछ सोचेंगी?"

लगा जैसे वे डर गये हों।

"बिल्कुल। आखिर वे जीवित हैं, स्वस्थ हैं।"

अभी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि सुचिन्ता के कमरे का दरवाजा खुला साथ ही इस गूंगे मकान में एक तीखा आर्तनाद गूंज गया,—"कौन हो?"

"मैं हूं बुआजी!"—नीता ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श करते हुए कहा, "आखिर हमें आपके पास आना पड़ ही गया।"

"आना पड़ गया? मेरे पास आना पड़ गया!" सुचिन्ता की आँखों में एक डर समा गया, "आखिर क्यों?"

"वाह! क्या हमें नहीं आना चाहिए था?"

अचानक सुचिन्ता भी नीता के पिता की तरह ही असहाय दिखने लगी थीं। अथवा हतप्रभ हो गयी थीं। शायद इसीलिए कुछ संकोचपूर्वक वे बोलीं, "बिना कोई खबर दिये हुए? यहीं ही क्यों? तुम्हारे तो कई नाते-रिश्तेदार भी इसी शहर में रहते हैं।"

कोई जवाब देने के पहले ही नीता अचानक चौंक पड़ी। उसने अपनी पीठ पर मृदु कोमल भारी हाथ का स्पर्श महसूस किया। साथ ही उसने सुना, "देख लिया नीतू, मैं झूठ नहीं कहता था कि हमारा कोई नहीं है, सब मर गये हैं।"

"ओह पिताजी ! ऐसी बातें नही कहते । अभी सुचिन्ता बुआ जीवित हैं, स्वस्थ हैं । तुम्हारे सामने ही तो खडी हैं ।"

"मुझे बेवकूफ बना रही हो नीतू ? वह सुचिन्ता क्यों होने लगी ? सुचिन्ता के पति के पास काफी रुपये हैं । सुचिन्ता की देह पर ढेरों गहने हैं ।"

"उनके सारे गहने चोरी हो गये हैं ।"

"चोरी हो गये ?" वह थोडे से परेशान लगे लेकिन फिर नाराज होकर बोले, "तो आखिर वह दुबारा खरीद क्यों नहीं देता । कैसा पति है वह ?"

"देंगे, जरूर देंगे । तुम तो आ ही गये हो, अब सब ठीक हो जायेगा ।"

"वाकई, सब ठीक हो जायेगा ?"

"बिल्कुल ।"

सुचिन्ता अपने दरवाजे से हटकर आगे बढ़ आयी । अब तक वे दरवाजे के दोनों पल्लों को तुरन्त बन्द कर देने वाली मुद्रा में उन्हें दोनो हाथों से पकडे हुए खडी थी ।

अनुपम कुटीर की हवा कुछ बोझिल हो उठी । बेहद धीमी आवाज मे सुचिन्ता ने पूछा, "कितने दिनो से यह हाल है ?"

"कुछ ही दिन हुए, धीरे-धीरे करके—" नीता ने कातर होते हुए कहा, "बुआ मेरी थोड़ी मदद करनी होगी ।"

"मदद ! तुम्हारी मदद करनी होगी ।"

"हाँ बुआ । पिताजी को स्वस्थ करने के लिए ।"

सुचिन्ता ने असहायता भरे स्वर मे कहा, "लेकिन मेरे बेटे क्या सोचेंगे ।"

यह कोई प्रश्न नही था, जैसे सिर्फ आत्म-जिज्ञासा थी ।—

"हो जायेगा, सब ठीक हो जायेगा ।"

लेकिन नीता के स्वर मे इतना आत्मविश्वास किस बात का था ।

क्या नीता ने सुचिन्ता के बेटो के बारे मे नही सोचा था ? उनके विरोध को क्या नीता सँभाल सकेगी ?

"तुम लोग आपस में फुसफुसाकर कैसी बातें कर रहे हो ?"—गजे सिर वाले व्यक्ति ने पूछ लिया ।

"कुछ नही पिताजी, बुआ पूछ रही हैं, तुम नाश्ते मे क्या लेते हो ?"

"पूछ रही है ? क्यों ?" वे अपनी भौंहे सिकोडते हुए बोले, "क्या सुचिन्ता को मालूम नहीं है ?"

"यह तो पुरानी बात हो गयी पिताजी, क्या अब तुम डॉक्टर की राय के अनुसार नही चलते ?"

"अरे हाँ, हाँ !" और वे अपने सफेद दाँतो को झलकाकर बोले, "देख लिया सुचिन्ता, मैं भी कितना भुलक्कड़ हो गया हूँ ।"

तुम वाकई सुचिन्ता हो ? पहले वाली सुचिन्ता ? सुचिन्ता तो आभूषणों से लदी रहती थी।"

अब तक सुचिन्ता के तीनों बेटों की भी आंखें खुल चुकी थीं, अपने-अपने कमरों के दरवाजों के पर्दों को सरकाकर वे सब चकित होकर खड़े हुए थे। यह जरूर था कि सुचिन्ता की तरह वे सभी 'कौन ?' कहकर चीख नहीं पड़े थे। उन्हें देखकर सिर्फ यही लगता था कि वे सब जैसे अपने-अपने कमरों से बाहर निकलना भूल गये हों और चकित होकर सोच रहे हों—

ये कौन हैं ?

ये कब आये ?

इनके यहां आने की बात क्या उनमें से किसी को मालूम थी ?

इन वृद्ध सज्जन को क्या कभी उन लोगों ने पहले भी देखा था ? लगता तो है, वही जब एक बार दिल्ली या आगरा कहीं घूमने गये थे। हां, याद आया दिल्ली में ही। कहीं घूमने जाते हुए सुचिन्ता अचानक ठिठक गयी थीं, सामने से आने वाले सज्जन को देखकर वे 'कौन' कहकर चीख पड़ी थीं।

ठिठक तो वे सज्जन भी गये थे साथ ही उनके चेहरे पर भी समान बेचारगी का भाव फूट पड़ा था। क्या यह वही सज्जन हैं ? या सिर्फ भाव-साम्य है ?

शायद यही होगा।

लेकिन—

उसके बाद जाने क्या हुआ ?

ठीक से याद नहीं। शायद अनुपम शोर मचाते हुए नजदीक चले आये थे। मां आगे बढ़ गयी थीं।

लेकिन यह लड़की ?

नहीं, इसे तो इन लोगों ने पहले कभी भी नहीं देखा।

"कौन है, मां ?"

इन्द्रनील कमरे से बाहर निकल आया, मां के पास आकर उसने बहुत धीमी आवाज में पूछा।

"कौन है, मां ?"

"कौन है !"

सुचिन्ता क्या कहे, समझ नहीं पायी ?

कौन-सा परिचय दे ? देने को है भी क्या ? सुचिन्ता मित्तिर के किस तरह के रिश्तेदार हो सकते हैं ये सुशोभन मुखर्जी ?

यह लड़की सुचिन्ता को ऐसे संकट में फंसाने के लिए क्यों चली आयी ? जाने क्या नाम है उसका। नाम ? नाम तो वाकई नहीं मालूम। पूछें क्या ?

फिलहाल सुशोभन ने ही संकट से मुक्त किया। इस लड़की का नाम पूछने

की असुविधा से, साथ ही इन्द्रनील के प्रश्नों का जवाब देने की विपत्ति से भी अपनी कन्या की हथेली पकड़कर डरे हुए से उन्होंने पूछा, "नीतू ये लोग कौन हैं ? कौन हैं ये ?"

नीता बहुत दिनों से सुशोभन से निपट रही थी, इसलिए न वह दुखी होती थी न परेशान। वह बड़ी सहजता से बोली, "तुम्हारा भी जवाब नहीं पिताजी वाकई तुम बहुत भुलक्कड़ होते जा रहे हो। ये लोग सुचिन्ता बुआ के बेटे हैं न ?"

"बेटे ? सुचिन्ता के इतने बेटे हैं ? मेरी सिर्फ एक लड़की है। समझी सुचिन्ता, सिर्फ एक। जब इतनी-सी थी, तभी इसकी माँ मर गयी। इसके बाद तो खैर, सभी मर गये।" ऐसी स्थिति में सुचिन्ता क्या अपने लड़कों से नजरें मिलाती ? क्या वे लड़कों की उपस्थिति से बेखबर हो जाती ?

शायद यही सुविधाजनक होगा।

शायद इसीलिए वे भी अत्यन्त सहजता से बोलीं, "वाह ! यह तो खूब रही, तुम सभी को मारे डाल रहे हो ? यह जो मैं हूँ ! क्या मैं मर गयी हूँ ?"

"अरे हाँ ! हाँ ! तुम तो जिन्दा हो।"

सुशोभन आश्वस्त हुए।

लगा सुचिन्ता के बेटे भी आश्वस्त हुए। उन्होंने सोचा, माँ के कोई सम्बन्धी होंगे। सम्बन्ध जरूर बहुत दूर का होगा, तभी इन लोगों ने इन्हे पहले कभी नही देखा, न सुना। बूढ़ा कुछ पागल-वागल लगता है। लेकिन ये लोग यहाँ आये क्यों ? क्या इन लोगों के यहाँ आने की बात थी ? और इस बात को सिर्फ सुचिन्ता ही जानती थी ? ताज्जुब है। और यह लड़की भी कब से सुचिन्ता के इतना करीब हो गयी थी ?

नाम पूछने की असुविधा से सुशोभन ने मुक्ति दिला दी थी। इसीलिए सहज होकर सुचिन्ता ने पूछा, "इतनी सुबह तुम लोग किस गाड़ी से आयी हो नीतू ?"

नीता हँस पड़ी, "उस दुर्भाग्य की कहानी को अब मत पूछिए बुआ। हम लोग क्या आज आये हैं ? रात भर तो वेटिंग रूम में पड़े रहे।"

"आखिर क्यों ?"

"क्या करती ? आने की बात तो शाम सात बजे की थी। गाड़ी तीन घंटे लेट आयी। उतनी रात को कहाँ मकान ढूँढती फिरती, यहाँ पहले कभी आयी भी नही थी।"

"ओ हो, तब तो कल रात तुम लोगों को काफी परेशानी हुई होगी ? नीतू अब झटपट नहा-धोकर कुछ खा-पी लो—सुशोभन, तुम भी तो नहाओगे न ?"

"अगर नीतू इजाजत दे।" सुशोभन ने कहा।

"हाँ बाबूजी, तुम भी नहा लो। कल नींद अच्छी नहीं आयी थी

अचानक नीलांजन नीता से पूछ बैठा, "यहाँ शाम को दिल्ली से कौन-सी गाड़ी आती है ?"

"दिल्ली से ? मुझे क्या मालूम !" दबंग नीता भी जैसे कुछ पलों के लिए सहम गयी, "लेकिन हम लोग तो दिल्ली से नहीं आ रहे हैं। बाबूजी को लेकर मैं कुछ दिनों के लिए दार्जिलिंग गयी थी।

"ओह।"

"लेकिन हम लोग दिल्ली में रहते हैं, यह आपने कैसे जाना ?"

नीलांजन के ओंठों पर एक बारीक व्यंग्य मुस्कान फूट पड़ी, "ठीक वैसे ही, जैसे आपने हम लोगों का 'अनुपम कुटीर' में रहना जान लिया।"

अब संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी।

नीलांजन ने पहचान लिया। वही दिल्ली वाले सज्जन हैं। जिनसे रास्ते में मुलाकात होने पर सुचिन्ता ठिठक गयी थीं और उनके मुँह से चीख निकल गयी थी।

सुबल सूटकेस रखकर चला गया। सूटकेस आकार में बहुत बड़ा था, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में सफेद पेंट से लिखा हुआ था एस० मुखर्जी। छोटे हर्फों में दिल्ली का कोई पता भी था।

एस० मुखर्जी सुचिन्ता मित्तिर के मायके के किस तरह के सम्बन्धी हो सकते थे ! क्या सुचिन्ता के मायके का कोई दिल्ली में भी रहता था ? ऐसा सम्बन्धी जो अचानक अपना माल-असबाब लेकर आ-धमक सकता हो। यह कैसी बात हुई ! और होगी भी क्यों ! नहीं, किसी युवती को देखकर नीलांजन विह्वल नहीं सकता था। बल्कि वह मन ही मन खीझ ही रहा था।

वे लोग नहाने चले गये।

सुचिन्ता नीता को सब कुछ दिखाकर-समझाकर लौट आयीं। उन्होंने जोर की हाँक लगायी, "सुबल !"

नौकरानी संध्या चौंककर सिर उठाते हुए पूछ बैठी, "कौन ?" उसे यहाँ इतने दिन काम करते हो गये थे लेकिन ऐसी ऊँची आवाज तो उसने पहले कभी नहीं सुनी थी।

"जी, आया !" सुबल ने भी ऊँची आवाज में जवाब दिया, फिर साथ ही साथ चौंक गया। अपनी आवाज खुद उसे ही बेगानी लगी।"

"दो व्यक्तियों का खाना और बना लेना, समझे !"

"अच्छा।" सुबल जाने लगा, सुचिन्ता ने उसे फिर बुलाकर कहा, और सुनो, जरा बढ़िया मिठाई ला सकोगे ?"

मगर सुबल के चौंकने की बारी खत्म हो गयी थी, लगा उसे अब अपनी

आवाज सुनने की आदत डालनी ही पड़ जायेगी। बोला, "जा क्यों नहीं सकूँगा ? कहिए क्या लाऊँ ?"

"जो भी मिले। रसगुल्ला ! रसगुल्ला ही ले आना। रुपये दूँ ?"

"जी, अभी मेरे पास हैं।"

सुवल तेजी से सीढ़ियाँ उतरने लगा। सहसा नीलांजन की तीखी झल्लाहट उसकी पीठ पर मुक्के जैसी आकर लगी, "इनको इस तरह से बीच रास्ते मे क्यों रख गया।" इनको से उसका मतलब बड़ा सूटकेस और बिस्तरबंद से था।

क्या गूँगा मकान बोलने लगा ?

मुखरित हो उठा ? चचल हो उठा ?

कुछ ही देर बाद सुचिन्ता के कमरे मे नीलांजन ने प्रवेश किया।

"यह बात हम लोगों को पहले से बता देने से क्या नुकसान हो जाता माँ। यह तो तय था कि हम लोग मना नहीं करते।"

बेटे के इस अप्रत्याशित अभियोग से क्या सुचिन्ता के चौंकने की बारी थी ? या अपने को आहत महसूस करना चाहिए था ? इसी बात के लिए क्या वे सारे समय खुद को तैयार नहीं कर रही थी ? क्या उन्होंने नीता के सामने सबसे पहले खुद ही से यह असहाय सवाल नहीं पूछा था—"मेरे बेटे क्या सोचेंगे ?"

वे बोलीं, "तुम गलत समझ रहे हो नीलांजन, उनके आने का पता तो मुझे भी नहीं था।"

"क्या यह एक विचित्र किस्म की अविश्वसनीय घटना नहीं लगती ?"

सुचिन्ता ने सिर उठाकर देखा, उसका सौम्य शिष्ट लड़का सहसा न जाने कैसा अशिष्ट लगने लगा था। इसके बावजूद उन्होंने स्वयं को संयत रखा, बोलीं, "दुनिया मे न जाने कितनी अविश्वसनीय घटनाएँ घटती रहती हैं, इसको भी उसी तरह की एक घटना समझ लो।"

"उनके तो दिमाग में भी कुछ गड़बड़ी लगती है।"

"हाँ, मानसिक रोग है। दवा कराने के लिए कलकत्ता आये हैं। लुम्बिनी मे दिखलाना है।"

"लेकिन यह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आ रहा है कि इस काम के लिए इस मकान को ही क्यों चुना गया ?"

"यह 'क्यों' तो मेरी भी समझ मे नहीं आ रहा है।"

"क्या वाकई तुम्हारी समझ मे नहीं आ रहा है ?" यह कहकर सुचिन्ता को स्तब्ध करते हुए नीलांजन कमरे से बाहर निकल गया।

इसके काफी देर बाद जब नीता अपने पिता को लेकर बाहर चली गयी, तब सुचिन्ता अपने सबसे बड़े लड़के के पास जाकर हाजिर हुई। बोली, "मुझे

त किए ही नीता अपने पिता को लेकर यहाँ चली आयी है—क्या तुम
पर यकीन नहीं करते ?''

पम अपनी माँ की ओर देखकर बोला, "यह बात क्यों कह रही हो

"कहने की बात ही हुई है। ऐसा लगता है नीलांजन यकीन नहीं कर
है। वह मन ही मन नाराज हुआ-सा लगता है।"

"नाराज होने की क्या बात है ?"

"अगर मैं तुम लोगों को बिना बताये ऐसा कुछ करूँ, जो तुम लोगों के लिए
सुविधाजनक हो तो वह जरूर नाराज होने का पर्याप्त कारण होगा।"

निरुपम अपनी पुस्तक में आँखें गड़ाते हुए बोला, "तो अगर तुमने ऐसा
नहीं किया है तो सारी बातें ही खत्म हो जाती हैं।"

सुचिन्ता ने अपने लड़के के झुके चेहरे की ओर देखा, जिस पर परम निर्लि-
प्तता थी। जैसे अभी इसी वक्त अगर कोई उससे पूछ बैठे, "तुम लोगों के बीच में
क्या बातें हो रही थीं ?" तो वह बता भी नहीं पायेगा। बहुत सोच-विचार क
कहेगा, "क्या कहूँ, कुछ याद नहीं पड़ता।"

नीलांजन के व्यवहार से सुचिन्ता ने अपमानित-सा महसूस किया था।
लेकिन निरुपम की इस कदर उदासीनता भी क्या उनके लिए सुख और सम्मान
की बात थी ? इतनी उदासीनता भी भला किस काम की ?

इन कुछ ही घण्टों में क्या सुचिन्ता का मन बदल गया था ? क्या वे अनु-
पम कुटीर की इस उपलब्धि को भूल गयीं ? वे कटुस्वर में बोलीं, "लेकिन नीता
को लेकर तुम्हारे मन में कोई सवाल क्यों नहीं उठ रहा है ? तुम कुछ जानना
क्यों नहीं चाहते ?"

"वाह ! मुझे जानने की क्या जरूरत है ? जरूर कोई ऐसी बात होगी जि
कारण वह बड़ी सहजता से यहाँ चली आयी होगी।"

क्या सुचिन्ता अपने बेटे को इसी की कैफियत देने आयी थी ?
कहतीं, नहीं रे, ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने तो कभी उसे देखा तक
अपने स्वार्थवश वह दुःसाहस करके यहाँ चली आयी है। अपने पागल पि
साथ नाते-रिश्तेदारों के यहाँ जाने में उसे संकोच हुआ होगा, इसलिए इ
रिश्तेदार के यहाँ उसने धावा बोल दिया है।"

या यह कहतीं, "देखो तो कितनी मुश्किल है, हम लोगों की इस
गृहस्थी में—"

लेकिन वह यह सब कह नहीं पायी, बल्कि इससे उल्टी बात ही
"अब जब वे यहाँ आ ही गये हैं तो उनके लिए एक कमरा तो ख
देना पड़ेगा।"

निरुपम ने एक बार पुनः पुस्तक से अपनी नजरें उठायीं, बोला, "ठीक तो है माँ, जब तक जरूरत होगी, मैं नीचे के ड्राइंग रूम में आराम से रह लूँगा।"

"नीचे।"

"क्या हुआ ? क्या कोई नीचे के तल्ले में रहता नहीं ?"

सुचिन्ता बोली, "कोई रहता है या नहीं। यह नहीं कह रही हूँ, लेकिन इतनी अधिक असुविधा उठाने की जरूरत क्या है ? इससे अच्छा है कि इन कुछ दिनों के लिए इन्द्र और तुम दोनों एक ही कमरे में—"

यह बात निरुपम से कहने वाली नहीं थी। उसके स्वभाव को सुचिन्ता जानती थी। एक कमरे में दो व्यक्तियों का एक साथ रहना निरुपम की रुचि के सर्वथा विरुद्ध था। उसका कहना था कि अगर व्यक्ति का एकांत ही नष्ट हो गया तो रहा क्या ?" पहले वाले मकान में हर एक के हिस्से में अलग-अलग कमरा नहीं पड़ता था क्योंकि अनुपम के मेहमानों और नाते-रिश्तेदारों में से कोई न कोई कभी अकेले या दुकेले घर में डेरा डाले ही रहते थे। नीलांजन और इन्द्रनील हमेशा एक ही कमरे में लिखते-पढ़ते-सोते रहे, लेकिन निरुपम ने कभी वैसा नहीं किया। दुछत्ती में रहना पड़ता वह भी ठीक था, बस जो भी हो वह अपना हो। खैर, इस घर में यह व्यवस्था कायम हो गयी थी। अनुपम ने तीनों लड़कों के लिए तीन कमरे बना दिए थे।

तब भी सुचिन्ता ने आज इस प्रस्ताव को निरुपम के ही सामने रखा।

ऐसा क्यों किया ?

नीलांजन से नाराज होकर ?

या कि निरुपम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होगा, यह सोचकर की। या सुचिन्ता चाहती थी कि यह प्रस्ताव ही रद्द हो जाए ?

रद्द ही हुआ, निरुपम अपनी परिचित मुस्कान की छटा बिखेरते हुए बोला, "उससे तो बल्कि निचले तल्ले में रहना अधिक सुविधाजनक होगा माँ।"

भगवान् ही जानता था कि सुचिन्ता क्या चाहती थी।

लेकिन अचानक ही उनका पारा गर्म हो गया। बोली "कोई क्या करता है, क्या नहीं करता है, इसे नहीं कह रही मैं ? क्या जरूरत होने पर कोई अपने कमरे में रहने के लिए छोटे भाई को थोड़ी जगह नहीं देता ?"

एक नयी भाषा के धक्के से अनुपम कुटीर की दीवालें चौंक-सी गयीं ? इससे पहले तो कभी ऐसी बात सुनने में नहीं आयी थी।

"आश्चर्य है, इस बात से तुम इतना उत्तेजित क्यों हो रही हो ?"

निरुपम हक्का-बक्का रह गया, "मुझे नहीं मालूम कि इससे भी घटिया बात दुनिया में और कोई हो सकती है ? घर में मेहमान आये हैं, उनके व्यवस्था में थोड़ा-बहुत फेर-बदलकर लेना होगा, यही बात है न ?

रामस्या वना लेने से क्या लाभ होगा ? मुझे तो नीचे के तल्ले में रह कर
ई असुविधा नहीं महसूस होगी ।''
''वहां तुम कहाँ सोओगे ?''
''क्यों दीवान के ऊपर ? बहुत बढ़िया नींद लगेगी ।''
''यह तय नहीं है कि वे लोग यहां कितने दिन रहेंगे ?'' सुचिन्ता बोलीं ।
यहीं वे भूमिका तो नहीं बना रही थी ? काफी दिनों तक उनके रहने की संभावना
के सूत्र को क्या सुचिन्ता उनके सोचने-समझने के साथ नहीं जोड़े दे रही थीं ?''
लेकिन इस बात से निरुपम कतई आतंकित नहीं हुआ; न वह चौंका ही ।
बल्कि हँसकर बोला, ''उससे क्या ? अस्थायी-व्यवस्था अगर स्थायी हो भी जाए
तो व्यक्ति उसका भी अभ्यस्त हो ही जाएगा ।''
लेकिन सुचिन्ता को आज क्या हो गया था ? क्या उन्होंने हवा से लड़ने की
ठान ली थी ? इसलिए बेहद गंभीरतापूर्वक बोलीं, ''स्थायी होने की बात लेकर
इतनी दूर की कौड़ी लाने की कोई जरूरत नहीं है । खैर, ठीक है । तुममें से किसी
को भी तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं है, मैं ही उस ओर के छोटे वाले कमरे
में रह लूंगी ।''
'छोटे कमरे' से मतलब सीढ़ी के बगल में ट्रंक-सूटकेस आदि रखने वाला
बॉक्स कमरा था । वैसे कमरा अच्छा ही था, दक्षिण दिशा में एक खिड़की भी
थी, लेकिन गृहस्थी की सारी अतिरिक्त चीजें वहाँ ही ठुंसी हुई थीं ।
''तुम उस छोटे कमरे में रहोगी ?''
निरुपम चकित होकर बोला, ''उस बक्सों-पिटारों से भरे कमरे में ?''
''कुछ खाली कर लूंगी । वे दो लोग हैं—एक बड़ा कमरा न होने से उन
असुविधा होगी । नीता को रात में अपने पिता के पास ही रहना पड़ता है
सनकी आदमी का भला क्या भरोसा ।''
निरुपम पुनः हाथ की किताब पर नजरें गड़ाते हुए बोला, ''मेहमानों
लिए अगर तुम खुद ही इतना त्याग करना चाहती हो माँ, तो इस प्रसंग
उठाने की यहां कोई जरूरत ही नहीं थी । ठीक ही है ! तुम जो भी करोगी उ
है समझ-बूझकर ही करोगी ।''
निरुपम ने पुस्तक पर सिर्फ आँखें ही नहीं गड़ायीं बल्कि उसने अपने म
भी बाहरी दुनिया से फेर लेने की भंगिमा बना ली थी ।
लेकिन उसके झुके हुए चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान क्यों फूट पड़ी थी
देखकर सुचिन्ता स्तब्ध हो गयी थी और वहां से लौट आयी थी ।
लौटकर किसी दूसरी बात की चिन्ता किये बिना वे सिर्फ यही सोच
कि निरुपम की हँसी के पीछे आखिर राज क्या था ?
वे बहुत देर तक सोचती रहीं, इसके बाद उन्हें लगा शायद उस

ही ऐसा कुछ जरूर रहा होगा जिससे उसे हँसी आ गयी होगी, अन्यथा सुचिता ने ऐसा क्या कहा था कि उनके ऐसे विचित्र उदासीन लड़के को भी व्यंग्यपूर्वक मुस्कराने की जरूरत आ पड़े ?

ऐसा सोचकर मन ही मन वे आश्वस्त हुईं।

बहुत देर बाद काफी दिन चढ़े, नीपा अपने पिता और इन्द्रनील को लेकर लौटी। वह इन्द्रनील को भी जबर्दस्ती साथ ले गयी थी। उसे ही पटाते हुए बोली थी, "चलिए न मेरे साथ, कलकत्ते के राह-घाट पहचनवा दीजिएगा। मैं तो बिल्कुल अनाड़ी हूँ यहाँ।"

"क्यों, कलकत्ता पहले कभी नहीं आयी थी ?"

"वाह ! आऊँगी क्यों नहीं ? वह तो बाबू जी के संग उनकी बालिका बेटी होकर आयी थी। और वह भी उनके अपने रिश्तेदारों के यहाँ। उन लोगों ने खिलाया-पिलाया, घुमाया-फिराया, फिल्में दिखलायी। उन सभी को साथ लेकर पिता जी एक साथ तीन-चार टैक्सियों का जुलूस बनाकर कलकत्ता घूमने के लिए निकलते थे। उन दिनों रास्ता पहचानने की भला मुझे क्या जरूरत महसूस होती ?"

अनुपम कुटीर की बर्फीली ठंडक को झेलकर प्रकाश की ऊष्मा को प्रवेश करते देखकर ऐसा लगा कि इन्द्रनील की जान में जान आयी है। किसी से बातें करने का कोई मौका न पाकर शायद वहाँ उसका दम घुटने लगा था ? इसीलिए ऐसा अवसर पाकर वह खुशी से फूला नहीं समा रहा था। अधिक बातें करना इस घर के नियमों के खिलाफ था, शायद वह इस बात को भूल ही गया था।

इन्द्रनील ने हँसते हुए कहा, "कभी-कभी लड़कियाँ जानबूझकर बहुत बार बालिका अथवा नाबालिका बने रहना चाहती हैं।"

"लड़कियाँ क्या चाहती हैं, यह खबर अभी से आपने रखनी शुरू कर दी ? बड़े लायक लड़के हैं आप तो ?"

"लायक होने की बात तो आपने खुद ही स्वीकार कर ली है, तभी न पथ-प्रदर्शन का दायित्व भी सौंप दिया।"

"उसे कृपा ही समझिये। आपके दोनों बड़े भाई तो बेहद व्यस्त रहते हैं।"

"मुझे कैसे बेकार समझ लिया आपने ?"

"किसी को एक बार देखकर ही मैं उसे पहचान लेती हूँ। भगवान ने ऐसी एक विशेष क्षमता मुझे दे दी है।"

"तब तो"—इन्द्रनील हँसने लगा—"यह साफ जाहिर है भगवान की दी हुई क्षमता भी बीच-बीच में थोड़ी गड़बड़ हो जाती है।"

"ठीक है देखी जाएगी।"

सुचिन्ता अपने सबसे छोटे बेटे के खिले-खिले चेहरे की ओर चकित होकर देख रही थीं। इतनी बातें उसने आखिर कब सीखीं ? इतनी खुशी की बात भी क्या थी ?

जब वे लोग घूमकर लौटे तब तो वे और भी अधिक चकित हुईं, इतनी कि उसका कोई ठौर-ठिकाना भी उन्हें ढूंढ़े नहीं मिला।

उन्होंने पाया कि इन कुछ ही घंटों में दोनों एक दूसरे को तुम कह कर बुलाने लगे हैं।

लेकिन उन दोनों की ओर अधिक देर तक देखने का समय कहाँ मिला सुचिन्ता को, इस बीच सुशोभन उनके बहुत निकट खिसक आये थे, फुसफुसाकर कहने लगे, "देखो सुचिन्ता, तुम्हारा यह लड़का तो बिल्कुल कायदे का नहीं है।"

सुचिन्ता ने आशंकित नजरों से देखा, ख्याल नहीं किया कि सुशोभन उनके कितने निकट सरक आये थे।

वे डरकर सोचने लगीं, जाने क्या बात हुई कहीं पागल सोचकर इन्द्रनील ने उनकी अवमानना तो नहीं कर दी ?

बिना कुछ पूछे वे सिर्फ ताकती रहीं।

"उसे तुम जरा डाँट देना।"—सुशोभन ने कहा, "गाड़ी में सारे समय वह मेरी लड़की से झगड़ता रहा।"

यही बात है तो फिर ठीक है।

सुचिन्ता आश्वस्त हुई।

लेकिन क्या वे पूर्णतया आश्वस्त हो पायीं ?—नहीं हुईं। सोचने लगीं—यह क्या हो रहा है ? ऐसा क्यों हुआ ?

सुशोभन की लड़की के स्वभाव से सुचिन्ता परिचित नहीं थीं, शायद वह बेहया या वाचाल ही हो, शायद हमेशा से अपने बाप की छत्रछाया में पलने के कारण वह अपने पिता जैसी न बनकर स्वभाव में अपनी माँ जैसी बन गयी हो, जो माँ उसे पृथ्वी पर जन्म देते ही छोड़कर चली गयी थी। लेकिन वे अपने लड़के को तो भली-भांति जानती थीं। स्वभाव में अपने बड़े भाइयों की तरह वह गम्भीर नहीं था लेकिन इतनी ही बात से वह इतना हलका, इतना वाचाल हो जाएगा ? किसी लड़की को देखते ही सुध-बुध खो बैठेगा ? ऐसा वे नहीं जानती थीं।

लेकिन क्या खुद वे ही अपने आपे में थीं ? क्या वे कह पा रही थीं कि, छि: सुशोभन इतने नजदीक आना उचित नहीं है। उधर जाकर बैठो।"

नहीं, वे ऐसा नहीं कह सकीं, सिर्फ पागल व्यक्ति की इस दुश्चिंता को खत्म करने के लिए वे बोलीं, "यह बात है। बच्चे तो ऐसा करते ही हैं। भूल गए, तुम्हारी दादी कहती थीं, 'बच्चों का आपस में मेल-जोल और फिर आपस में

झगड़ा, भला इसमें कोई समय लगता है। अपनी दादी की बातें तुम्हें याद नहीं हैं ?"

"दादी ! मेरी दादी ! मेरी दादी की बातें तुम्हें याद हैं सुचिन्ता ।" अचानक आवेग में आकर उन्होंने सुचिन्ता के दोनों बाजुओं को कसकर पकड़ लिया, बोले,"हाँ, कितने आश्चर्य की बात है ? अच्छा कहो तो मैं सारी बातें भूल क्यों जाता हूँ ?"

सुचिन्ता के चेहरे पर एक उत्ताप छा गया।

कितने शर्म की बात थी।

नहीं, नहीं यह संभव नहीं है, कतई नहीं है। इस लापरवाह पागल को घर में रखना उचित नहीं होगा। आज ही वे नीता से कहेंगी—! "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम मेरा नुकसान करने चली आयीं। आखिर क्यों ?" कहेंगी—"तुम्हारे तो यहाँ जाने कितने नाते-रिश्तेदार हैं, तुम वहीं चली जाओ।"

वह धीरे-धीरे अपना हाथ छुड़ाने लगीं, लेकिन सफल नहीं हुईं। पागल की पकड़ बड़ी मजबूत होती है। सुशोभन ने उनके कन्धों को और जोर से जकड़ लिया। बड़े कुतूहल से बोले, "चलो चलें, हम लोग अकेले में बैठकर बचपन के दिनों की बातें करें।"

सुचिन्ता ने हताश होकर नीता की ओर देखा।

नीता की नजरों में अनुनय भरा था। फिर वह अपने पिता को पकड़कर खींच लेने की मुद्रा में उनके हाथों को पकड़ते हुए बोली, "पिताजी तुम भी खूब हो। इस वक्त बैठकर तुम लोग मजे से बचपन की बातें करोगे ? देखो, कितनी देर हो गयी है। क्या हम लोगों को भूख नहीं सतायेगी ?"

"भूख लगी है ? अरे हाँ, यही तो ! यही तो।" सुशोभन कुर्सी पर बैठ गये, "मुझे भी जोरों की भूख लगी है।"

"डॉक्टर तो हर बार बस यही एक बात कहते हैं।"

नीता सिर झुकाये बोली, "कहते हैं यह एक प्रकार का मनोविचलन है। एक विशेष—खास तरह का। हमेशा शून्यताबोध होता है, लगता है इस दुनिया में अपना कोई नहीं है, अकेला छोड़कर सब चले गये हैं, सब खत्म हो गये हैं। जो व्यक्ति सामने मौजूद है, उसी के मृत्यु-शोक में व्याकुल हो जाना। यही सब बातें। मेरी लड़की मर गयी है, ऐसा कहकर बाबूजी भी अचानक एक दिन फूट-फूटकर रोने लगे। जाने कितनी तरह से समझाना पड़ा। हालाँकि ऐसी हालत सिर्फ दो-चार दिन तक ही रही। हर अच्छे डॉक्टर को दिखलाया गया, ठण्डी जगहों में भी ले गयी—लेकिन उन्हें पसन्द नहीं आया। बाहर निकलते ही 'गिर जाओगी,

"ठीक है देखी जाएगी।"

सुचिन्ता अपने सबसे छोटे बेटे के खिले-खिले चेहरे की ओर चकित होकर देख रही थीं। इतनी बातें उसने आखिर कब सीखीं ? इतनी खुशी की बात भी क्या थी ?

जब वे लोग घूमकर लौटे तब तो वे और भी अधिक चकित हुईं, इतनी कि उसका कोई ठौर-ठिकाना भी उन्हें ढूंढ़े नहीं मिला।

उन्होंने पाया कि इन कुछ ही घंटों में दोनों एक दूसरे को तुम कह कर बुलाने लगे हैं।

लेकिन उन दोनों की ओर अधिक देर तक देखने का समय कहाँ मिला सुचिन्ता को, इस बीच सुशोभन उनके बहुत निकट खिसक आये थे, फुसफुसाकर कहने लगे, "देखो सुचिन्ता, तुम्हारा यह लड़का तो बिल्कुल कायदे का नहीं है।"

सुचिन्ता ने आशंकित नजरों से देखा, ख्याल नहीं किया कि सुशोभन उनके कितने निकट सरक आये थे।

वे डरकर सोचने लगीं, जाने क्या बात हुई कहीं पागल सोचकर इन्द्रनील ने उनकी अवमानना तो नहीं कर दी ?

बिना कुछ पूछे वे सिर्फ ताकती रहीं।

"उसे तुम जरा डाँट देना।"—सुशोभन ने कहा, "गाड़ी में सारे समय वह मेरी लड़की से झगड़ता रहा।"

यही बात है तो फिर ठीक है।

सुचिन्ता आश्वस्त हुई।

लेकिन क्या वे पूर्णतया आश्वस्त हो पायीं ?—नहीं हुईं। सोचने लगीं—यह क्या हो रहा है ? ऐसा क्यों हुआ ?

सुशोभन की लड़की के स्वभाव से सुचिन्ता परिचित नहीं थीं, शायद वह बेहया या वाचाल ही हो, शायद हमेशा से अपने बाप की छत्रछाया में पलने के कारण वह अपने पिता जैसी न बनकर स्वभाव में अपनी माँ जैसी बन गयी हो, जो माँ उसे पृथ्वी पर जन्म देते ही छोड़कर चली गयी थी। लेकिन वे अपने लड़के को तो भली-भांति जानती थीं। स्वभाव में अपने बड़े भाइयों की तरह वह गम्भीर नहीं था लेकिन इतनी ही बात से वह इतना हलका, इतना वाचाल हो जाएगा ? किसी लड़की को देखते ही सुध-बुध खो बैठेगा ? ऐसा वे नहीं जानती थीं।

लेकिन क्या खुद वे ही अपने आपे में थीं ? क्या वे कह पा रही थीं कि, छि: सुशोभन इतने नजदीक आना उचित नहीं है। उधर जाकर बैठो।"

नहीं, वे ऐसा नहीं कह सकीं, सिर्फ पागल व्यक्ति की इस दुश्चिंता को खत्म करने के लिए वे बोलीं, "यह बात है। बच्चे तो ऐसा करते ही हैं। भूल गए, तुम्हारी दादी कहती थीं, 'बच्चों का आपस में मेल-जोल और फिर आपस में

झगड़ा, भला इसमें कोई समय लगता है। अपनी दादी की बातें तुम्हें याद नहीं हैं?"

"दादी! मेरी दादी! मेरी दादी की बातें तुम्हें याद हैं सुचिन्ता।" अचानक आवेग में आकर उन्होंने सुचिन्ता के दोनों बाजुओं को कसकर पकड़ लिया, बोले, "हाँ, कितने आश्चर्य की बात है? अच्छा कहो तो मैं सारी बातें भूल क्यों जाता हूँ?"

सुचिन्ता के चेहरे पर एक उत्ताप छा गया।

कितने शर्म की बात थी।

नहीं, नहीं यह सभव नहीं है, कतई नहीं है। इस लापरवाह पागल को घर में रखना उचित नहीं होगा। आज ही वे नीता से कहेंगी—! "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम मेरा नुकसान करने चली आयीं। आखिर क्यों?" कहेंगी— "तुम्हारे तो यहाँ जाने कितने नाते-रिश्तेदार हैं, तुम वहीं चली जाओ।"

वह धीरे-धीरे अपना हाथ छुड़ाने लगी, लेकिन सफल नहीं हुई। पागल की पकड़ बड़ी मजबूत होती है। सुशोभन ने उनके कन्धों को और जोर से जकड़ लिया। बड़े कुतूहल से बोले, "चलो चलें, हम लोग अकेले में बैठकर बचपन के दिनों की बातें करें।"

सुचिन्ता ने हताश होकर नीता की ओर देखा।

नीता की नजरों में अनुनय भरा था। फिर वह अपने पिता को पकड़कर खींच लेने की मुद्रा में उनके हाथों को पकड़ते हुए बोली, "पिताजी तुम भी खूब हो। इस वक्त बैठकर तुम लोग मजे से बचपन की बातें करोगे? देखो, कितनी देर हो गयी है। क्या हम लोगों को भूख नहीं सतायेगी?"

"भूख लगी है? अरे हाँ, वही तो! वही तो।" सुशोभन कुर्सी पर बैठ गये, "मुझे भी जोरों की भूख लगी है।"

"डॉक्टर तो हर बार बस यही एक बात कहते हैं।"

नीता सिर झुकाये बोली, "कहते हैं यह एक प्रकार का मनोविचलन है। एक विशेष—खास तरह का। हमेशा शून्यताबोध होता है, लगता है इस दुनिया में अपना कोई नहीं है, अकेला छोड़कर सब चले गये हैं, सब खत्म हो गये हैं। जो व्यक्ति सामने मौजूद है, उसी के मृत्यु-शोक में व्याकुल हो जाना। यही सब बातें। मेरी लड़की मर गयी है, ऐसा कहकर बाबूजी भी अचानक एक दिन फूट-फूटकर रोने लगे। जाने कितनी तरह से समझाना पड़ा। हालांकि ऐसी हालत सिर्फ दो-चार दिन तक ही रही। हर अच्छे डॉक्टर को दिखलाया गया, ठण्डी जगहों में भी ले गयी—लेकिन उन्हें पसन्द नहीं आया। बाहर निकलते ही 'गिर जाओगी,

गिर जाओगी' कहकर चिल्लाने लगते थे। बड़ी शर्म आती थी। सभी की राय है—एक बार लुम्बिनी में—लेकिन वही एक ही बात सभी डॉक्टर कहते हैं, "रोगी को स्नेह-ममता से भरपूर रखना ही एकमात्र दवा है। उसे यही महसूस कराते रहना कि तुम्हारे परिवार के सभी लोग जीवित हैं, किसी की भी मृत्यु नहीं हुई है, कोई भी तुम्हें छोड़कर नहीं गया है।—"

सुचिन्ता ने थोड़े कड़े स्वर में कहा, "लेकिन ऐसा यहाँ संभव होगा, ऐसी बात तुम्हारे दिमाग में कैसे आ गयी ? तुम मुझे न जानती हो, न पहचानती हो, इसके पहले कभी मुझे देखा नहीं—"

अपना चेहरा उठाकर नीता थोड़ा मुस्कराते हुए बोली, "देखे बिना भी क्या जान-पहचान नहीं होती ?"

"क्या मालूम। मुझे तो यह बात ही नहीं समझ में आ रही है। बेहतर तो यही होगा कि दुनियाँ में उनके सभी कोई हैं, यह समझाने के लिए इन्हें उन सभी के बीच रखा जाय, जो हर तरह से स्नेह-ममता से इन्हें आवद्ध कर रख सके।"

नीता ने धीरे-धीरे अपनी गर्दन हिलायी, "ऐसा संभव नहीं। ढेर सारे लोगों को देखकर वे डरते हैं। एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जिसमें रोगी के मन की सारी शून्यता को भर सकने की क्षमता हो।

सुचिन्ता का पारा एकाएक चढ़ गया, जो सिर्फ नीता के पक्ष में ही नहीं उनके पक्ष में भी सोचा नहीं तक जा सकता था। गुस्से में वे बोलीं, "वह एक व्यक्ति मैं हो सकती हूँ, ऐसी बे-सिर पैर की बातें तुम्हें किसने बता दीं।"

नीता ने कुंठित होकर कहा, "किसी ने नहीं, मैंने खुद ही सोचा था। मैं सोचती थी बुआ, आप असुविधा तो महसूस करेंगी, हताश भी शायद होंगी लेकिन नाराज हो जाएँगी, यह नहीं सोचा था।

सुचिन्ता का पारा नीचे आ गया।

वे व्याकुल होकर बोलीं, "नीता, तुम मेरी कठिनाई नहीं समझ पा रही हो। मेरे लड़के जवान हो गये हैं।"

"इसी भरोसे तो आयी हूँ। वे इसे जरूर समझेंगे। वे जरूर इस थ्योरी को जानते होंगे कि मनोविचलन की एकमात्र दवा थोड़ा स्नेह-कोमल मन का स्पर्श है, जो बनावटी न हो, जो किराये पर ली गयी नर्स की सेवा न हो और अगर आपके लड़के समझ-बूझकर भी असन्तुष्ट हो जाएँ तो उसमें आपका नुकसान आखिर कितना होगा ?"

सुचिन्ता की हँसी में क्षोभ था। बोली, "नुकसान को समझने का पैमाना तुम्हारे बूते का नहीं है नीता। उम्र होने पर, बच्चों की माँ होने पर ही इसे

समझोगी। अपने से बड़ों की तुलना में अपने से छोटों का लिहाज अधिक करना पड़ता है।"

"इस बात को एकदम से समझ नहीं पा रही हूँ, ऐसी बात नहीं है बुआ," नीता बोली, "लेकिन इसे भी समझ गयी हूँ कि आप लोग बहुत दिनों से एक-दूसरे को कितना प्यार करते रहे हैं, इसलिए यह जो नुकसान—"

सुचिन्ता का चेहरा पुनः रक्तिम हो उठा। वे बोलीं, "अपने से बड़ों के बारे में हम लोग तो कभी इस तरह से नहीं कहते-सुनते थे।"

बिना विचलित हुए नीता बोली, "क्यों प्यार ही तो करते थे? प्रेम-व्यापार को इतना भयानक, इतना गोपनीय बनाने की जरूरत ही क्या है? आपने अपने जीवन में किसी से प्रेम किया था, इसे आपके लड़के यदि जान भी लें तो क्या होगा? अगर आपके प्रति उनके मन में श्रद्धा की भावना है, सहानुभूति है, तो जरूर उनमें आपके मन के अकेलेपन को समझने की भी क्षमता होगी ही।"

"बस, इसी एक जगह पर पति और पुत्र कभी सहानुभूतिशील नहीं होते नीता। ऐसा हो ही नहीं सकता।" फिर

"ठीक है वे अभी इसके आदी नहीं हैं। उनके दृष्टिकोण में बदलाव की जरूरत है। और वह बदलाव हम लोगों को ही लाना होगा। मैं की बात नहीं कर रही हूँ बुआ, सभी की बातें सोचकर ही कह र एक दूसरे को पर गहराई से विश्वास करती हूँ, तभी तो साहस करके आप ए जानती हूँ प्यार की ताकत से बहुत कुछ संभव होता है। उ आप बहुत कुछ ठुकरा सकती हैं। और उसी ताकत के बल पथ से, ध्वंस के पथ से किसी व्यक्ति को लौटा सकेंगी। माँ के लिए आश्रय देन व्यक्ति की मानवीयता से निवेदन है। जरूरत है, किसी ठेस लगती हो तो उसे ए शुश्रूषा करने जैसी ही थोड़े से स्नेह और ममता की । सम्भव है, आपके पास कोशिश करनी पड़ेगी, न झूठा प्रदर्शन और न अभि

हताश होकर सुचिन्ता बोलीं। मुझे न कोशिश यह खबर तुम्हें मिली कहाँ से? बस, यहीं नहीं स्नान थी।

"बुआ, मैं आपको बहुत दिनों से जानती ही समझती। मैं माफ कर सकती से छिपा कर रखी गयी जगह में मैंने आपकी भला क्यों माफ करेंगे?" नाम से भरे हुए पन्ने कभी देखे थे। एक पन्ने नहीं है क्या?" 'सुचिन्ता के नये मकान का पता।"

सुचिन्ता शायद इस बार लज्जित हो । उम्र का सम्मान और औरतों की कहानी उन्हें विह्वल कर रही थी, उन्हें नहीं।" वे धुंधली नजरों से नीता की ओर टक ही आत्म-अवमानना भरी बातें कह रही हैं?"

नीता पुनः बोली, "इधर बेहद ब

"न कहने से ही क्या चीजें गलत हो जाती हैं नीता ? मेरी तस्वीर की बात कह रही थी न ? इसी तरह की एक छोटी-सी तस्वीर मेरे पास भी थी। काफी अरसा हो गया। आखिर हम लोग उन दिनों के संवेदनशील युग की संतान हैं न !" सुचिन्ता थोड़ा मुस्करायीं, "समाज से विद्रोह करने और माँ-बाप को शर्मिन्दा करने का दुःसाहस करने की बात हम लोगों ने कभी सोची ही नहीं, 'समाज के चरणों में हमने आत्म-बलिदान किया', ऐसी ही एक भावुकता भरी बात सोचकर स्मृति-चिह्न के रूप में उन तस्वीरों का विनिमय हुआ था।....... किसी क्षण की असावधानी से वह तस्वीर किसी दूसरे के हाथों में पड़ गयी।" सुचिन्ता पुनः मुस्करायीं, "तुम लोग इस युग की लड़कियाँ शायद विश्वास नहीं कर पाओगी कि मुझे उस तस्वीर को उनके सामने खुद अपने हाथों से जलाना पड़ा था।

आग में डालकर नहीं, बल्कि मोमबत्ती की लौ में। और देखना पड़ा अपनी आंखों से झुलसते हुए उस चेहरे को, अपनी आँखों के सामने राख होते हुए। सुनकर सिहर उठी न ? नहीं सिहरने लायक इसमें कुछ भी नहीं है। ऐसी बात नहीं कि वे कोई भयंकर अत्याचारी व्यक्ति थे, बल्कि उनके पवित्रता आदर्श ही कुछ उस तरह के थे। मुझे उन्होंने तकलीफ देना नहीं चाहा था, सिर्फ चाहा था मुझे हिन्दू नारी की पवित्रता की शिक्षा देना।"

"इस पर भी आप उनके साथ अपनी गृहस्थी की गाड़ी चलाती रहीं ?"

"देखो, इस पागल लड़की की बातें। गृहस्थी न चलाती तो जाती कहाँ ? इसके अलावा इतना तो भरोसा था ही कि आदमी सरल है।"

"लेकिन आपके लड़के तो सरल नहीं हैं ?"

"नहीं हैं, इसीलिए तो ज्यादा डर है।"

"लेकिन डरने की क्या बात है ?" नीता ने बलपूर्वक कहा, "मैंने कभी अपने पिताजी के दुर्बल चरित्र की बात सोचकर उनसे घृणा नहीं की। वे भी ऐसा क्यों करेंगे ? व्यक्ति सिर्फ अपने परिवार की ही सम्पत्ति है, उसके अलावा उसका कोई अन्य व्यक्तित्व नहीं है, ऐसा ही क्यों सोचा जाय ? हर व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के अलावा भी उसका अपना कुछ होता है, कम से कम हो सकता है, उसके उसी मानसिक जीवन को क्या परिवार के हर सदस्य को सम्मान नहीं देना चाहिए ? अब भले ही वह आध्यात्मिक जीवन हो, शिल्पी जीवन हो या प्रेम संबंधों का हो।

"अगर हर व्यक्ति उचित-अनुचित समझकर चलता तो यह धरती स्वर्ग हो गयी होती नीता।"

"बुआ हमें समझना होगा। औरों के अचानक असंतुष्ट हो जाने के डर को मन से निकाल देना होगा। ध्यान न देते रहने से ही आप देखियेगा कि तीखे दांत

नीता मन ही मन बोली, "तुम क्या मेरे इस शांत, स्तब्ध हिमालय की स्तब्धता को भंग करके यहाँ निर्झर का स्वप्नभंग करने आयी हो ?"

सोचने लगी मृचिन्ता, "जाने कैसी लड़की है ? क्या कुछ अधिक चतुर है ? या कुछ अधिक बेहया है ?"

बेचारा इन्द्रनील नासमझ है।

इन्द्रनील की बात सोचकर वे मन ही मन चिंतातुर हो उठीं।

"सुबह तो आपसे जान-पहचान ही नहीं हो पायी" निरुपम के कमरे में घुसते हुए नीता बोली। बिना कहे ही वह एक कुर्सी पर बैठ गयी, "बस वही देखना भर हुआ।"

निरुपम ने मन ही मन सोचा यह कैसी गले पड़ने वाली लड़की है ! फिर बोला, "परिचय होना क्या इतना आसान है ?"

"बिल्कुल आसान नहीं", नीता हँस पड़ी, "लेकिन आनन्द तो कठिन काम में ही आता है।"

निरुपम अपने कमरे में है और उसके हाथ में कोई किताब नहीं है, ऐसा प्राय: देखने में नहीं आता। आज भी वैसा ही हुआ था। अपने हाथ की पुस्तक पर नजरें गड़ाते हुए बोला। "बातचीत करने में इन्द्र माहिर है।"

"इसके मतलब आप माहिर नहीं हैं।" नीता अकुंठित स्वर में बोली, "इससे तो बेहतर होता बड़े भैया, अगर आप साफ-साफ कह देते, "तू मुझे परेशान करने यहाँ न आया कर, मेरे कमरे से चली जा।"

बड़े भैया !

तू !

शायद निरुपम इस कथन-भंगी से चकित हुआ। उसने आँखें उठाकर देखीं। नहीं ये किसी मायाविनी की आँखें नहीं हैं।

हँसते हुए बोला, "नहीं, इसका मतलब है मैं बिल्कुल बातचीत नहीं कर सकता।"

"कोई बात नहीं, कमरे में कभी-कभार घुसने की अनुमति मिलने से ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी। कितनी किताबें हैं। दूर से, इन्हें दिन भर ललचायी नजरों से देखती रहती हूँ।

मतलब निरुपम भी बात कर सकता है।

उसने कहा, "आपको कमरे में घुसने से रोकने वाला था ही कौन ? दरवाजे तो खुले ही थे।"

"खुले हुए दरवाजे ही तो सबसे भयंकर होते हैं। विश्वास का पहरेदार तो अदृश्य रहकर ही पहरा देता है।"

"तुमने कहाँ तक शिक्षा ग्रहण की है ?"

प्रसंग बदल कर निरुपम सीधी-सादी बातें करने लगा। और चला आया सीधे आप से तुम पर। वह बड़े भाई की तरह ही बात-चीत करने लगा।

बस अब हो गया ! इस गरीब बेचारी की कमजोरी कहाँ पर है, इसे मास्टर की तेज नजरों से आपने ठीक ही पकड़ लिया। पढ़ने का मौका मिला कहाँ ?" नीता ने गहरी साँस ली। कहने लगी, थर्ड इयर मे पढ़ते-पढ़ते ही पिताजी को इस बीमारी ने घर दबोचा। घर में अकेले छोड़कर कही जाना संभव नहीं था, जाने पर चिन्ता बनी रहती। बाबूजी भी समय से पहले ही रिटायर हो गये। उसके बाद से सब ऐसे ही चल रहा है।

"कितने दिन हुए बाबूजी की इस बीमारी को ?"

"यही कोई तीन-साढ़े तीन साल हुए होंगे।"

निरुपम अब और कितनी देर तक बातें कर सकता था।

अपनी क्षमता से अधिक ही बातें उसने आज की थी।

इसीलिए उसने पुनः अपने हाथ की पुस्तक पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया। नीता खडी हो गयी और घूम-टहल कर किताबें देखने लगी। वाकई लालच लगने लायक किताबें वहाँ पर थी। दुर्लभ और दुष्प्राप्य। लेकिन आलमारी की बगल मे वह क्या रखा था ? वह जो नीले रंग के मोटे कपड़े मे लिपटा हुआ दीवाल से लटक रहा था ?

तानपूरा !

और आलमारी के ऊपर ?

बायाँ तबला। "लगता है आपको गाने-बजाने का खूब शौक है।"

"मुझे ?" निरुपम हँसने लगा, "यह शौक तो पिताजी को था। मेरे पिताजी को। घर में जब-तब संगीत की मजलिस बैठती थी।"

"वाह ! आप लोगों को कितना मजा आता होगा।"

"मजा !"

"मजा नही आता था ? मुझे संगीत से बेहद लगाव है। आपके यहाँ ऑर्गन नहीं है ?"

"वह भी है।"

"मैं बजाना चाहती हूँ।"

"बजा सकोगी ?" निरुपम हँसते हुए बोला, "बिना किसी संकोच के बजाना, लेकिन उस समय जब मैं घर पर न रहूँ।"

"क्यों, आपको अच्छा नही लगता ?"

"बिल्कुल नही, असहनीय है मेरे लिए।"

"संगीत आपको असहनीय लगता है ? ओ बडे भैया, तब तो आप जरूर

किसी का खून भी कर सकते हैं। यह मैं चली रेडियो बजाने। तभी सोच रही थी कि रेडियो भी क्यों मुँह बंद किए हुए पड़ा हुआ है।"

"अब मुझे मकान से निकल भागना पड़ेगा।"

"अच्छा देखिएगा, एक दिन ऐसा गाना गाऊँगी, कि—"

"—कि सारे पड़ोसियों को मुहल्ला छोड़कर भाग जाना पड़ेगा, क्यों यही न?" निरुपम ने बड़ी गम्भीरता से कहा। लेकिन उस गंभीरता की आड़ से शायद विनोद की महीन रेखा भी नजर आ रही थी, जिसे समझकर नीता खिल-खिलाते हुए लोटपोट होने लगी।

उधर की कोठरी में रह रही सुचिन्ता के कानों में हँसी की यह आवाज जाते ही वे चौंक पड़ीं। यही हाल दूसरी ओर के कमरे में बैठे हुए नीलांजन का हुआ।

इतना कौन हँस रही है?

और किसके कमरे में हँस रही है?

सुशोभन दरवाजे पर लग कर खड़े हो गये।

"मुझे अकेला छोड़कर कहाँ चली आयी हो नीता। मुझे डर नहीं लगता?"

नीता खड़ी होकर बोली, "कहाँ जाऊँगी? यही जरा बड़े भैया से परिचय करने आयी थी। तुम्हें डर लग रहा है? भूत का डर?"

नीता मजे लेकर हँसती रही।

"जरा देखो" सुशोभन कमरे में घुसकर खाट के कोने में बैठ कर कहने लगे। "क्या कहती हो! भूत का डर? मुझे डर था कि तुम मुझे छोड़कर कहीं चली तो नहीं गयी—"

"यह क्या, ऐसे क्यों जाएगी?" निरुपम ने स्नेह-कोमल स्वर में कहा, "ऐसे भी भला कोई जाता है?

नहीं ऐसे सौम्य असहाय चेहरे वाले व्यक्ति के प्रति उसके मन में कोई विरू-पता नहीं पैदा हो रही थी, बल्कि ममता ही महसूस हो रही थी।

"कह रहे हो कोई नहीं जाता?"

सुशोभन आश्वस्त हुए। इसके बाद कौतूहलपूर्वक बोले, "तुम इस मकान के कुछ होते हो न?"

"यह क्या पिताजी, वे तो इस मकान के बड़े भैया हैं, सुचिन्ता बुआ के सबसे बड़े बेटे।"

"हाँ समझ गया, सुचिन्ता के तो ढेर सारे बेटे हैं। तुम सबसे बड़े हो? क्या पढ़ते हो तुम?"

'पागल' नामक जीव लोगों के लिए हमेशा से ही कौतूहलकारी रहा है। लगता है जैसे उसमें ढेर सारे रहस्य छिपे हुए हैं।

शायद उस रहस्य का पर्दाफाश हो जायगा, इसीलिए पागलों से बातें करने में
लोगों को मजा मिलता है; कौतुक का सुख भी मिलता है।

अल्पभाषी निरुपम को भी जैसे वहाँ मजा आने लगा। इसीलिए उसने जवाब
दिया, "कुछ भी नहीं पढ़ता।"

"नहीं पढ़ते ? इतने बडे होकर लिखते-पढते नहीं—यह तो अच्छी बात नहीं
?"

"ऐसा नहीं है बाबूजी, वे पढ़ाते हैं।"

"पढाते हैं ? किसको ?"

"विद्यार्थियों को। वे यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर हैं।"

सुशोभन अपनी दोनों भौंहों को माथे पर चढ़ाते हुए बोले, "तब क्यों कहा
सुचिन्ता का बेटा है ? भला सुचिन्ता का बेटा इतना बड़ा हो सकता है ?"

"बड़े आश्चर्य की बात है। क्यों नहीं हो सकता ? क्या मैं तुम्हारी इतनी
बड़ी बेटी नहीं हूँ ?"

"तुम कितनी बड़ी हो ! अभी उस दिन तक तो तुम फ्रॉक पहनकर घूमती-
फिरती थी।"—सुशोभन बोले, "जाऊं, जरा सुचिन्ता से पूछकर देखूं।"

"पूछोगे ? अब उनसे तुम क्या पूछोगे ?"

"यही कि सुचिन्ता का बेटा इतना बड़ा क्यों है ?"

"रहने दो बाबूजी, अब यह पूछने तुम मत जाना", नीता ने अपने पिता का
हाथ पकड़ते हुए कहा, "बुआ को तकलीफ होगी।"

"तकलीफ होगी ? तब ठीक है, रहने दो। ठीक है, रहने दो।"

"गाना सुनोगे बाबूजी ?"

"गाना ?" सुशोभन उत्साहित हो उठे, "गाना गाओगी ? चलो सुनूं।"

अपनी लड़की का हाथ पकड़ कर वे दरवाजे की ओर बढ चले।

"ऐसे ही इन्हें संभाल रही हैं ?"

निरुपम ने कोमल स्वर में कहा।

नीता भी नम्र होकर बोली, "उपाय भी क्या है। लेकिन उनको सभालने
से कहीं अधिक मुश्किल है अपने आस-पास के बुद्धिमानों को सम्भालना। उनकी
बातें और व्यवहार को लोग नजर-अन्दाज करके माफ करने को राजी नहीं होते
बल्कि उसे स्वस्थ व्यक्ति का किया-धरा ही मानते हैं। इस बात को लेकर गाड़ी मे
एक साहब से मेरी मुठभेड़ भी हो गयी थी।"

"नीता तुम सुचिन्ता के बड़े बेटे के साथ क्या खुसुर-फुसुर कर रही हो ?
चलो चलो, गाना सुनने में देर हो रही है !"

नीता शैतानी से मुस्कराते हुए बोली, "क्या खाक गाऊँगी ? ये लोग तो
अपने बाजे-वाजे देने को राजी ही नहीं हैं।"

"राजी नहीं हैं ? जरा सुनूं तो कौन राजी नहीं है ?" सुशोभन भड़कक बोले, "सुचिन्ता से शिकायत कर दूँगा ।"

"वही किया जाय बाबू जी । उनसे कहकर जरा इनको डाट खिला दूँ ।' कहते हुए प्रसन्नवदन नीता अपने पिता के साथ कमरे से बाहर चली गयी ।

इसके बाद ?

इसके बाद आस-पड़ोस के मकानों की सारी खिड़कियाँ खुल गयीं । सभ खिड़कियों से कौतूहल भरे चेहरे झांकने लगे ।

अनुपम कुटीर में संगीत !

इससे अधिक चौंका देने वाली बात और भला क्या होती !

मधुर नारीकंठ और वह कंठ भी जैसे हर गीत में अपने हृदय की सारी आकुलता-व्याकुलता को उड़ेल देने को तत्पर ।

रात का माहौल उस संगीत की मूर्च्छना में शिथिल होता जा रहा था ।

मुहल्ले में तो इस मकान के साथ उस मकान का, दूसरे मकान के साथ तीसरे मकान का आपस में एक दूसरे से परिचय सम्बन्ध दृढ़ था । बस नहीं था तो सिर्फ अकेले अनुपम कुटीर से ।

सुबह होते ही लाल मकान की लड़की पीले मकान की लड़की से, गुलाबी मकान की लड़की सफेद मकान के लड़के से जाकर पूछ बैठी, "कल रात मैंने गाना सुना था ?"

"जरूर सुना था । बात क्या है बोलो तो ?"

"समझ में नहीं आ रही है । लगता है कोई नये लोग आये हैं ।"

"पता लगाना होगा ।"

लेकिन पता क्यों लगाना होगा, पता लग जाने से किसकी कामना पूरी होगी इसे लेकर कोई नहीं सोचता था ।

पता लगाने की आड़ में लोग मौका ढूंढ़ते हैं ।

सुबल की बँधी-बँधायी दिनचर्या भंग हो गयी थी ।

अब उसे जब-तब बाजार दौड़ना पड़ता था—कभी रसगुल्ला लाने तो कभी दालमोठ लाने और कभी आलू मूड़ी लाने ।

लाल मकान की लड़की ने उसे एक दिन बीच रास्ते में पकड़ लिया ।

"जरा सुनो ।"

"जी ।"

"तुम्हीं अनुपम कुटीर में काम करते हो न ?"

"हाँ ।"

"तुम्हारे मकान में कौन आया है ?"

सुवल ने गंभीर होकर कहा, "मां जी की भतीजी और उसका बाप।"

'मां जी की भतीजी और उसका बाप।'—ऐसी अजीब भाषा लाल मकान की लड़की ने पहले कभी नहीं सुनी थी—हँसते हुए बोली, "मां जी के भाई और भतीजी आये हैं, ऐसा कहो न।"

"अब ऐसा भला मैं कैसे कहूँ ? वे लोग मुखर्जी हैं, ऐसा ही सुना है।"

"मुखर्जी ? मतलब ? ये लोग तो मित्तर हैं, है न ?"

"हाँ, कायस्थ।"

"इसका मतलब शायद दोस्त-वोस्त होंगे। क्यों ?"

सुवल ने स्वयं को संभालते हुए कहा "शायद वही—होगा। कहिए तो, और क्या-क्या जानना चाहती हैं आप ?"

लाल मकान की लड़की लाल होते हुए बोली, "जानने के लिए और है ही क्या ? गाने की आवाज सुनाई दी है, इसी से पूछ बैठी। खैर, ठीक है।"

क्रोध के मारे भुनभुनाती हुई वह अपने मकान में चली गयी। लेकिन खूब हताश होकर नहीं। रहस्य की आंच उसे थोड़ी-मिल मिल गयी थी। अनुपम कुटीर की मालकिन की भतीजी और उसके पिता आये हैं, और पिता कायस्थ नही हैं, ब्राह्मण हैं।

वह पीले मकान मे इस समाचार को पहुँचाने के लिए दौड़ पडी।

गुलाबी मकान के लिए अचानक काफी सुविधा हो गयी थी। घर-घर काम करने वाली नौकरानी संध्या हाल ही में उनके यहाँ भी काम करने लगी थी। इसलिए उस मकान के रहस्य-भेद की और आशा मे आँगन के किनारे ही मोढ़ा बिछाकर गुलाबी मकान की लडकी बैठ गयी।

"तुम उस सामने वाले मकान में भी काम करती हो न ?"

"हाँ, यही कोई दो वरस से वहाँ हूँ।"

"ओ माँ ! तव तो तुम वहाँ का सभी कुछ जानती होगी। इस मकान मे एक लड़की बहुत बढ़िया गाती है। लगता है वह हाल ही मे आयी है।"

"जी हाँ, यही कुछ दिन हुए। अब दोनों बाप-बेटी के आ जाने से वह मकान भी मकान लगने लगा है, नही, तो माँ री, लगता था मकान पर किसी गूँगे की छाया पड गयी हो। कोई किसी से बात नही करता था, मालकिन कभी बुलाकर इतना भी नही कहती थी, "संध्या जरा यह काम कर दो।" अब तो बुला भी लेती हैं। अभी उसी दिन बोली, "संध्या जरा दुमंजिले के दालान को पोंछ देना, वहाँ पानी गिर गया है। नौकर घर में नही है।" पहले की बात होती बिटिया तो पानी वहाँ पर शायद दिन भर वैसे ही पड़ा रहता, नौकर की

तबीयत होती तो पोंछ देता। अब तो ऐसा नहीं है। घर में लोग रहते हैं। उस पर वह रहा पानी यों ही नहीं छोड़ा जा सकता। पर शायद वह कुछ पागल है।"

पागल !

गुलाबी मकान की लड़की मारे उत्साह के गुलाबी होकर बोली, "क्या कहती है री ? तुम लोगों को डर नहीं लगता ?"

"ओ हो वह क्या कटखना पागल है ? देखकर पता ही नहीं चलता। मुझे तो उस नौकर से मालूम हुआ।

"वे लोग माँ जी के क्या लगते हैं ?"

"क्या जानूँ बिटिया, नौकर तो कहता है, कोई नहीं होते। दोस्त-ओस्त होंगे। मालकिन का तो वे नाम लेकर पुकारते हैं।"

गृहस्वामिनी को नाम से बुलाते हैं, मगर कोई रिश्तेदार नहीं होते। एक गूँगा मकान उन लोगों के आने से बोलने लगा है। इतनी सारी बातों की जानकारी होते ही वह सफेद मकान की ओर दौड़ पड़ी।

"सुनते हो जी, वह बूढ़ा शायद पागल है। और शायद रिश्ते में उनका कोई नहीं होता। लेकिन गृहस्वामिनी का नाम लेकर बुलाता है।"

सफेद मकान मुँह बिचका कर बोला, "ओह ! तब तो सभी कुछ जान गयी हो। लेकिन वह गायिका अनुपम कुटीर के सबसे छोटे बेटे की नाक में नकेल डाल कर घुमा रही है क्या इस बात को भी जानती हो ?"

"मतलब ?"

"और क्या मतलब होगा इसका। दुनिया की आदिमतम घटना। रेगिस्तान में थोड़ी बारिश हुई है और उसने क्षणार्ध में सारा जल सोख लिया है।"

"लड़की की उम्र कितनी होगी ?"

"ठीक उतनी ही बड़ी—जिसकी तुलना रेगिस्तान की बारिश से की जा सके।"

"देखने में कैसी है ?"

"तुमसे बीस गुनी अधिक सुन्दर।"

"समझ गयी। इसका मतलब उसने सिर्फ अनुपम कुटीर के सबसे छोटे बेटे की नाक में ही नकेल नहीं डाली है।"

"उसके अलावा और दूसरी नाक ही कहाँ है ?"

"कमी क्या है ? मेरे सामने ही है।"

"हे भगवान् ! इस नाक की व्यवस्था तो कभी की हो चुकी है। लेकिन इतना कहूँगा कि देखकर मन में ईर्ष्या जरूर महसूस हुई।"

"जरूर होगी। अब लगता है तुम सिर्फ उस बीस गुनी के रास्ते की ओर ही टकटकी लगाए रहोगे।"

"इसमें भी कोई संदेह नहीं।"

"तुम मर्दों की जाति बड़ी लालची होती है।"

"तुम लोग भी कुछ कम नही होती।"

"सोच रही हूँ उस लड़की से परिचय किया जाय तो कैसा हो?"

"क्या, मुझे परिचय करने के लिए कह रही हो।"

"अरे वाह! तब तो खूब सुविधा हो जाएगी। वह सब नहीं चलेगा। समझ लो, मैं जाऊँगी। जाकर कहूँगी, 'आप कितना बढ़िया गाती हैं, सिर्फ यह कहने के लिए आपके यहाँ आये बिना मैं रह नही सकी।' बस इसी तरह मामला जमा लूँगी।"

"किस के साथ? इतने दिनों से जिन तीन-तीन बरफ के पहाड़ों की ओर ललचायी नजरों से ताकती रहती थी, उनके साथ? लेकिन अब कुछ होगा, ऐसी भी संभावना नहीं लगती। जाकर पाओगी कि रूपा के हाथों के स्पर्श से सारी बर्फ पिघलनी शुरू हो गयी है।"

"बकवास मत करो। वैसे यह हो भी सकता है। आखिर तुम सभी एक समान लालची हो न।"

"मर्दों से कम तो तुम लोग भी नही हो। किसकी लड़की किसके लड़के के नाक मे नकेल डालकर घुमा रही है, तुम इसी ईर्ष्या से कुढ रही हो।"

"ईर्ष्या!"

"और नहीं तो क्या? प्रेम के मारे एक लड़की दूसरी लड़की के घर में जाकर उसकी तारीफ कर आए, इसे तो खुद भगवान भी आकर कहें तब भी अविश्वसनीय ही लगेगा। इस बात पर भरोसा नही किया जा सकता। जलन के मारे देख आने के मेरा मतलब था वहाँ जाने के लिए किसी बहाने की तलाश करना।

"दुनिया की सारी रंगीनियों को आज के लड़कों ने मतलब तुम्ही लोगों ने पोंछ लिया है।"

"किसमे इतनी क्षमता होगी? जो मिला उसी रंग के गोले को बटोर कर अपने चेहरे, गालों, नाखूनों और होंठो पर तुम्हीं लोग तो पोत रही हो।"

"हमेशा ही पोता है। हमेशा सही लड़कियो ने प्रकृति से रंग और ऐश्वर्य संग्रह करके अपना प्रसाधन किया है। महाकवि ने व्यंग्य से नहीं वरन् पूर्ण आनंद में मग्न होकर ही कहा है, 'नारी तुम सिर्फ विधाता की ही सृष्टि नही हो।'

"हो गया,—तुम तो गंभीर होने लगी। तुम गंभीर होने पर भयानक लगने लगती हो।"

"देखो, मुझे गुस्सा आ रहा है।"

"कोई बात नहीं।"

"सचमुच, वहाँ एक दिन हो आओ न।"

"अभी तो अपनी राय थोपने का समय नहीं आया है। अपनी माँ से पूछ कर चली जाना।"

"वाह, जरा सामने के मकान में मिलने जाऊँगी इसके लिए भी माँ से पूछने की जरूरत होगी क्या ? यह तो पूछने लायक कोई बात नहीं हुई।"

"ठीक कहती हो। यह जो तुम मुझ से प्रेम कर रही हो, यह भी क्या अपनी माँ से पूछकर—"

"खबरदार ! खुद को इतना महत्त्व न देना, कहे देती हूँ।"

"कल्पना के इस थोड़े से सुख को भी यदि छीन लेना चाहती हो तो ठीक है।"

जिन्हें लेकर इतनी चर्चा थी उन्हें इसकी जरा भी परवाह नहीं थी। इतने दिनों तक वे अपने नियमों में मग्न थे और अब वे उन्हें तोड़ने में जुटे हुए थे।

उन दिनों भोर में अपने छोटे कमरे से बाहर निकलकर स्नान-ध्यान करने के पहले सुचिन्ता दूधवाले की सचाई को परखने के लिए नीचे उतर आती थी। नजदीक की बस्ती के एक दूधवाले से तय हुआ था कि—वह अपनी गाय लाकर सामने दूध दुह जाया करेगा। सुशोभन के लिए यह खास व्यवस्था की गयी थी।

खुद अपने सामने दूध दुहवाकर उसे रसोईघर में रखने के बाद ही सुचिन्ता निश्चिन्त हो पाती। ताज्जुब था ऐसे रुचिहीन काम करने के कारण सुचिन्ता के चेहरे पर जरा भी खीझ की रेखा नहीं दीखती थी, बल्कि उनके चेहरे पर समान नजर रखने का भाव ही लक्षित होता था। ये ग्वाले बड़े धूर्त होते हैं, आँखों के सामने ही धोखा देते हैं, ऐसी उनकी धारणा थी।

रसोई में भी सुचिन्ता को खड़ा रहना पड़ता था। कहना पड़ता था, "खाना आज भी जल्दी ही बना लेना सुबल, दीदीमनी लोगों को बाहर जाना है।" कहना पड़ता था, "खाने में मिर्च-मसाले का इस्तेमाल कम करने को कहती हूँ सुबल, तुम भूल क्यों जाते हो ? उनको ज्यादा मिर्च-मसाला खाने को डॉक्टरों ने मना किया है।"

पागल के झक्कीपन के कारण कभी-कभी सुबह-सुबह ही संगीत निर्झर बहने लगता। उसके कारण नींद टूट जाने पर निरुपम स्तब्ध होकर बिस्तर पर बैठा रहता। नीलांजन परेशान होकर कमरे में चहलकदमी करने लगता था। और इन्द्रनील, वह तो बिल्कुल निर्झर के किनारे ही जाकर बैठ जाता था।

केतली की चाय ठंडी हो जाती थी।

अब कोई सुबह अखबार उठाकर देखता तक नहीं था।

कितनी आश्चर्यचकित कर देने वाली मायाविनी लड़की थी नीता।

कभी वह गम्भीर वार्तालाप में बेहद सीधी-सादी हो जाती थी तो कभी बेमतलब के तर्कों में अत्यधिक मुखर और कभी तो साधारण से परिहास में ही लोटपोट हो जाती थी। उसकी ओर से विमुख होना बेहद मुश्किल काम था।

फिर भी नीलांजन उस मुश्किल को वश में करने की कोशिश करता था।

नीता का संगीत सुनने के बाद चहलकदमी करते हुए वह नजदीक आकर नहीं कहता था। वाह, बहुत खूब।"

नीता ही नजदीक आकर कहती, "क्यों मझले दादा, एकदम मौन हैं, लगता है मेरे गीत-संगीत की धारा से एकदम मुग्ध हो गये हैं?"

नीलांजन सिर्फ अपनी नजरें उठाकर देख लेता।

नीता कहती है, "कुछ कहिए, कहिए तो कुछ, डांटना हो तो डांटिये, चपत लगाना हो, लगाइये, लेकिन खामोश भर्त्सना मत कीजिए। इसे देखकर धड़कनें बंद होने लगती हैं।"

"भर्त्सना किस बात की? अच्छा ही तो है।"

"तब 'वाह बहुत सुन्दर' यह सब कहिए न?"

"क्या हर समय कहना जरूरी है?"

"तब तो लाचारी है।"

कहकर हाथ से हताशा की भंगिमा प्रदर्शित करते हुए नीता भाग जाती थी। फिर कभी किसी समय आकर कहती, "पिताजी को एक जगह ले चलना है मँझले दादा, आज तो इतवार है, ले चलिए न हम लोगों को।"

नीलांजन अपनी भौंहें सिकोड़ कर कहता है, "क्यों इन्द्र कहाँ गया? लगता है आज वह जाने को तैयार नहीं है।"

"तैयार नहीं है? हुँह। वह तो सारे समय एक पैर पर खड़ा रहता है, लेकिन मैं ही उसे नहीं ले जाना चाहती हूँ। पिताजी को समझाना पड़ता है कि हमारी गाड़ी में आप लोग अपने-अपने काम से जा रहे हैं। हर रोज एक ही व्यक्ति को देखने से संदेह हो सकता है।"

"हर रोज जाती कहाँ है?"

"मनश्चिकित्सक के यहाँ। वह डॉक्टर पालित हैं न।"

"मैंने तो सुना था आप लुम्बिनी मे दिखलाने आयी हैं।"

नीलांजन की नजरें भावशून्य थी।

लेकिन नीता निर्विकार थी।

"वही के लिए आयी थी। डॉक्टर पालित का कहना है कुछ दिन और देख लीजिए। भूमिका बनानी होगी। उन्हें किसी भी तरह यह बात नही पता चलनी चाहिए कि उन्हे मेन्टल हॉस्पिटल ले जाया जा रहा है। कोई कहानी गढ़कर—"

"आपके पिताजी को देखकर यह नहीं लगता कि उन्हें कोई रोग है। लगता है उनका स्वभाव ही असम्बद्ध सोच-समझहीन लोगों जैसा है।"

"वैसी बात नहीं है। यह सोच-समझहीनता ही उनका रोग है।"

नीलांजन कुछ और रुखाई से बोला, "वैसा भी हर समय नहीं होता। उन्हें कभी भोजन के बाद हाथ-मुँह धोना या उसके उपरांत लौंग खाना भूलते तो नहीं देखा, सोने के पहले वस्त्र बदलना भी तो वे नहीं भूलते। नहाने के बाद बाल झाड़ना भी उन्हें याद रहता है। सिर्फ सामाजिक नियम-कानून, व्यावहारिक शोभन-अशोभन मामलों में ही उनकी सोच-समझहीनता नजर आती है।

"डॉक्टर के अनुसार ऐसे रोगियों के यही लक्षण होते हैं।"

"मानसिक रोगों के डॉक्टर रोग न समझ पाने पर ऐसी ही तरह-तरह की बातें करते हैं।"

"लेकिन स्वस्थ लोगों में ही क्या हर समय यह उचित-अनुचित-विवेक रहता है? या रहती है शोभन-अशोभन की समझ? यही जो आप इतनी सारी बातें कर रहे हैं क्या ये भी शोभन हैं? हम लोग असुविधा में पड़कर आपके अतिथि हुए हैं। ऐसे कटु वाक्य मुझे बहुत आहत करते हैं।"

"मैंने आपको तो कुछ भी नहीं कहा।"

कहकर नीलांजन गम्भीर हो गया।

नीता के सूक्ष्म व्यंग्य की ज्वाला में वह मन ही मन दग्ध होता रहा। लेकिन इस ज्वाला का आकर्षण भी अत्यधिक तीव्र था।

लेकिन इस ज्वाला का इतना तीव्र आकर्षण क्या नीलांजन को ही था? इस आकर्षण को क्या घर के और सभी लोग नहीं महसूस कर रहे थे?

इस दाहकता को महसूस करना भी अनुपम कुटीर का एक बहुत बड़ा अनियम था।

दिन के प्रखर प्रकाश में भी जो अनुपम कुटीर सोया रहता था, वह अब रात के अँधेरे में भी जागने लगा था।

बक्स-पिटारे वाले कमरे में दक्खिन ओर की खिड़की खोलकर सुचिन्ता मन ही मन आकाश-पाताल के कुलावे मिलाती रहती थीं।

वे सोच रही थीं कि वे न जाने किस षड्यन्त्र में शामिल हो गयी थीं।

जो कुछ भी हो रहा था क्या वह ठीक हो रहा था?

जो सुदूर-अतीत गहरी जमीन में मौत के बर्फीले आगोश में दफन था, उसे फिर से सिर उठाने का मौका ही क्यों दिया गया?

वे सोच रही थीं, कितने दिनों तक ऐसी विचित्र हालत रहेगी? उन लोगों को आये हुए लगभग दो महीने तो हो गये, इस बीच भगवान ही जानता होगा

कि—सुशोभन को कितना फायदा हुआ। लेकिन सुचिन्ता को जितना नुकसान हुआ उसकी तो किसी से तुलना भी नही की जा सकती।

सुचिन्ता की पारिवारिक शृंखला तो टूटी ही, जीवन की शृंखला भी टूट गयी और अनुपम कुटीर की उस धीर-गम्भीरता की वेदी पर सुचिन्ता का जो श्रद्धा-सम्मान का सिंहासन था, वह भी तो टूट गया।

अपने लडकों के सामने तो सुचिन्ता बिल्कुल भी सहज नहीं हो पाती और वे उनके सामने सामान्यतया पडना भी नहीं चाहती। वे लोग जब तक घर में रहते है, वे अकारण ही अपने को व्यस्त किए रहती हैं।

लेकिन दूसरी ओर वे उनकी चिंता से भी मुक्त नही हो पाती थी।

सुचिन्ता नीना को समझ नहीं पातीं हैं। सोचती की जाने कैसी लड़की है। बहुत सीधी है या बहुत चतुर। वह क्या अपने सुखी भविष्य के लिए ही सुचिन्ता के तीनों लड़कों को अपने जाल में फँसा रही थी? या स्वभाव से अभी तक वह एक चंचल बालिका ही थी।

लेकिन दूसरी ओर वह ढेर सारी बड़ी-बड़ी-बातें भी कहती फिरती थी।

वह इन्द्रनील के साथ गुल-गपाड़ा मचाती थी, नोच-खसोट कर बात-बेबात में उसे घर से बाहर अपने साथ ले जाती थी, धूप में पसीने-पसीने होने के साथ देर से घर लौटती थी, जोरदार बहसों मे उलझाकर वह हर रोज रात का भोजन दस बजे से पहले करने का मौका ही नहीं देती थी; और इतने जुल्मो-सितम के बावजूद इन्द्रनील के चेहरे पर खुशी की आभा बिखरी हुई रहती थी। इन सब को देखकर सुचिन्ता को महसूस होता था कि मायाविनी ने उनके लडके को बिल्कुल अपने वश में कर लिया है।

फिर थोडी देर बाद ही जब वे निरुपम के कमरे से खिलखिलाने की आवाज पातीं, तब वे सोचतीं पहले वाली धारणा गलत थी? शिव की तपस्या को भंग करने के लिए ही यह छलनामयी मदन और वसंत को साथ लेकर आविर्भूत हुई है।

लेकिन फिर सारी बातें जाने कैसे गडबड़ा जाती।

नीलांजन के साथ उसके सम्पर्क की जटिलता को देखकर वे [illegible] थीं। यह जटिलता ही तो सबसे अधिक संदेहजनक लगती।

परस्पर निकट आने से ही दोनों व्यक्ति आपस में क्यों [illegible] रह-रहकर उनके बीच से स्फुलिंग निकलेंगे?

सोचते-सोचते थक गयी सुचिन्ता। थकी हुई सोचने [illegible] एकदम बुरी लड़की है। पिता की ही तरह नहीं [illegible] किसी से प्यार नही करेगी सिर्फ दोनों को [illegible]

लेकिन सुचिन्ता के इतने [illegible]

लड़के—वे सभी क्यों एक बुरी लड़की के हाथों में खेल रहे थे, इस बात को सुचिन्ता क्यों नहीं सोचती ? ऐसा सोचने की प्रथा नहीं है, इसी से शायद उस खुली हुई खिड़की पर नजर नहीं पड़ती थी।

प्रथा नहीं है, सचमुच ही प्रथा नहीं है।

बहुत दिनों से यही लोकापवाद प्रचलित है कि छलनामयी नारियां लोगों को वश में करके भेड़ बना देती हैं। अगर व्यक्ति में व्यक्तित्व है तो वह भेड़ बनता ही क्यों है, इस सवाल को कोई नहीं उठाता। सुचिन्ता भी इसे नहीं छूतीं। सिर्फ मन ही मन कहती हैं, वह तो सिर्फ मेरे लड़कों को ही नहीं नचा रही है, बल्कि मुझे भी नचा रही है। लेकिन अब अधिक नहीं, बिल्कुल नहीं।

रात के आसमान की ओर ताकते हुए वे प्रतिज्ञा करती हैं, "अब नहीं।" उससे कल सुबह होते ही कह देंगी, अब बहुत दिन हो गये, स्वस्थ होने के कुछ लक्षण देख रही हो ? अभी भी वही बच्चों की तरह विचार-व्यवहार है। तब और क्यों ? अब मुझे छोड़ दो। देखती नहीं हो, अपने बेटों के चेहरे की तरफ मैं नजर उठाकर देख भी नहीं पाती।"

बेटे ?

तब वे भी शायद आज जैसी व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से देखकर ही शांत नहीं बैठ जाते, मुझ पर व्यंग्य करते, तीखे सवालों की तेज बौछार करते हुए कहते, "तुम्हारे बचपन के प्रेमी की हर समय तुम पर गड़ी मुग्धदृष्टि को आखिर हम लोग कब तक बर्दाश्त करते रहेंगे ? फिलहाल तुमने उनकी दृष्टि को आच्छन्न कर लिया है, इसीलिए वे कटु नहीं हो पा रहे हैं।

लेकिन तुम कितने दिनों तक ऐसा कर पाओगी ?

जिस दिन तुम्हारा आंजा हुआ मोह का काजल पुंछ जाएगा, उसी दिन मेरी गृहस्थी विरोध से झनझना उठेगी। बहुत सारे समुद्रों को पार करके अब जाकर कहीं तट पर आश्रय लिया था, अब फिर से क्यों मुझे उसी उत्ताल समुद्र में ढकेले दे रही हो ?

कहेंगी, वह सब कुछ कहने के लिए सुचिन्ता ने मन ही मन स्थिर संकल्प कर लिया, लेकिन सुबह होते ही जाने कैसे सारा संकल्प धरा रह गया। वे खुद ही आन्दोलित हो उठीं। दूध के लिए, गरम पानी के लिए, भोजन जल्दी तैयार करवाने के लिए वे निरन्तर ऊपर-नीचे आते-जाते हुए परेशान होती रहीं।

इसके बाद जैसे ही अपनी दोनों नीली कंचों जैसी नजरें उठाकर कोई भारी रोबदार आवाज में बात करता, नजदीक आकर कहता, "सुचिन्ता आखिर सुबह से तुम्हें इतना क्या काम है, बताओ तो ? सुबह से आसमान में कितने रंग हुए, कितना उजाला हुआ, सब खो गया, उन्हें कुछ भी दिखा नहीं सका।" तब

सुचिन्ता अपनी सुध-बुध खो बैठती। मुस्कराते हुए कहती, "अभी उजाला खोया कहाँ है, वह देखो कितना उजाला है।"

"वह तो धूप है। उसमें रंग कहाँ है? सुबह कितना रंग था? ठीक हमारे बचपन के आकाश की तरह। वैसी ही जैसी तुम्हारी दुछत्ती पर चढ़कर हम लोग देखते थे।

दुछत्ती पर?

निमिष में वह अपने अद्भुत रोमांच सहित अतीत का पथ अतिक्रमित करते हुए उपनगर के उस कांच के बरामदे में आकर खड़ी हो जाती। दुछत्ती की छत। जहाँ अपने को चतुर समझकर बड़े इत्मीनान से दो अबोध बच्चों को एक दूसरे को बगल में खड़े हुए कँटिया से चंपा के फूल तोड़ते हुए देखती।

एक बहुत बड़ा वैशाखी चंपा का वृक्ष अपने सुनहले स्तवकों का संभार लेकर सुचिन्ता के घर की दुछत्ती पर झुका रहता था। जहाँ से एक छोटे कँटिये की सहायता से ही उन गुच्छों को झुकाया जा सकता था।

सुशोभन की दादी के बाणेश्वर वैसाख भर चम्पा के फूलों का अर्घ्य चाहते थे और सुशोभन अपनी दादी के लिए अर्घ्य जुटाने के लिए तत्पर रहता था। इसका कारण था, दादी उसे किसी बात पर टोकती नहीं थीं। इसीलिए कँटिया लेकर वह चुपचाप दुमंजिले मकान की छत पर चढ जाता था। लेकिन क्या सिर्फ दादी के अर्घ्य की व्यवस्था करने के लिए ही? क्या रात के अंतिम पहर से ही सुशोभन को अपना बिस्तर काँटे की तरह गड़ने नहीं लगता था? फिर वह कितना ही चोरी-छिपे जाता, सुचिन्ता की तेज नज़रों के बच पाना मुश्किल था। तुरन्त सुचिन्ता अपनी दादी से जाकर शिकायत करती वह देखो दादी, डकैत है। तुम्हारे गोपाल भगवान् के लिए एक भी फूल नहीं छोड़ेगा। जरा देना तो फिर से छत पर चढ़ गया अपनी तसर वाली साड़ी। उसे पहनकर मैं भी जरा छत पर हो आऊँ।"

दादी उसे डाँटकर कहती, "रहने दो, इस समय अब तुम्हे रणचंडिका बनकर छत पर जाने की जरूरत नहीं है, 'भना' खुद मुझे फूल दे जाएगा।"

'भना' मतलब सुशोभन।

दादी की सास का नाम शायद सुषमा था, इसीलिए सुशोभन को पूरे नाम से न बुला पाने की लाचारी थी।

सुचिन्ता भी बीच-बीच में चिढ़ाती, "भना भनाभन् मच्छर भनभन भन।"

सुशोभन भी उसे नहीं छोड़ता था। मुँह चिढ़ाकर कहता था, "सुचिन्ता, ता धिन ता। ये बातें जब प्रेम भाव बना रहता तब होती। फूलों की चोरी के मामले में तो दोनों में परम शत्रुता का ही भाव रहता था।

"भना मुझे फूल दे जाएगा", सुचिन्ता दादी को ही चिढ़ाकर कई शब्दों हैं

उसी से तुम कृतार्थ हो जाओगी। अपनी ही संपत्ति में भिखारी। क्यों, वह दस्यु सारे फूल तोड़कर अपनी दादी के लिए ले जाएगा और तुम्हारे सामने तुच्छ भाव से दो फूल फेंक जाएगा, ऐसा क्यों, जरा मैं भी तो सुनूं ?"

तब भी सुचिन्ता की दादी अपनी नातिन को ही डांटतीं, "देखो तो, तुच्छ भाव से क्यों फेंक जाएगा ? काफी श्रद्धा-भक्ति से ही देता है। तू शैतानी करने नहीं जा पा रही है। इसी से जल रही है, यही कह न। नहीं, नहीं, तुझे नहीं जाना होगा। तेरी मां नाराज होती है।"

"मां की बातें छोड़ो। मां तो, जब सुबह तुम गृहस्थी का सारा काम छोड़कर दो घंटा पूजा करती हो उससे भी नाराज होती है। इस घर में पूजा-अर्चन में भला किसका मन लगता है ?"

अपनी कार्यसिद्धि के लिए सुचिन्ता विभीषण की भूमिका ग्रहण करने में भी पीछे नहीं हटती थी।

खैर, कार्यसिद्धि होती भी थी।

दादी गंभीर होकर कहतीं, "अच्छा तू जा, देखूं तेरी मां क्या कहती है ?"

उस कहने की डोर पकड़कर ही वे उस 'दो घंटे' वाली बात का जवाब देकर रहेंगी, यह संकल्प करके ही शायद वह घसाघस चंदन घिसने लगतीं। तब वे सुचिन्ता की मांगी हुई तसर की साड़ी उसकी ओर उछाल कर देना नहीं भूलतीं।

एक ही चालाकी से बहुत दिनों तक काम नहीं चलता था। तब दूसरे उपाय भी करने पड़ते थे। बेचारे सुशोभन को दो-चार दिन पाप के भय से आंखें मूंद कर गोपालजी का पावना बंद करके खामोशी से उतर आना पड़ता।

दादी दो घंटा बीतने के बाद भी कुछ देर और इन्तजार करके पूछती, "अरी चिन्ते, भना क्या अभी तक पेड़ ही हिला रहा है ? जरा देख तो ?"

सुचिन्ता गर्दन घुमाकर बोली, "ओ मां, तुम्हारा भना तो जाने कब का चला गया। क्यों फूल नहीं दे गया ?"

"कहां दे गया ?"

"अब देख लो अपनी श्रद्धा-भक्ति की बानगी।"

कहकर आंखों, भौहों से भरसक कायदा करती थी सुचिन्ता। नहीं, उसे पाप का डर नहीं था। उसने फूलचोर को सिखला दिया था कि अंजुरी भर फूल गोपाल के नाम से जल में बहा देने से ही पाप कट जाएंगे।

"जाती हूं मैं!" कहकर सुचिन्ता कमर कसने लगी।

"अब कहां जायगी तू ?"

"क्यों सही बात सुनाने के लिए। वहां वाली दादी से कहूंगी, क्या आपके

प्राणेश्वर ही भगवान् हैं ? और गोपाल शायद बाढ़ के जल मे बह कर आये हैं ?"

"रहने भी दो, निपहरी में अब तुम्हे पड़ोस मे जाकर झगड़ा नही करना होगा।" ऐसा कहकर दादी रोकना चाहती, लेकिन दद्दा इस मामले मे सुचिन्ता के समर्थक हो जाते। वे कहते, "बात तो सही है, यह उन लोगों के लड़के का अन्याय है। कहना जरूरी है।"

अतएव उचित बात कहने के लिए सुचिन्ता को उनके मकान में जाना ही पड़ता।

सुशोभन पूछता, "तेरे छत पर चढने की बात दादी को मालूम तो नहीं हुई ?"

"नहीं।"

"मालूम पड़ जाता तब ? और तुझे भी रोम-रोम से पता चलता अगर एक बार भी तेरा पैर फिसलता। एक आँख बद करके सूरज के रंगों को देखने के चक्कर मे बस तू गिरते-गिरते बच गयी।"

"क्यों, शहजादे की आँखें तो खुली थी, मुझे पकड़ नही सकता था ? वह क्यों होता, गिरकर मैं अपनी हड्डी-पसली तुड़वाऊँ तुम्हारी यही इच्छा है न।"

"तो सच कहूँ, यही इच्छा होती है। लँगड़ी होकर बैठी रहने से तेरी शादी नहीं होगी।"

सूर्य की सतरंगी आभा क्या उस बालिका के चेहरे पर दीप्तिमान हो उठती ?

नही; अब चेहरे पर वह कोमलता नही रही थी। अब वहाँ सात में छः रंग बेमानी हो गये थे। अब सिर्फ एक ही रंग नजर आता था और वह था लाल। लज्जा ! अब लज्जा का रंग ही एकमात्र सहारा था।

फिर भी उस एकरंगे चेहरे से सुचिन्ता सुशोभन की बातों के जवाब में कहती, "अभी क्या हम लोगों के बचपन के दिन हैं कि सब कुछ भूल-भाल कर आकाश का रंग ही देखते रहेंगे। क्या हम लोगों की उम्र नहीं हुई है ?"

सुशोभन ने हताश होकर कहा, "उम्र हो गयी। ओह ! लेकिन सुचिन्ता, आकाश की तो उम्र नही बढ़ती ! पृथ्वी की भी उम्र नहीं बढती ! सिर्फ मनुष्यों की ही उम्र क्यों बढ़ती है ? चारों तरफ सब एक जैसा रहता है। सिर्फ मनुष्य ही बदल जाता है। कितने ताज्जुब की बात है।"

रात मे नीद न आने पर दक्षिण दिशा की खिड़की खोलकर बैठे रहने के वक्त इस आश्चर्य का प्रश्नचिह्न आँखों के सामने दुबारा बनना आकार लेता है; और इस समय आकाश में सिर्फ अँधेरे के रंग के सिवाय कोई दूसरा नहीं होता।

लोग ही सिर्फ बदल जाते हैं। बदलना ही पड़ता है। कोई उपाय नहीं है। बदलाव को अस्वीकार करने वालों को लोग पागल कहने लगते हैं।

लेकिन सुचिन्ता के पागल होने से काम कैसे चलेगा ?

वे कल ही नीता से यह बात कह देंगी।

रात में नींद न आने पर अनुपम कुटीर का बड़ा लड़का भी बिस्तर से उठ कर खिड़की के पास आरामकुर्सी बिछा लेता है। वहाँ से आसमान का एक टुकड़ा नजर आता। नगर ने वहाँ की जमीन पर अपना कब्जा जरूर कर लिया था लेकिन अभी तक आसमान उसकी मुट्ठी की पकड़ में नहीं आ सका था। बिस्तरे पर लेटकर, आरामकुर्सी पर पसर कर आसमान में बादलों का आना-जाना नजर आता है, नजर आता चाँद का क्षय और पूर्ण चन्द्रमा। नजर आता, आसमान की ओर सिर उठाये हुए नारियल के पेड़ और झिलमिलाते हुए पत्ते।

उसी झिलमिलाहट की ओर देखते-देखते बातों के टुकड़े और हँसी झिल-मिला उठीं—

"धन्य हैं बड़े भैया खूब हैं आप भी। ऐसी सुनहली शाम में भी आप कमरे में अंधेरा करके पड़ रहे हैं ? खिड़की तक नहीं खोली ? आपको छुट्टी देने की जरूरत क्या है उन लोगों को !···"

"ओह ! बड़े भैया आज आप चलिए न हमारे साथ; पिताजी को डॉक्टर के चेम्बर में भेजकर बाहर अकेले बैठते हुए मुझे डर लगता है।···मँझले दादा ? वे तो बहुत व्यस्त रहते हैं। रहे छोटे बाबू तो सिर्फ मेरे चक्कर में घूमते-फिरने से वह इम्तहान में फेल हो जाएँगे।"

"क्यों बड़े भैया, आपने तो खूब कहा था कि घर से बाहर चले जाने पर ही गीत गाना संभव हो सकेगा ? अब तो सुनते रहते हैं ?···शब्दों से परेशान होकर पड़ नहीं पा रहे हैं क्या ? आप गीत में तन्मय नहीं हो गये थे ? मैंने तो यही समझा था।"

"बड़े भैया ! बड़े भैया।"

यह सम्मान घर के सबसे बड़े बेटे के प्रति व्यक्त किया गया था।

इस सम्मानजनक तिलक को पोंछ कर फेंका भी नहीं जा सकता था। यह तिलक अगर दग्ध भी कर डाले तब भी इसे प्रसन्नचित्त से वहन करना होगा।

दूसरे कमरे में व्याकुल चहलकदमी हो रही थी। नीचे के तल्ले में ठीक इसी कमरे के नीचे सुवल सोया हुआ था। वह सोचने लगा, यह सब क्या हो रहा है ? भुतहे मकान को अब क्या ब्रह्मदैत्य ने दबोच लिया ? किसके चलने की आहट रात भर होती है ?

चहलकदमी करने वाला इस बात की चिंता नहीं करता था। मध्य रात्रि

को ही वह सशब्द कुर्सी खींचने लगता, खाट को खींचते हुए वह एकदम पंखे के नीचे ला पटकता है।

"वह किसे चाहती है ?"

नीलांजन ने दीवाल से प्रश्न किया।

"या किसी को भी नहीं चाहती ?"

"बड़े भैया के कमरे में उसे इतनी क्या जरूरत रहती है ? ऐसी कौन-सी बातें उनसे होती हैं ? भैया की भी बलिहारी है, उसके स्वर में अपना स्वर मिला कर निर्लज्ज की तरह हँसते रहते हैं।

अनुपम कुटीर का हाल क्या अनुपम के समय जैसा ही हो गया था ? हर समय गप्पें, हर समय हँसी की हिलोर। बाकी समय मे गीत-संगीत। अब तो घर का कोई भी डिस्टर्ब्ड नही महसूस करता।···नीलांजन ने सोचा, मेरी बात अलग है, मैं अपने को उतना हलका नही बना सकता।

'थोड़ी-सी हँसी, थोड़ी-सी मीठी नजर, थोड़ा-सा स्पर्श मुझे इन बातों से कोई नही फँसा सकती।'

अगर मैं लूँगा तो सब लूँगा, पूरा लूँगा। मुट्ठी मे पीसकर गलाकर उसे सोने की डिबिया में भर कर रख दूँगा। मुझे अब युद्ध मे उतरना होगा, भले ही बड़े भैया के साथ हो या फिर इन्द्र के साथ। उतरकर ही देखूँगा। देखूँगा कहाँ तक उतरा जा सकता है। मुझे हर हालत में उसे पाना ही होगा।····

और दूसरी तरफ के कमरे में लेटे-लेटे एक और प्रतिपक्ष का सोचना था, नहीं, अब और नही। कल से फिर से लिखने-पढ़ने में मन लगाना पड़ेगा। बिल्कुल कुछ नही हो रहा है। नीता की बातों से बचना संभव नही, लेकिन बचना ही होगा। कहना पड़ेगा, दुहाई है, तुम्हारी यह सर्वनाशी पुकार ही सारे नाश की जड़ है।

लेकिन अब उस आमंत्रण को स्वीकार करने से काम नही चलेगा।

पढ़ना होगा, कल से बिल्कुल लिखायी-पढ़ायी मे अपना ध्यान लगाना होगा।

और सुचिन्ता के उस बड़े कमरे मे ?

सोये हुए पिता की आँखों को प्रकाश से बचाकर टेबुल लेम्प के पास बैठी हुई नीता सिर नीचा किए हुए देर रात तक पत्र लिख रही थी—वह जो सारे झगड़े की जड़ और सारी दाहकता की मरहम भी है।

वह किसी नीले फैशनेबिल कागज पर न लिखकर सरकारी मोहर लगे हवाई अन्तर्देशीय पत्र पर लिख रही थी। जिसके कंधों पर सागर पार दूत बन कर जाने का भार था।

महीन-महीन अक्षरों से नीता ने पूरा पन्ना भर दिया था, "तुम्हारे निर्देशानुसार पिताजी को यहाँ ले आयी थी यह सोचकर कि हठ करके यहाँ आ पहुँचने

पर वे भगा नहीं पायेंगे। देखती हूँ तुम्हारा कहना ही ठीक था। पिताजी के आँखों का वह धूमिल-धूमिल असहाय भाव लगता है बीच-बीच में खत्म हो जाता है। और स्वच्छ आनंद की आभा वहाँ फूट पड़ती है। सचमुच कभी-कभी यह लगने लगता है कि पिताजी को फिर से पहले की ही तरह स्वस्थ पा सकूँगी।

तुम जब तक यहाँ आओगे लगता है तब तक तुम्हारी निर्दिष्ट चिकित्सा से ही पिताजी काफी हद तक स्वस्थ हो जाएँगे।

जिनको मैं संबोधन के लिए कुछ न सोच पाकर 'बुआ' कहने लगी हूँ, वे बड़ी जटिल परिस्थिति में फँस गयी हैं, ऐसा मैं भी महसूस करती हूँ। एक तरफ वे परेशान हैं, अपने असहनशील पुत्रों के कटाक्षों से पीड़ित हैं और दूसरी ओर प्रतिपल उनके चेहरे पर खुशी की आभा-सी नजर आती है।

इसे बखूबी समझ रही हूँ कि पिताजी की तरह ही उनकी जिंदगी भी अकेलेपन की रही है, इस समय एक बड़े बच्चे के खेल में साथ देना ही जैसे उनकी परम परिपूर्णता हो गयी है।

जब मैं आयी थी तब लगा था वे बूढ़ी हो गयी हैं, अब वैसा नहीं लगता। मन के साथ-साथ जैसे चेहरे से भी उम्र की छाप मिट गयी है। कभी-कभी खुद को अपराधी महसूस करने लगती हूँ। सोचती हूँ पिताजी जब स्वस्थ हो जाएँगे, और मैं उनको लेकर चली जाऊँगी, तब इनका क्या होगा ?

कच-देवयानी की वे अंतिम पंक्तियाँ याद पड़ती हैं—

मेरा क्या काम है, मेरा क्या व्रत है।
मेरे इस प्रतिहत निष्फल जीवन में,
क्या लेकर मैं गर्व करूँगी ?
× × ×
जिधर भी अपनी नजरें फेरूँगी,

सैकड़ों स्मृतियों की चुभन··· दुर, क्या तुम इन पंक्तियों को नहीं जानते कि मैं इन्हें लिखने बैठी हूँ ? लेकिन उनके सुप्त मन को जगाकर शायद मैंने उनका नुकसान ही किया है या शायद ऐसा नहीं भी हो।

इतनी ही उनके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता है।

जीवन में सबसे बड़ी प्राप्ति।

जो हुआ सो हुआ लेकिन अब बताओ मुझे क्या करना चाहिए ? मुझे तो तुम्हें पाना ही होगा। पिताजी को स्वस्थ न कर पाने पर मैं तुम तक कैसे जा पाऊँगी। किस मुँह से जाऊँगी ? लेकिन 'यह जीवन जाता है तो जाए' कहकर मुस्कराते हुए बैठी रहने का-सा दम भी मुझमें नहीं है। निःसंग जीवन की यहाँ पर जैसी प्रतिक्रिया देख रही हूँ।

डॉक्टर के चेम्बर में भी यही बातें होती हैं।

मानसिक रोगियों की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है, उसका कारण है लोग एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। लोग बहुत अधिक भौतिक और बेहद बनावटी बनते जा रहे हैं। 'अंतरंग मित्र' जैसी बात कहानियों का विषय बन गयी हैं। मन अगर किसी के मन का स्पर्श न पा सके तो वह जियेगा कैसे ? तुम कब आ रहे हो ? अब और अधिक देर मत करो। देर होने से क्या होगा, कहना कठिन है। तुम्हारी पाली हुई मछली की ओर कौवा, चील और बिल्ली घात लगाए हुए हैं।···अब तुम समझ लो। कितना और सँभाल पाऊँगी ?····सभी कुछ तो लिख चुकी हूँ। बीमार को लाकर देख रही हूँ कि यहाँ सभी कोई बीमार हैं। सभी मानसिक बीमारियों से ग्रस्त हैं।

उनका रोग कैसा है, मालूम है ?

साधारण होते हुए भी असाधारण समझने की चाह। अस्वाभाविक होने से कोई असाधारण नहीं हो जाता, इसे उन्हे किसी ने समझाया नही। नही समझाया, इसलिए असाधारण होने के लिए जनसामान्य से दूर रहने की प्रवृत्ति से वे लोग खुद ही मुहल्ले में छुतहे रोगी की तरह निर्वासित होकर पड़े हुए हैं।

असाधारणता प्रकट करने के लिए घर मे एक दूसरे से न कोई खुलकर बात करता है न हँसता ही है। हालांकि सब साधारण हैं, एकदम साधारण। थोड़ा-सा ही कुरेदने से असलियत सामने आ जाती है।

सुचिन्ता बुआ की बात समझ मे आती है। बहुत दिनों के निःसंग जीवन की शून्यता ने ही उन्हें ऐसा मौन और नीरस बना दिया है। फिर एक प्रकार की आत्मरति भी उसी मे जुड़ गयी है। अपने मे निमग्न रहते-रहते अपने से ही प्यार करने लगी हैं।

यह आत्मरति ही इनके जीवन का अवलम्ब बन गयी है। खैर, यह बात तो समझ मे आती है। लेकिन तीन-तीन जवान लड़के ऐसे क्यों होंगे, कहो तो ? असहनीय नही लगता ? मैं इन लोगो को सामान्य बनाने के लिए प्रयास कर रही हूँ। हालांकि ऐसा नही लगता कि इसमे खूब मेहनत करनी पड़ेगी। सबसे छोटे को इसी अवधि में काफी कुछ रास्ते पर ला दिया है। घर मे अधिक सहज नहीं हो पाता, शायद उसे शर्म आती होगी, बाहर निकलकर उसे ऐसा लगता है जैसे उसे अब साँस लेने का मौका मिला हो।

सच कहती हूँ, इनके लिए मन मे थोड़ा ममत्व भी जागृत हो गया है। सब बड़े असहाय लगते हैं। सबसे बड़े के प्रति मेरे मन में आदर का [illegible] है, सबसे छोटे के प्रति स्नेह। सिर्फ मँझले के प्रति अभी भी मन में [illegible] हुई है।

लिखने की अब कोई जगह नहीं है, इसीलिए लेन-देन की बातें फिर कभी।

—

अनुपम के जमाने में एक मोटर गाड़ी थी।

अनुपम ने पुराने मॉडल की एक जर्जर सेकेण्ड हैंड मोटर जोखिम उठाकर एक झटके में खरीद ली थी। उस पर सवार होकर एक मोटरगाड़ी का मालिकाना जताकर, मन ही मन खूब तुष्ट होते थे, उस गाड़ी से ही अपने नाते-रिश्तेदारों को लाते, उन्हें पहुँचाते थे, बुआ-मौसी को गंगा स्नान कराते थे। सिर्फ अपनी पत्नी और बच्चों को ही वे इस पर सवार होने के लिए राजी नहीं कर पाये थे।

सुचिन्ता के पास कभी भी घूमने का समय नहीं रहता था और लड़कों को उस विशिष्ट गाड़ी पर चढ़ने में शर्म आती थी। अनुपम कहते थे, "अरे बाबा, गाड़ी का काम तो तुम्हें एक जगह से ढोकर दूसरी जगह ले जाना भर है, वह काम क्या इससे नहीं होता है? तब उसकी गलती कहाँ है?

लड़कों को गाड़ी की गलती दिखलाने का मन भी नहीं होता था। कहते, "कोई जरूरत नहीं है।"

अनुपम कहते, "तुम लोगों के मन लायक गाड़ी ही मैंने खरीदी होती, अगर मैंने इस मकान का काम न शुरू किया होता। वह भी कभी हो जायगा। स[illegible] करने से मेवा मिलता है।"

लेकिन मेवा मिलने तक इन्तजार करने का अवसर नहीं मिला अनुपम को[illegible] इसलिए फिर से इन लोगों के मनमाफिक गाड़ी होने का हिसाब नहीं बैठ[illegible] कहते हुए मन में कोई पाप नहीं है, गाड़ी की आशा खत्म होने का आक्षेप जि[illegible] इनके मन में नहीं हुआ, उससे अधिक सुखी वे इस बात से हुए कि अनुपम य[illegible] समय मरकर इन लोगों को निष्कृति दे गया। जीवन में पहली बार उन [illegible] ने पिता के आचरण की सराहना की।

इस अनुपम कुटीर का गृह-प्रवेश अगर खुद उनके हाथों हुआ होता[illegible] उनके शोर-शराबे भरे गृह-प्रवेश की घोषणा से इस परिवार की अपरिष्कृ[illegible] ही प्रकट हुई होती।

अनुपम के स्त्री-पुत्र कितने परिष्कृत रुचि के हैं, कितने परिष्कृत व्यव[illegible] हैं, इसे कोई जान ही नहीं पाता। इसके अलावा तो पूरा मकान ही हर[illegible] आदमियों की धमा-चौकड़ी से नरक बना रहता।

नरक होता लोगों के आने-जाने, खाने-पीने, हँसी-ठहाके, ताश-शत[illegible] बाजियों आदि से। बाप रे!

बाँध तोड देने के बाद मर जाने से ही क्या और जिंदा रहने से ही क्या ? ख़ैर, उतना नही हुआ ।

सुचिन्ता और उनके लड़कों ने अपरिचय का आवरण ओढ़कर इस मोहल्ले में कदम रखा था, आज वह आवरण उन लोगों ने कायम रखा था।

टूटी हुई जर्जर-गाडी को अनुपम का श्राद्ध होने के पहले ही बेच दिया गया। नयी गाडी खरीदने की क्षमता उनके लडको मे नही थी, इसलिए अब बस, ट्राम या टैक्सी का ही भरोसा था ।

वैसे घर के सामने से ही बस के जाने से कोई असुविधा नही थी । असुविधा इसी बात की थी कि कहीं कोई पड़ोसी बस मे सवार होकर मुस्कराते हुए उनसे पूछ न बैठे, "कहिए क्या हाल-चाल है ?" इसीलिए सारे समय गर्दन टेढी करके खिड़की के बाहर देखते रहना पड़ता था । लेकिन इधर असुविधा कम हुई है । उपनगर की सीमा पर स्थित रेलवे क्रॉसिंग की मरम्मत होने से बसें दूसरे रास्ते से आ-जा रही थी । इसको, उसको, सभी को क्रॉसिंग के पास उतरकर पैदल जाना पडता था ।

उसी रास्ते से पैदल आते-आते अचानक नीलांजन को ठिठक जाना पड़ा, चौराहे के पास की स्टेशनरी की दूकान पर वह कौन खडी है ?"

कहीं नीता तो नही ?

"हाँ, वही तो । जरूर अपने लिए कुछ खरीदने की जरूरत पडी होगी । आयी होगी, नीलांजन को इससे क्या ? यह बात नीलांजन ने भी सोची, इससे मुझे क्या ? लेकिन यह सोचकर भी वह आगे नही बढ सका, खडा ही रहा । हालांकि इस तरह से नही कि उसे देखकर लगे कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो ।

"अरे आप !"

नीता को ही सम्बोधन करना पडा । नीलांजन की नजर इस पर तो अभी-अभी ही पडी । या अच्छी तरह से देख ही नही पाया । 'मँझले भैया' कह कर पुकारने की सहजता के कारण नीलाजन ने ध्यान ही नही दिया था । इसलिए सिर्फ आपका सम्बोधन ।

"ओह हाँ, अभी तो लौट रहा हूँ । आप यहाँ कहाँ ?"

"मैं, यहीं कुछ खरीदना था । आइए चलें ।"

नीता ने चलते-चलते गंभीर होकर कहा, "अच्छा क्या आपने भद्रता के प्रारंभिक अक्षर भी नही सीखे हैं ?"

"क्या मतलब ?"

आरक्त चेहरे से नीलांजल ने पूछा ।

"मतलब बहुत सरल है । एक भद्र महिला अगर कोई सामान ढो रही हो

लिखने की अब कोई जगह नहीं है, इसीलिए लेन-देन की बातें फिर कभी
इति—

अनुपम के जमाने में एक मोटर गाड़ी थी।

अनुपम ने पुराने मॉडल की एक जर्जर सेकेण्ड हैंड मोटर जोखिम उठाकर एक झटके में ख़रीद ली थी। उस पर सवार होकर एक मोटरगाड़ी का मालिकाना जताकर, मन ही मन ख़ूब तुष्ट होते थे, उस गाड़ी से ही अपने नाते-रिश्तेदारों को लाते, उन्हें पहुँचाते थे, बुआ-मौसी को गंगा स्नान कराते थे। सिर्फ अपनी पत्नी और बच्चों को ही वे इस पर सवार होने के लिए राजी नहीं कर पाये थे।

सुचिन्ता के पास कभी भी घूमने का समय नहीं रहता था और लड़कों को उस विशिष्ट गाड़ी पर चढ़ने में शर्म आती थी। अनुपम कहते थे, "अरे बाबा, गाड़ी का काम तो तुम्हें एक जगह से ढोकर दूसरी जगह ले जाना भर है, वह काम क्या इससे नहीं होता है ? तब उसकी गलती कहाँ है ?

लड़कों को गाड़ी की गलती दिखलाने का मन भी नहीं होता था। कहते, "कोई जरूरत नहीं है।"

अनुपम कहते, "तुम लोगों के मन लायक गाड़ी ही मैंने खरीदी होती, अगर मैंने इस मकान का काम न शुरू किया होता। वह भी कभी हो जायगा। सब्र करने से मेवा मिलता है।"

लेकिन मेवा मिलने तक इन्तजार करने का अवसर नहीं मिला अनुपम को। इसलिए फिर से इन लोगों के मनमाफ़िक गाड़ी होने का हिसाब नहीं बैठा। कहते हुए मन में कोई पाप नहीं है, गाड़ी की आशा खत्म होने का आक्षेप जितना इनके मन में नहीं हुआ, उससे अधिक सुखी वे इस बात से हुए कि अनुपम यथा-समय मरकर इन लोगों को निष्कृति दे गया। जीवन में पहली बार उन लोगों ने पिता के आचरण की सराहना की।

इस अनुपम कुटीर का गृह-प्रवेश अगर खुद उनके हाथों हुआ होता तो उनके शोर-शराबे भरे गृह-प्रवेश की घोषणा से इस परिवार की अपरिष्कृत रुचि ही प्रकट हुई होती।

अनुपम के स्त्री-पुत्र कितने परिष्कृत रुचि के हैं, कितने परिष्कृत व्यवहार के हैं, इसे कोई जान ही नहीं पाता। इसके अलावा तो पूरा मकान ही हर समय आदमियों की धमा-चौकड़ी से नरक बना रहता।

नरक होता लोगों के आने-जाने, खाने-पीने, हँसी-ठहाके, ताश-शतरंज की बाजियों आदि से। बाप रे !

तो क्या किसी भद्र व्यक्ति के लिए उसे सिर्फ देखते रहना उचित होगा ?

"सामान ढोना ?"

नीलांजन ने कटाक्ष करते हुए कहा, "खरीदने को तो आपने खरीदा है एक क्रीम और स्याही की दावात, इसमें ढोने को वजन ही कितना है ?"

"वजन ही सब नहीं होता। लीजिए पकड़िए, रास्ते में कोई देखकर कहीं यही स्याही आपके मुंह पर न पोत दे, इसी डर से इसे दे देना पड़ रहा है।"

"बेहद कृपा की आपने।" नीलांजन ने कहा, "और कहीं चलेंगी ?"

"नहीं, और कहां जाना है ?" नीता ने गहरी साँस ली, "और कहां ? सुना है, यहां नजदीक ही कहीं आप लोगों का 'रवीन्द्र सरोवर' है। लेकिन हतभाग्य की तरह अकेले तो जा नहीं सकती।"

"मुझे अगर संगी की दृष्टि से आपत्तिजनक न समझें तो मैं चल सकता हूँ।"

"वह आप इस समय दिन भर के बाद थके-मांदे घर लौट रहे हैं।"

"मुझे थकान नहीं होती।"

"तब भी आप लोग जिस तरह के भयंकर नियम मानकर चलने वाले लोग हैं, थोड़ा इधर-उधर होने से ही शायद आपकी माँ चिंतित हो जाएँगी।"

"माँ !" नीलांजन के चेहरे पर एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कान कौंध गयी, "माँ के सोचने के लिए और भी मूल्यवान विषय हैं ?"

"क्या ?" नीता ने एक बार अपने ओठों को काट लिया।

"शायद। या शायद नहीं।" लेकिन कहा उसने सहज गले से ही, "लोगों के प्रति अश्रद्धा करते-करते आपकी ऐसी हालत हो गयी है कि आप श्रद्धा की बात ही भूल गए हैं।"

"श्रद्धा करने के लायक व्यक्ति होने से ही श्रद्धा की जाएगी न।" नीलांजन ने तेज होकर कहा, "वैसा व्यक्ति भी अब कहाँ मिलता है ?"

"यह आपका दुर्भाग्य है कि इतनी बड़ी दुनिया में आपको श्रद्धा करने लायक एक व्यक्ति भी नहीं मिला। लेकिन क्या आप इसका कारण जानते हैं ?"

"जानकर धन्य हो जाऊँगा।"

"कारण है, खुद पर आपने श्रद्धा करना नहीं सीखा है। खुद पर श्रद्धा कर पाने पर आप दूसरों पर भी श्रद्धा कर सकते थे। श्रद्धा करने के लिए अगर आसमान की ओर गर्दन उठाकर तलाश करते रहेंगे तो इसका कोई नतीजा नहीं होगा। ऊपर वाला बहुत अनुदार है।"

"इस बात की मुझे कोई शिकायत नहीं है।"

"आपको न हो, लेकिन मुझे आप लोगों के लिए दुःख होता है।"

"आप एक महान नारी हैं। खैर, फिलहाल हम लोग रवीन्द्र सरोवर पहुँच

गये हैं।"

"अरे, इतनी जल्दी पहुँच भी गये। क्या यह घर के इतने नजदीक था। पहले श्याम बाजार से गाड़ी पर चढ़कर आयी थी, इसलिए ठीक से अंदाज नहीं कर पायी थी। चलिए, कहीं बैठा जाय।"

नीता ने कितनी जल्दी बातों का रुख दूसरी ओर मोड़ दिया था।

क्या इसीलिए उसमें इतना आकर्षण था?

लेकिन 'बैठा जाए' कहने से ही क्या बैठना होता है? बैठने की जगह भला कहाँ मिलती है?"

इस संसार में कोई भी किसी के लिए थोड़ी-सी जमीन देने को तैयार नहीं है, इसी का प्रमाण ये लेक और पार्क हैं।

एक भी बेंच खाली नहीं था। नीता ने इधर से उधर और उधर से इधर सब जगह छान मारा, फिर नीलांजन के पास आकर बोली, "नहीं; कहीं कोई जगह नहीं है। सभी बेंचों पर कोई न कोई युगल बैठा है। यह पार्क एकदम से प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलने का लीलाक्षेत्र हो गया है। मैंने यूँ ही नहीं कहा था कि यहाँ अकेले आने का मतलब ही दुनिया को पुकार-पुकार कर जतलाना है कि देखो, मैं कितना अभागा हूँ, देखो, मैं कितना अक्षम हूँ।"

नीलांजन ने लज्जित होकर कहा, "आपके हँसी-मजाक का रूप बड़ा जटिल होता है, उसे हजम करना काफी मुश्किल होता है।"

"यह क्या, इतनी सीधी-सादी बात भी आपके लिए हजम करनी मुश्किल हो गयी? इन्द्रनील आपसे छोटा होने पर भी—कहीं अधिक समर्थ है।"

इन्द्रनील!

इन्द्रनील का नाम सुनते ही नीलांजन गम्भीर हो गया। क्या एक कमउम्र लड़के के साथ भी ऐसी ही वाचालता होती है?

नीता ने एक बार तिरछी नजरों से नीलांजन के चेहरे के भावों को परखकर मन ही मन हँसते हुए कहा, "और क्या किया जाय। आइये, घास पर ही बैठा जाय।"

घास पर!

और वे दोनों!

जैसी सस्ती भंगिमा में चारों ओर लोग बैठे हैं, उनकी ही तरह? मन विद्रोह कर उठा।

"रहने दीजिए, बैठने की बात छोड़िये, घूमने में ही क्या नुकसान है?"

"वाह, सिर्फ भटकती ही रहूँगी? बैठकर आलमूड़ी खाऊँगी, गोलगप्पे खाऊँगी, तभी न लेक घूमने का मजा आएगा।"

नीलांजन मुँह बिगाड़कर बोला, "मजे की बात क्या आप सिर्फ मजाक में

कह रही हैं या वास्तव में आपको इस तरह का सस्तापन अच्छा लगता है ?"

"सस्तापन से क्या मतलब है ? क्या लोग हर समय स्वयं को मूल्यवान बनाकर घूमेंगे ? यूं ही कहती हूं कि आप लोगों के लिए मेरे मन में तकलीफ होती है ! जिस बेचारे ने इमली के पानी में डुबोकर गोलगप्पे खाने का मजा नहीं लिया, उसका तो आधा जीवन ही नष्ट हो गया।"

"शराबी समझता है कि जिसने बोतल का मजा नहीं लिया उसकी तो पूरी जिंदगी ही बरबाद हो गयी।"

"अपनी जगह पर वैसा सोचना भी गलत नहीं है। लेकिन···ऐ आलमूड़ी।"

बड़े उत्साह से सुडौल छरहरी देह वाली नीता लगभग दौड़ पड़ी। सिर्फ लाई ही नहीं मांग-मांगकर उसने नमक-मिर्च भी अधिक लिया; फिर नीलांजन के पास आकर आंखें मटकाते हुए बोली, "लीजिए, पकड़िए। बिल्कुल फर्स्ट क्लास है।"

नीलांजन ने हाथ नहीं बढ़ाया। बोला, "आप ही खाइए।"

"इसका मतलब ? यह तो सरासर मेरा अपमान है।"

"मैंने इस तरह से आज तक कभी नहीं खाया।"

नीता हंसते हुए बोली, "जिन्दगी में कभी किसी लड़की के साथ 'लेक' घूमने आये थे ? पहले कभी नहीं किया, इसलिए आगे भी कभी नहीं करेंगे, यह तो कोई तर्क नहीं है। जिन्दगी में तो कभी शादी नहीं की, वह भी क्या कभी नहीं करेंगे ?"

दोनों हाथों में दो आलमूड़ी के ठोंगे लिए हुए नीता अट्टहास कर उठी।

नीलांजन ने चौंककर इधर-उधर देखा ऐसी लज्जाजनक स्थिति को कहीं कोई परिचित देख तो नहीं रहा ? लेकिन वह पहचानता ही किसे था ?"

लेकिन नीता क्या कोई अबोध बालिका थी—या कोई बच्ची थी ? वहीं से ही ठुनकते हुए बोली, "हाय, हाय तत्त्वकथा कहते-कहते तो मेरी आलमूड़ी का सत्यानाश ही हो गया। लीजिए पकड़िए, नहीं तो दोनों आलमूड़ी के ठोंगों को लेक के पानी में फेंक दूंगी।"

"क्या आफत है। दीजिए।"

"चलिए, घास पर बैठा जाए।"

"चलिए।"

दूसरी तरफ से घूरती हुई चार आंखों में से दो आंखें बिल्कुल फैल गयीं।

"लेकिन तुम तो कह रही थी कि वह लड़की छोटे भाई की नाक में नकेल डालकर घुमा रही है ?"

"परसों तक तो यही धारणा थी।" सफेद मकान ने गहरी सांस ली।

"तुमने गलत देखा था। यह तो मंझला भाई है।"

"शायद परसों तक तुम्हें भी अपनी धारणा बदलनी पड़े, देखोगे कि बड़े भाई के साथ वह मूँगफली खा रही है और हँसते-हँसते लोटपोट हो रही है।"

"यह लड़की तो बहुत बुरी है।" गुलाबी मकान ने कहा।

"क्यों ? इसमें बुरा क्या देखा ?"

"आज किसी एक के साथ घूम रही है तो कल किसी दूसरे के साथ। क्या यह किसी भली लड़की का लक्षण है ?"

"भली लड़की का लक्षण क्या होता है ?"

"सरल।"

"और नहीं तो क्या। वह तो खुलेआम बाहर-बाहर घूम रही है। तुम्हारी तरह गुप चुप नहीं।"

"देखो यह अच्छा नहीं होगा।"

"इसकी आशा तो क्रमशः घट ही रही है।" सफेद मकान ने बनावटी निःश्वास लेकर कहा। "अनुपम कुटीर इस तरह से चिंता जगा देगा, यह किसने सोचा था।"

"तुम्हारी चिन्ता क्या है ?" गुलाबी मकान ने टहोका दिया।

"चिन्ता नहीं है ? तुम्हारी आँखें तो उस मकान के लड़कों की गतिविधियों की जाँच में ही उलझ गयी हैं। उन्हें छोड़कर कुछ और भी देखोगी ?"

"रुको, बहुत हुआ—अरे वह लड़की हम लोगों की तरफ क्यों आ रही है ?"

सफेद मकान को कुछ कहने की फ़ुर्सत ही नहीं मिली।

नीता नजदीक आकर मुस्कराते हुए बोली, "आइए न, हम चारों एक ही जगह बैठें। आप लोग इतनी दूर से सिर्फ देख ही रहे हैं, हम लोगों की बातें तो आपको सुनायी पड़ नहीं रही हैं।"

गुलाबी मकान ने गुलाबी होकर कहा, "मैं इसका मतलब नहीं समझ पायी।"

"मतलब कुछ नहीं। जान-पहचान करने चली आयी। क्या नाम है आपका। ....ऐ आलमूड़ी और दो ठो देना।"

वे लोग जब घर लौटे तब शाम काफी ढल चुकी थी। चार लोगों में से तीन लोग रास्ते भर मुखर रहे जब कि एक व्यक्ति हर क्षण अपनी अक्षमता के कारण मन ही मन कुढ रहा था। सोच रहा था, आखिर वह उनकी तरह सहज क्यों नहीं हो पा रहा था ?

गुलाबी मकान और सफेद मकान दोनों ही अनुपम कुटीर के बाद पड़ते थे। नीता ने गुलाबी मकान से हँसते हुए बोली, "आइयेगा जरूर। अगर नहीं आयी तो समझूँगी गाना अच्छा लगने की बात बिल्कुल ही ग़लत है।"

"जरूर आऊँगी। मुझे गाना सुनना बहुत अच्छा लगता है।"

"मुझे अच्छा नहीं लगता, ऐसा प्रमाण भी जरूर आपको नहीं मिला होगा।" सफेद मकान ने आगे बढ़कर कहा।

"वाह, आप भी जरूर तशरीफ़ लाइयेगा।"

उनके जाते ही नीलांजन कहने लगा, "एक तरफ तो आप कहती हैं कि आपके पिताजी भीड़-भाड़ बिल्कुल नहीं बर्दाश्त कर पाते, दूसरी ओर आप घर में जबर्दस्ती भीड़ बुला रही हैं।"

नीता बोली, "यह भीड़ नहीं, सहज होना है। लोगों को जीवन में सहज होने की जरूरत है। स्वस्थ-अस्वस्थ सभी के लिए यह जरूरी है।" और मन ही मन सोचने लगी, "भीड़ के माने ही है निर्जनता।"

सुचिन्ता बहुत देर से परेशान हो रही थी।

नीता कहां गयी, नीलांजन अभी तक क्यों नहीं लौटा ! सुशोभन बीच-बीच में शिकायत कर उठते थे, "सुचिन्ता तुम मेरी बातों में मन नहीं लगा रही हो।"

"वाह मन क्यों नहीं लगा रही हूं।"

सुचिन्ता ने कहा जरूर लेकिन वह उठकर बार-बार बाहर वाली खिड़की की तरफ चली जाती थी और वहां से बाहर की तरफ देखती थी। आश्चर्य है, सुचिन्ता पहले तो कभी इतनी परेशान नहीं होती थीं। कभी-कदाचित् लड़के के लौटने में देरी होने पर कोई किताब लेकर बैठ जाती थीं। लौटने पर न कोई प्रश्न करती थीं न शिकायत, सिर्फ कहतीं, "खाना अभी खाओगे या थोड़ा आराम करने के बाद ?"

लेकिन आज जैसे ही वे लोग लौटकर साथ-साथ सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आये कि सुचिन्ता के स्वर में शिकायत भर आयी। बोलीं, "तुम लोग भी अजीब हो नीता, तुम लोग कहां जाओगी, इसे जाते वक्त बता नहीं सकती थी ? सोच-सोचकर मैं परेशान तो न होती ?"

सुचिन्ता बिल्कुल बदल गयी हैं।

लेकिन क्या सुचिन्ता का लड़का भी बदल गया है ? आज तो उसने ऐसे उद्वेगजनक स्थिति में बैठे स्वर में नहीं कहा, "परेशान होने की क्या बात थी ?" यही उसके लिए स्वाभाविक होता। जो अनुपम कुटीर की मानसिकता के अनुरूप होता।

ऐसा ही जवाब वह अपने पिता को भी देता था। लेकिन आज उसने कुछ नहीं कहा, दरवाजे का पर्दा सरका कर वह चुपके से अपने कमरे में घुस गया।

जवाब नीता ने दिया।

बोली, "भला कैसे बताती, मैं ही क्या पहले से जानती थी ? सब कुछ अचानक हुआ। लेकिन बड़ा मजा आया। लेक की ओर गयी, वहां जाकर आलमूड़ी खायी, पड़ोसियों से जान-पहचान की—"

बदल गयी हैं सुचिन्ता, बहुत अधिक बदल गयी हैं। अन्यथा इतने दिनों से बर्फ हो गया खून अचानक खौल कैसे उठता ? उस उबलते खून के दबाव से सारी शिराएँ फटने-फटने को हो आयीं।

जमाना कितना निडर और कितना लापरवाह हो गया है। इस जमाने की लड़कियाँ कितनी बेहया हो गयी हैं।

और सुचिन्ता ?

सिर्फ डर ही डर !

जीवन भर सिर्फ डरती ही रहीं। सिर्फ इस अपराध से कि उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में किसी से प्यार किया था। किसी दिन साहस करके उस हृदय को झकझोर देने वाले प्रेम को स्वीकृति नहीं दे पायीं। बचपन से यौवन, यौवन से प्रौढ़ता की सीमा पर पहुँच गयीं, लेकिन वही एक भयावह अपराध बोध उनके समस्त व्यक्तित्व को अपनी मुट्ठी में जकड़े बैठा रहा। न विद्रोह कर पायीं और न उस वज्रमुष्टि को ध्वस्त ही कर पायीं। बल्कि कहीं किसी की आँखें इसे पकड़ न लें, इसी डर से अपने जीवन भर के प्रेम को धूल-मिट्टी से दबा-दबाकर छिपाती आयी हैं।

वे बड़ों से भी डरीं और छोटों से भी।

लेकिन क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों ?

सुचिन्ता के समस्त अणु-परमाणु जैसे प्रचंड विक्षोभ से चीख उठना चाहते थे।

"क्यों ? क्यों ? क्यों ?"

और किसी को डरने की कोई जरूरत नहीं थी बस जरूरत थी तो सुचिन्ता को ही ?

यही जो उनका बेटा है जो इन दिनों बिना कारण के उनको नहीं देखता वह बेफिक्र होकर एक गैर रिश्तेदार लड़की के साथ साँझ ढलने पर घूम-फिर कर लौटा और वह भी निर्भय होकर गर्दन ऊँची करके।

और सुचिन्ता ? सुचिन्ता अपने भीरु प्रेम के कारण उसी लड़के से डर रही थीं।

क्यों ! क्यों ! क्यों !

उन्मुक्त रक्त स्थिर होने के पहले, कोई जवाब देने के पहले ही नीता फिर एक बार बोल पड़ी, "पिताजी शायद बुआ मुझ पर बुरी तरह नाराज हो गयी हैं।"

"बुआ ? तुम पर।"

अचानक सुशोभन अपनी गंभीर आवाज से हँसने लगे, "सुचिन्ता नाराज होगी ? गुस्सा क्या होता है, इसे वह भला जानती भी है ? गुस्सा

खुद तो तुम लोग मौज कर आये, उस पर आलमूड़ी भी खा आयी और हम लोगों को हिस्सा तक नहीं दिया ? ओह, बुआ जी के हाथों से आचार के तेल वाली गरम गरम मूड़ी (लाई) मुझे कितनी अच्छी लगती थी। सुचिन्ता तुम्हें याद है ? बुआ जी तुम्हें बुलाती थीं, "सुचिन्ता, आज मूड़ी तल रही हूँ, आना। मैं बुआजी के मूड़ी तलने का इन्तजार करता रहता था।''''अच्छा सुचिन्ता यह घटना दिल्ली की है या दिनाजपुर की ?"

इस बार नीता के चौंकने की बारी थी।

अपने समस्त उछाह को संभाल करके सुचिन्ता खिल-खिलाकर हँसने लगीं, "दिल्ली की ?" दिल्ली में कब हम लोग साथ-साथ थे, जरा सुनूँ तो ?'''' अच्छा, अब तुम लोग खाने बैठो, आलमूड़ी की कहानी से तो पेट नहीं भरेगा। क्यों सुशोभन ?"

"हम लोग भी बदला लेंगे, कल इन लोगों को दिखला-दिखला कर हम दोनों बचपन की तरह आचार के तेल से सानकर आलमूड़ी खायेंगे।"

यह खबर लाये खुद सुशोभन के बड़े भाई सुविमल। कोर्ट से लौटने के बाद ही रहस्योद्घाटन किया।

यह समाचार कहाँ से मिला, इसे बताने से पहले ही पूरे घर में अचरज का ज्वार आ गया। सुविमल ने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण करके प्रारंभ में दिनाजपुर की पैतृक जमीन पर ही वकालत करनी शुरू की थी जो अच्छी ही चल रही थी। लेकिन दूसरे हजारों लोगों की तरह उनका भी भाग्य देश-विभाजन के फलस्वरूप पलट गया।

पैतृक घर, खेत-खलिहान, गाय-बैल, मुवक्किल आदि सब को छोड़कर सिर्फ अपनी जान बचाकर सुविमल दिनाजपुर से कलकत्ता चले आये। साथ सिर्फ अपनी ही जान नहीं थी बल्कि सुविमल की अपनी गृहस्थी और वे खुद बेरोजगार! छोटे भाई की गृहस्थी भी साथ थी। जो भी हो, उनको सुविमल ने छोड़ा नहीं, सभी को साथ लेकर श्यामापुकुर के इस ध्वस्त मकान को खरीदकर रहने लगे।

सुशोभन बहुत दिनों से ही देश छोड़कर दिल्ली में रहने लगे थे। लेकिन अपने घर की मोह-माया उनमें जबर्दस्त थी। दिनाजपुर से सम्पर्क खत्म होने का समाचार पाकर वे सारे दिन शोकाहत होकर अपने बिस्तर पर पड़े रहे।

नहीं रहा ? दिनाजपुर अब नहीं रहा ?

भारतवर्ष के नक्शे से दिनाजपुर का नाम मिट गया ?

पूजा की छुट्टी होने के महीने भर पहले से ही अब किस बात को लेकर सुशोभन दिन गिनेंगे ? सारे साल की छुट्टी अब किसके लिए बचाकर रखेंगे ?

साल भर के लिए अब अपने मन को किसकी स्मृति से और किसके भविष्य की कल्पना से भुलाए रखेंगे ?

यह क्या हुआ ? यह क्या हुआ ?

निर्दयी भाग्य लोगों का स्वास्थ्य, धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, नाते-रिश्तेदार सभी कुछ छीनता रहा है । पुरखों की भीट भी शायद छीन लेता है लेकिन बाप-दादों की जन्मभूमि भी भला इसने कब किसकी छीनी है ।

सुशोभन शोक-विह्वल होकर पड़े रहे । हमेशा के लिए सम्पर्क समाप्त होने से पूर्व अंतिम बार देश न जा पाने की-बात सोचकर उनका मन और अधिक कचोटने लगा ।

सुविमल ने जब पत्र लिखकर कहा था और अधिक रहना अब मुश्किल हो रहा है; तब सुशोभन ने अर्जेन्ट टेलिग्राम भेजा था, "और दो-चार दिन रुको, मैं छुट्टी लेकर आ रहा हूँ ।

अंतिम बार की तरह एक बार—"

लेकिन छुट्टी की दरख्वास्त देकर सुशोभन जब एक छोटी अटेची में थोड़ा-बहुत सामान रखकर जाने की व्यवस्था कर रहे थे, ठीक उसी समय बड़े भैया का तार मिला, "आने की जरूरत नहीं है, हम लोग निकल पड़े हैं, अब एक और घंटा रुकना भी संभव नहीं हैं ।"

फिर दिनाजपुर जाना नहीं हुआ ।

न ही संभव हुआ सुचिन्ता के बगीचे के बकुल पेड़ के गाँठ के गड्ढे में सुचिन्ता द्वारा छिपाकर छुरी से खोद-खोदकर लिखा गया वह अक्षर 'सु' जिसको लिखने के बाद सुचिन्ता ने चुपके-चुपके कहा था, "देखो कैसी चालाकी की । तुम्हारे नाम का पहला अक्षर अपने इस बकुल वृक्ष पर खोद दिया लेकिन दूसरे लोग देखकर यही सोचेंगे कि मैंने अपना ही नाम यहाँ खोदा है । मजे की बात नहीं है क्या ?"

लेकिन क्या यह सिर्फ बकुल वृक्ष पर ही था ?

दिनाजपुर के मकान में क्या हर जगह अदृश्य अक्षरों में 'सु' 'सु' 'सु' यही नाम नहीं लिखा हुआ था ?

सब गया । सब खत्म हो गया ।

माँ, पिताजी, दादी, बुआ सभी खो गये, सारे नाम मिट गये । सुविमल का श्यामापुकुर का मकान जैसे एक दूसरे वंश का परिचय देने के लिए जग गया है। वे लोग दूसरे ही किस्म के हैं, बिल्कुल अलग है । दिनाजपुर के परिवेश से अलग होकर भाभी भी जैसे बिल्कुल आनजानी लगती हैं ।

फिर भी हर साल पूजा के दिनों में सुशोभन वहाँ चले जाते थे, जिनमें मन नहीं लगता था । वहाँ जाते थे तो साथ में ढेरों उपहार।

की तरह रुपया बहाते थे और छुट्टियां खत्म होने के बाद भारी मन से अपनी बेटी के साथ लौटने के लिए रेल पर चढ़ जाते थे।

इस नियम में व्यवधान हुए यही कोई तीनेक साल हुए होंगे। तब से सुशोभन कलकत्ता नहीं गये। नीता ले नहीं गयी। 'पिताजी की तबियत ठीक नहीं है, इसलिए इस बार भी आना नहीं हुआ।' लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती।

बड़े भैया भी अलग से उस चिट्ठी का जवाब न देकर साल में एक बार विजयदशमी के अवसर पर आशीर्वाद समेत जवाब भेज देते थे। भाभी कहती थी, "बाबू ने अब गरीबों का संग-सम्पर्क त्याग दिया है।"

लेकिन सुविमल से आज यह समाचार पाकर सभी के आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

सुना सुशोभन को कलकत्ते में आए हुए दो माह हो गए।

और आकर रह कहां रहे हैं सुचिन्ता के घर में। वहीं सुचिन्ता, दिनाजपुर में बगल के मकान की घोष परिवार की लड़की।

इसका मतलब क्या है?

चार वर्ष पूर्व जब वे लोग आये थे तब क्या किसी ने सुशोभन से दुर्व्यवहार किया था? सुशोभन की लड़की का क्या किसी ने अनादर किया था?

छीः छीः क्या ऐसा भी संभव था! जिस सुशोभन के दिए हुए कपड़े सुविमल और बेरोजगार भाई सुमोहन के बच्चे सारे साल पहनते थे, जो सुशोभन वहां पर आकर पानी की तरह अपना रुपया बहाता था, भला उससे दुर्व्यवहार! उसकी लड़की का अनादर!

लेकिन अगर असावधानीवश ऐसा कुछ घटा भी हो तो क्या इस त्रिभुवन में सुशोभन के रहने की कोई जगह नहीं थी कि उनको सुचिन्ता के यहां जाने की जरूरत पड़ी?

तब क्या सुचिन्ता अपने घर में कमरा अलग करके किराए पर उठा रही हैं? वही कमरा क्या सुशोभन ने किराए पर लिया है?

लेकिन उनकी छुट्टी कितने दिनों की है?

तब क्या रिटायरमेंट ले लिया है?

जिस सवाल का कोई जवाब देने वाला नहीं था, उसी सवाल से सारा परिवेश मुखरित हो उठा।

इसके बाद सुविमल ने कहा, "शायद रिटायर हो गया है, लेकिन भाड़ा-वाड़ा देकर नहीं ऐसे ही रह रहा है।"

सुविमल की पत्नी माया अपने गालों पर हाथ रखकर बोलीं, "हां जी, यह तो बाप-दादों का परिचय न देकर नाना का नाम बताने वाली बात हुई। इतने

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है?"

"काम! तुम्हें काम है!" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया? मेरी बातें कुछ नहीं? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चिंत हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चिंत होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चिंत महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चिंत रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चित हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चित महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चित रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हँस पड़ी, बोली, "मुझे अब और मजे की जरूरत नहीं है।"

"जरूरत नहीं है ? कहने से ही हो गया कि जरूरत नहीं है।" सुशोभन ने अपने नजदीक रखी खाने की मेज पर एक जोरदार मुक्का मारा, "मैं कहता हूँ जरूरत है। स्वस्थ लोगों को भी बीच-बीच में जाकर मेंटल हॉस्पिटल देखना चाहिए —समझी ?"

"मेन्टल हॉस्पिटल ?"

नीता की ओर देखकर सुचिन्ता ने इसे धीमे-धीमे दोहराया। नीता ने बढ़ावा देने का इशारा किया। मतलब इन्हें कहने दो, देखो ये क्या कहते हैं।

"हाँ !" अचानक सुशोभन हँस पड़े। बोले, "तभी तो। अन्यथा मैं कह ही क्यों रहा हूँ ? अगर तुम वहाँ जाओगी—" फिर सुशोभन हँसने लगे, "तुम्हें ही शायद रोगी समझकर देखने लगेंगे, ठीक है न नीता।"

सुचिन्ता ठीक तरह से रहस्य के मूल तक न पहुँच पाकर यूँ ही अदाज से बोली, "वाह, मुझे क्या यूँ ही रोगी समझने लगेंगे ?"

"यही तो बात है।"

सुशोभन भारी-भरकम आवाज में ठहाका लगाने लगे।

"मैं ऐसा उन्हें भला सोचने ही क्यों दूँगी।"

सुचिन्ता बात पर बात करती जा रही थीं।

"क्यों दूँगी ? नीता तुमने सुना। सुचिन्ता की बातें सुनो। कहती है—क्यों दूंगी ?' मैंने कहाँ दिया ? पागलों की बातों का प्रतिवाद करना चाहिए ? नेवर-नेवर। और वे लोग तो ठीक बिगड़े हुए पागल नहीं हैं। ठीक वैसे ही—जिसे कहते हैं सम्-सम् सम्भ्रांत पागल। उनकी बातें सुनकर उन्हें कौन पागल कहेगा। हम लोगों के जाते ही अचानक एक आदमी को ख्याल आया, 'जैसे मैं एक मानसिक रोगी हूँ और वह एक विद्वान डॉक्टर हो। इसके बाद की बातें क्या हुईं जरा तुम बता तो दो नीता।"

"तुम्हीं बताओ न पिताजी।" नीता मुस्कराने लगी, "तुम्हीं ठीक से कह पाओगे।"

"कहती हो मैं ही बता पाऊँगा।"

"हाँ, यही तो।"

सुशोभन अचानक धूसर स्वर में बोले, "लेकिन क्या कह रही है ? हम लोग किसकी बातें कह रहे थे ?"

"वाह वही—मानसिक रोगियों के बारे में—"

"ओह हाँ-हाँ।" सुशोभन अत्यंत कौतुकपूर्ण स्वर में कहने लगे, "उस पगला बाबू को ख्याल हुआ कि वह एक डॉक्टर है। मुझसे जिरह करने लगे।"

"जिरह !"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चिंत हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूँ। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चिंत होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्‌वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चिंत महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चिंत रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूँ।"

"मैं कैसे जान सकती हूँ ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएँगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चित हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चित महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चित रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चित हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूँ। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चित महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चित रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूँ।"

"मैं कैसे जान सकती हूँ ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएँगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चिंत हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चित महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चित रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस वार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चिंत हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस वार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चिंत होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चिंत महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चिंत रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नये सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर में अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नहीं है ?"

"काम ! तुम्हें काम है !" सुशोभन शांत नहीं हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बड़ा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नहीं थी सुचिन्ता।"

पहले के प्रसंग पर सुचिन्ता चकित हुईं, झटपट बोलीं, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चित हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूं। नीता, तुम लोगों ने आज बहुत देर कर दी।"

"देर नहीं होगी ?" अभियोग भूलकर सुशोभन बड़े उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क में घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते में आकर घूमते घूमते वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नहीं सुनना चाहती हो।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगीं।

इस समय थोड़ा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीनों बेटों में से कोई भी घर में नहीं है।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नहीं होता था, सभ्य होने की कड़ी साधना में भले ही वे शांत बनी रहती थीं लेकिन लड़कों के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बड़ा निश्चिन्त महसूस करती थीं।

लेकिन अब।

अब लड़के जितना अधिक बाहर रहते हैं उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बड़ा निश्चिन्त रहता है।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूं।"

"मैं कैसे जान सकती हूं ? वाह, खूब रही। सारी बातें कह दी गयीं। कल से तुम भी हम लोगों के साथ घूमने चलोगी, समझीं" सुचिन्ता को जैसे दंड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भंगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज में सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। "तुम्हें जाना पड़ेगा। घर में बुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नहीं होता। कल हम लोग फिर वहीं जाएंगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता।"

सुचिन्ता हँस पड़ीं, बोलीं, "मुझे अब और मजे की जरूरत नहीं है।"

"जरूरत नहीं है ? कहने से ही हो गया कि जरूरत नहीं है।" सुशोभन ने अपने नजदीक रखी खाने की मेज पर एक जोरदार मुक्का मारा, "मैं कहता हूँ जरूरत है। स्वस्थ लोगों को भी बीच-बीच में जाकर मेंटल हॉस्पिटल देखना चाहिए —समझी ?"

"मेन्टल हॉस्पिटल ?"

नीता की ओर देखकर सुचिन्ता ने इसे धीमे-धीमे दोहराया। नीता ने बढ़ावा देने का इशारा किया। मतलब इन्हें कहने दो, देखो ये क्या कहते हैं।

"हाँ !" अचानक सुशोभन हँस पड़े। बोले, "तभी तो। अन्यथा मैं कह ही क्यों रहा हूँ ? अगर तुम वहाँ जाओगी—" फिर सुशोभन हँसने लगे, "तुम्हें ही शायद रोगी समझकर देखने लगेंगे, ठीक है न नीता।"

सुचिन्ता ठीक तरह से रहस्य के मूल तक न पहुँच पाकर यूँ ही अंदाज से बोलीं, "वाह, मुझे क्या यूँ ही रोगी समझने लगेंगे ?"

"यही तो बात है।"

सुशोभन भारी-भरकम आवाज में ठहाका लगाने लगे।

"मैं ऐसा उन्हें भला सोचने ही क्यों दूँगी।"

सुचिन्ता बात पर बात करती जा रही थीं।

"क्यों दूँगी ? नीता तुमने सुना। सुचिन्ता की बातें सुनो। कहती है—'क्यों दूंगी ?' मैंने कहाँ दिया ? पागलों की बातों का प्रतिवाद करना चाहिए ? नेवर-नेवर। और वे लोग तो ठीक बिगड़े हुए पागल नहीं हैं। ठीक वैसे ही—जिसे कहते हैं सम्-सम् सम्भ्रांत पागल। उनकी बातें सुनकर उन्हें कौन पागल कहेगा। हम लोगों के जाते ही अचानक एक आदमी को ख्याल आया, 'जैसे मैं एक मानसिक रोगी हूँ और वह एक विद्वान डॉक्टर हो। इसके बाद की बातें क्या हुईं जरा तुम बता तो दो नीता।"

"तुम्हीं बताओ न पिताजी।" नीता मुस्कराने लगी, "तुम्हीं ठीक से कह पाओगे।"

"कहती हो मैं ही बता पाऊँगा।"

"हाँ, यही तो।"

सुशोभन अचानक धूसर स्वर में बोले, "लेकिन क्या कह रही है ? हम लोग किसकी बातें कह रहे थे ?"

"वाह वही—मानसिक रोगियों के बारे में—"

"ओह हाँ-हाँ।" सुशोभन अत्यंत कौतुकपूर्ण स्वर में कहने लगे, "उन पगला बाबू को ख्याल हुआ कि वह एक डॉक्टर है। मुझसे जिरह करने लगे।"

"जिरह !"

"आह, जिरह का मतलब सिर्फ पेंचदार बातें। जैसे उसका और कोई उद्देश्य न हो सिर्फ मुझसे बातें करने ही बैठा हो। बस बातें ही बातें। सोच रहा था जैसे मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मैं रहता कहाँ हूँ, क्या करता हूँ, कब-कब कलकत्ते में आना हुआ था, पिछले दिनों मैंने क्या-क्या किया था—फिर मेरी कोई 'हॉबी' है कि नहीं, पुस्तक पढ़ना, सिनेमा देखना, मैच देखना मुझे अच्छा लगता है या नहीं,—और भी कितनी बातें। बड़ी-ही निरीह भाव-भंगिमा से। इधर तो मैं सब समझ गया था—"फिर से अपनी रोबदार आवाज में सुशोभन हँसने लगे, "इसीलिए मैं भी भले व्यक्ति की तरह चुपचाप उसके सवालों का जवाब देता गया। जैसे यह मैं बिल्कुल नहीं समझ पाया होऊँ कि यह आदमी बना हुआ डॉक्टर है।···अच्छा नीता इसके बाद क्या हुआ? बीच-बीच में अचानक इतना भूलने लगा हूँ। नीतू के कारण ही मुझे ऐसा हुआ है।"

"मेरे कारण?"

नीता ने अभियोग के स्वर मे कहा, "यह तो खूब रही। खुद बातें करते-करते दूसरी बातें सोचने लगोगे और दोष मुझे दोगे।"

"बातें करते-करते दूसरी बातें सोचने लगता हूँ। हाँ, वही तो। तू बिल्कुल ठीक कहती है नीता। सुचिन्ता समझो, यह नीता बिल्कुल सही बात समझ लेती है। दूसरी बात—दूसरी बात ही तो सोच रहा था। अच्छा बता, तो मैं क्या सोच रहा था?"

सुशोभन की आँखों में कोई कौतुकपूर्ण मुस्कान झलक उठी।

"वाह, तुम क्या सोच रहे थे, इसे मैं भला कैसे बता सकती हूँ?"

सुचिन्ता जान छुड़ाने की भंगिमा में बोली।

लेकिन उनकी जान छोड़ कौन रहा है?

अचानक सुशोभन ने हाथ बढ़ाकर उनके कंधे पर रख दिया और उसे झकझोरते हुए बोले, "तुम नहीं जानती? मैं क्या सोचता हूँ तुम इसे नहीं जानती? दिल्ली में तो सुचिन्ता तुम ऐसी नहीं थी? वहाँ तो तुम सब समझ जाती थीं।"

"पिताजी, तुम फिर गड़बड़ा रहे हो।" नीता ने अपने पिता की पीठ पर अपना हाथ रख दिया, "दिल्ली में सिर्फ तुम और मैं—हम दोनों ही रहते हैं। बुआ तो वहाँ नहीं रहतीं।"

"नहीं रहतीं? तुम्हारे कहने से ही मैं मान जाऊँगा?"

सुशोभन ने पुनः टेबिल पर मुक्का मारा, "तू कितना जानती है? अभी तो उस दिन तू पैदा हुई। तू जब पैदा नहीं हुई थी, तब भी सुचिन्ता वहाँ थी। याद है हम दोनों कभी-कभी कुतुब चले जाते थे, और कभी चले जाते थे फिरोजशाह कोटला, हुमायूँ के मकबरे के आस-पास घूमते रहते थे—तुम्हें याद पड़ रहा है न सुचिंता?"

सहसा सुचिन्ता टेबिल पर अपनी दोनों कोहनियाँ और दोनों हथेलियों में अपना चेहरा रखकर बैठे-बैठे आगे की ओर थोड़ा झुकते हुए वही ही स्थिर आवाज में बोलीं, "बिल्कुल याद आ रहा है। पहले भूल रही थी, अब याद आ रहा है।"

"याद आ रहा है न—। याद क्यों नहीं आयेगा ? देख लिया नीता ?" सुशोमन आत्मगौरव से मुस्कराए, "समझी सुचिन्ता, नीता सिर्फ यही समझती है कि पिताजी बूढ़े हो गये हैं, भुलक्कड़ हो गये हैं। तुम्हारी कौन-सी बात मैं भूल गया हूँ जरा वह बता तो दो।"

नीता अचानक खिलखिलाकर हँसते हुए बोली, "वाह, यह मैं कैसे कहूँगी। मैं तो तब पैदा ही नहीं हुई थी।"

"यह भी सच है। अच्छा सुचिन्ता दुकानों में इतना बढ़िया-बढ़िया कपड़ा रहते तुम एक बिस्तरे की चादर क्यों लपेटे रहती हो भला ? उस समय मैं यही सोच रहा था। तभी तो जाने कैसे सब गड़बड़ा गया। लेकिन बताओ ऐसा कपड़ा क्यों पहनती हो ?"

नीता तुरंत बोल पड़ी, "कलकत्ते में आजकल बहुत मिलावट चल रही है पिताजी। अच्छी-अच्छी पहनने की साड़ियाँ एक बार धोबी के यहाँ से धुलकर आने के बाद ही बिस्तरे की चादर लगने लगती हैं।"

"तो दिल्ली से क्यों नहीं खरीदती ?" सुशोमन नाराज हो गये, "दिल्ली में कितनी अच्छी साड़ियाँ मिलती हैं।"

"ठीक है पिताजी, अब से सुचिन्ता बुआ दिल्ली से ही कपड़ा खरीदेंगी।"

"खरीदेंगी ? सुचिन्ता खरीद लेगी ? क्यों हम लोगों के पास रुपया नहीं है ? हम लोग नहीं खरीद सकते उसके लिए ?"

"ठीक कहते हो पिताजी—तुम्हीं तो खरीद दे सकते हो।"

"मैं ? मुझे खरीद देने के लिए कह रही हो।"

"हाँ, वही तो कह रही हूँ।"

नीता बलपूर्वक बोली।

यही तो चिकित्सा है।

सुशोमन तृप्त स्वर में बोले। "तब देखना सुचिन्ता दिल्ली का रंग कितना असली, कितना पक्का होता है।"

"वह तो देख ही रही हूँ।"

सुचिन्ता गंभीर होकर बोली—दीर्घ निश्वास को छिपाकर।

"जरा मैं जाकर हाथ-मुँह धो लूँ"—नीता बोली, "कब की निकली हूँ। बहुत गरम लग रहा है।"

नीता के जरा-सा हाथ-मुँह धोने का मतलब है एक घंटे की फुरसत।

सुचिन्ता ने घड़ी की ओर देखा।

साढ़े चार बजे थे।

ठीक एक घंटे बाद निरुपम लौटेगा। अगर उस समय नीता यहां बैठकर मेकअप न करे तो ठीक है। अगर निरुपम लौटकर देखे कि सुचिन्ता और सुशोभन दोनों दिन ढलते वक्त मुहामुंही बैठकर एक दूसरे से बातें कर रहे हैं?

पागल के बिना विचारे काम करने के कारण शायद ठीक उसी समय सुशोभन सुचिन्ता के कंधों को झकझोर रहे हों, या शायद हाथ ही पकड़े हुए हों, या शायद खूब नजदीक अपना चेहरा लाकर कुछ फुसफुसाकर कह रहे हों।

तब सुचिन्ता क्या करेगी?

नीता पर सुचिन्ता को बहुत गुस्सा आता था। प्रायः आता था। लगता था नीता उनको अजीब अड़दब में डालकर मजा ले रही हो। लेकिन ऐसा वे नीता की अनुपस्थिति में ही सोचती हैं। उसे देखने से ही मन बदल जाता था। उसके कसकर बांधे गए बालों के बंधन को नकार कर माथे पर बिखरी हुई केश राशि, मोम की तरह चिकनी, मुलायम और निराभरण दोनों बाहें निर्मल प्रसाधनहीन चेहरा और हमेशा सफेद साड़ी पहने हुई दुबली देह सब कुछ मिलाकर जैसे ग्लानिहीन पवित्रता की सृष्टि करते थे। उसे देखकर यह नहीं महसूस होता था कि वह बहुत दिन पहले दिवंगत हुई अपनी मां की तरह लगती थी।

सुशोभन की लड़की सुशोभन की तरह ही सरल लगती है। लेकिन आंख के ओट होते ही उसे नीता पर गुस्सा आने लगता है। जाने क्यों ऐसा होता है।

सुचिन्ता नहीं जानती लेकिन सुचिन्ता का अन्तर्मन जानता था नीता के नजदीक न रहने से सुचिन्ता को एक सर्वग्रासी-भय निगलने लगता था। वह डर क्यों था उसका स्वरूप क्या था, इसे सुचिन्ता नहीं जानतीं। सिर्फ जानती थी कि नीता के नजदीक रहने से मन ही मन उनकी ताकत बढ़ जाती थी। उस इत्मीनान में बाधा पड़ते ही आक्रोश बढ़ जाता था, मानसिक अवरुद्धता की-सी स्थिति हो जाती थी।

"मैं भी चलूं।" सुचिन्ता बोलीं।

"तुम भी चलोगी!" सुशोभन ने नाराजगी जाहिर की, "वाह खूब रही, तब मैं क्या वह मजेदार कहानी इस मेज को सुनाऊंगा।"

"ठीक है, कहानी सुनके जाती हूं।"

"लेकिन तुम नहीं जाओगी। कहानी सुनने के बाद भी नहीं।" सुशोभन ने बड़े ही उन्मुक्त गले से कहा, "तुम्हारे दूसरी जगह रहने से मुझे बुरा लगता है।"

सुचिन्ता एक खतरनाक खेल खेल रही थीं।

ऐसा क्यों कर रही थीं?

अकेले रहने के साहस से?

"जिन्दगी भर तो मैं दूसरी जगह ही रही।"

सुशोभन ने आँखें उठाकर सुचिन्ता की ओर देखते हुए भरे हुए गले से कहा, "यह क्या ठीक है, कहो तो सुचिन्ता मैं इसे क्यों नहीं समझ पा रहा हूँ। तुम कहती हो तुम हमेशा दूसरी जगह रहीं, नीता कहती है तुम कभी दिल्ली में नहीं रही, लेकिन—"

"लेकिन क्या ?"

सुचिन्ता ने पूछ ही लिया।

"मुझे लगता है कि तुम मेरे पास थीं। जाने कितने दिन तुम मेरे पास रही हो। तुम्हारे साथ जब मेरी शादी हुई थी—"

"ओह सुशोभन !"

सुचिन्ता कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई, "क्या पागलों की तरह बक रहे हो ?"

"पागलों की तरह ?"

"बिल्कुल ! मेरे साथ किसका विवाह हुआ था क्या तुम इतना भी नहीं जानते ? तुमने अनुपम मित्तिर का नाम कभी नहीं सुना ?"

"अ-नु-प-म। ओह आई सी। तुम्हारा वही हतभाग्य पति। जिसने तुम्हारे सारे गहने बेच दिए हैं। लेकिन उसने बेचा क्यों कहो तो ? उसके पास तो काफी रुपया था।"

"वे तो दिवंगत हो गये हैं।"

अस्वाभाविक दबाव डालकर सुचिन्ता कह उठी।

"दिवंगत हो गये हैं।" सुशोभन सहसा उद्दीप्त हो उठे, "ठीक हुआ, बहुत अच्छा हुआ। पुलिस ने गोली चलाकर मार डाला है शायद ? तुमसे शादी करके तुम्हें परेशान करने का दण्ड मिला।···लेकिन सुचिन्ता तब तुम कब मेरे साथ शाम को चाँदनी अंग में लगाकर हुमायूँ के मकबरे के पास घूमती रहती थी ?"

"मैं तो नहीं घूमती थी।" सुचिन्ता ने निर्लिप्त स्वर में कहा, "तुम्हारे साथ घूमती थी तुम्हारी पत्नी।"

"मेरी पत्नी। वह कौन है ?"

"क्यों जिससे तुम्हारी शादी हुई थी। जो नीता की माँ थी।"

"तुम फिर से बेकार बातें करने लगी सुचिन्ता—तुम्हारे अलावा और किसके साथ मेरी शादी हुई थी ? तुम्हारी दादी कहती थीं—"

सुचिन्ता ने गंभीर होकर कहा, "तुम सारी बातें सोच-समझकर कहने की कोशिश करो सुशोभन ? तुम बहुत अधिक बहकने लगे हो। दिनाजपुर के मकान में अनुपम के साथ मेरी शादी हुई थी, तुम बहुत अधिक रोये थे यह, भो-क्या याद नहीं अब पड़ता ?"

"मैं रोया था ? इतना बड़ा एक प्रौढ़ व्यक्ति होकर मैं रोने लगूँगा इसका

मतलव ?" सुशोभन ने भौंहें सिकोड़कर कहा, "तुम भी जैसे कल वाले हस्पताल के उसी पागल की तरह मुझे पागल समझ रही हो।"

"उन दिनों तुम्हारी क्या इतनी उम्र हुई थी ?" सुचिन्ता ने ठंडी आवाज में कहा, "मेरे सवसे छोटे वेटे की उम्र के थे तुम जव मेरी शादी हो जायगी सुन-कर—"

"सुचिन्ता, सुचिन्ता !"

सुशोभन कुर्सी से उठकर सुचिन्ता के दोनों कन्धों को जोर से दवा दिया।

"सव याद आ रहा है। सभी कुछ। तुम्हारी दादी ने कहा था, "सुचिन्ता की शादी के समय काफी मेहनत करना पड़ेगा भानू। कर सकेगा न ?"

गर्दन हिलाकर मैं दौड़कर अपने विलायती अमरख के पेड़ के नीचे पहुँच गया, जहाँ वचपन में हम दोनों मिल-जुलकर खेलते-कूदते थे। कहो, ठीक कह रहा हूँ न ?"

सुचिन्ता क्या भूल गयी थीं कि वे एकदम ठीक सुशोभन के सामने खड़ी हुई हैं। भूल गयीं कि उनके दोनों कंधों पर सुशोभन की भारी भरकम हथेलियां रखी हुई हैं। भूल गयीं कि इस तरह किसी की आंखों में आंखें डालकर देखने की उम्र उनकी अव नहीं रही।

और भूल गयी कि अव निरुपम के घर लौटने का समय हो रहा है। इस-लिए आंखें उठाकर निष्पलक देखते हुए वे रुद्ध स्वर में वोल पड़ीं, "हाँ, हाँ, विल्कुल ठीक कह रहे हो। ऐसे ही कहते रहो।"

सुशोभन वोले, "सिर्फ मेरे ही रोने की वात कह रही हो, खुद तुमने क्या किया था सुचिन्ता ? सोचती हो इसे भी मैं भूल गया हूँ। रोते-रोते तुम्हारा चेहरा और आंखें नहीं सूज गयी थीं ? हूँ, भूल जाने वाला लड़का सुशोभन मुखर्जी नहीं है। उस रोने-धोने के पर्व के वाद मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक जाकर छोड़ आया था। नहीं छोड़ा था ?"

सुचिन्ता गर्दन हिलाकर वोली, "हाँ !"

कहा था, "मुंह और आंखें कैसी लाल हो गयी हैं, घर जाकर क्या कहोगे ? तुमने कहा, 'कहूँगी सर्दी लग गयी है।' कहो, एक-एक वात सही है कि नहीं ?"

सुचिन्ता अव गर्दन भी नहीं हिला रही थीं—आंखों के इशारे से वोलीं, "हाँ।"

"तुम्हारी शादी के दिन मैंने विल्कुल काम नहीं किया था।" सुशोभन सहसा हँस पड़े, "तुम्हारी वूढ़ी दादी को खूव ठगा था। कहा था, मुझे वुखार हुआ है। वीमारी का झूठ पकड़ जाने के डर से मैंने तुम्हारी शादी ही नहीं देखी। सिर्फ जव वह हतभाग्य अनुपम मित्तिर तुम्हें लेकर जाने लगा तव स्टेशन के करीव जाकर रेलगाड़ी न छूटने तक वहीं खड़ा रहा था—"

शांत, शीतल स्तिमित सुचिन्ता सहसा ऐसी उद्वेलित क्यों हो उठी ? इतनी व्यग्र व्याकुलता से क्यों पूछने लगी, "इसके बाद सुशोभन तुमने क्या किया ? कहो, खूब अच्छी तरह से याद करके कहो, इसके बाद क्या किया । पिछले सत्ताइस वर्षों से अब तक मैं यही सोचती रही हूँ, इसके बाद—ठीक इसके बाद तुमने क्या किया ?"

दोनों भारी-भारी बाजू शिथिल होकर लटकने लगे ।

सुशोभन खुद भी शिथिल होकर कुर्सी पर बैठ गये । खोये-खोये गले से बोले, "इसके बाद और कुछ याद नहीं पड़ रहा है सुचिन्ता । रेलगाड़ी की आवाज और इंजन के धुएँ ने जैसे सब कुछ गड़बड़ कर दिया । उसके बाद क्या मैं बहुत देर तक स्टेशन पर ही टहलता रहा था ? कुछ बताओ सुचिन्ता, इसके बाद क्या मैं किसी दूसरी गाड़ी में सवार हो गया था ? मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ रहा है सुचिन्ता—अचानक सुशोभन चीख पड़े, "मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ रहा है । सिर्फ देख पा रहा हूँ अधमैले कपड़ों वाले एक लड़के को जिसके पैरों में सिर्फ चप्पल थी, हाथों में कुछ नहीं था, वह रेलगाड़ी में सवार हो गया । सुचिन्ता, तुम इस लड़के को पहचानती हो ?"

नहीं, सुचिन्ता जवाब नहीं दे पायी । उस लड़के के बारे में बता नहीं पायीं । न जाने कब निरुपम ऊपर आ गया था । उसने पूछा, "क्या हुआ ?"

पूछेगा ही तो ।

पूछना ही पड़ेगा, "क्या हुआ ?"

उसने नीचे तल्ले से आते हुए सुशोभन की चीख सुन ली थी ।

सुचिन्ता क्या भगवान को मानती थीं ?

वह सिर्फ मनुष्य की सत्ता स्वीकारती थीं, भयानक विपत्ति से बचाने की क्षमता उसी की है ।

भगवान ही जानते हैं कि वह उन्हें मानती थीं या नहीं ।

लेकिन आज ऐसे मौके पर उन्होंने भगवान की सत्ता स्वीकार की । बिना स्वीकारे रह नहीं सकी । सोचने लगी सुशोभन अगर अचानक ऐसे समय अपनी स्मृति-शक्ति खोकर शिथिल न हो पड़ते तब क्या होता ?"

क्या हुआ, इसका जवाब सुशोभन ने ही दिया । बोले, "वह लड़का कौन है, इसे नहीं समझ पा रहा हूँ ।"

"कौन लड़का ?"

माँ की ओर निरुपम ने पूछने की भंगिमा में ताका ।

सुचिन्ता ने इशारे से अपने दोनों हाथों को हताशा में हिला दिया ।

"किस लड़के की बात कह रहे हैं ?"

"वह तुम नहीं जानते । वह अनुपम मित्तिर के रेलगाड़ी प

जाने के बाद, बहुत बाद, नये सिरे से धुएँ और आवाज भरी रेलगाड़ी में जो लड़का सवार हुआ था, उसी को लेकर चिन्ता है।"

निरुपम के कानों में एक शब्द ढेरों रहस्य छिपाये हुए प्रवेश कर गया—"अनुपम मित्तिर," "वर अनुपम मित्तिर!"

जाने कब की बात चल रही थी वहां पर?

प्रसंग क्या था?

इसका मतलब सुचिन्ता अपने बचपन के साथी के साथ बैठकर अतीत का दोहन कर रही थीं! लेकिन वह लड़का?

"वह लड़का कहीं मुखर्जी घराने का सुशोभन तो नहीं था? ओ सुचिन्ता के बड़े बेटे, सुना तुम तो लड़कों को पढ़ाते हो। विद्वान् हो। बताना जरा—क्या यही सच है?"

"मैं तो ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। मतलब इसके पहले की बात तो मैंने नहीं सुनी है।"

"पहले की बात तो वही रोने की बात है। सुचिन्ता तुम्हारा बड़ा लड़का पहले की बातें जानना चाहता है। बता दूँ?"

सुचिन्ता खामोश और आत्म-केन्द्रित हो गयीं।

बोली, "उससे सुनने से क्या फायदा? वह नहीं सुनेगा। वह थका-मांदा आया है। अब वह नहा-धोकर भोजन करेगा।

लेकिन सुशोभन जब उद्दीप्त होते थे तब युक्ति और प्रतिवाद बिल्कुल नहीं ठहर पाता था। इसलिए निरुपम की तकदीर में जल्दी आराम करने की स्थिति नहीं हो पायी।

सुशोभन ने अवहेलना के स्वरों में कहा, "यंगमैन! को भला कभी थकान आती है! सुनो बड़े बेटे, तुम लोगों की उम्र में मुझको जरा भी थकावट नहीं होती थी। सिर्फ जब सुचिन्ता का निधन हुआ, जब सभी मर गये—इस्स! फिर यह मैं कैसी गलती कर रहा हूँ। नीता नाराज होगी। सुचिन्ता भी है और सारे लोग भी जीवित हैं।

निरुपम ने मुस्कराते हुए कहा, "आप भी तो यंगमैन हैं।"

"धत्त, मेरे कितने बाल पक गये हैं।"

"उससे क्या हुआ?" निरुपम ने हँसते हुए कहा।

लेकिन कहा किससे?

सुचिन्ता सोचने लगीं, निपरुम ने यह बात किससे कही है?

इस भोले-भाले पागल को? या किसी और को?

"सुचिन्ता, जरा अपने बड़े लड़के की बातें सुनो।"

सुशोभन मेज पर हाथ पटककर हँसने लगे।

इस बार सुचिन्ता उठकर बोलीं, "सुशोभन, तुम सिर्फ बड़े लड़के, मँझले लड़के ऐसा क्यों कहते हो ? मेरे लड़कों का क्या कोई नाम नहीं है ?"

दूसरे ही क्षण सुशोभन ने बिना किसी ग्लानि के कहा, "तुम्हारे तो ढेर सारे लड़के हैं सुचिन्ता। इतने नाम भी क्या याद रहते हैं ?"

"क्या पागलों की तरह बकते हो।" सुचिन्ता शर्म के मारे धिक्कार उठीं, "मेरे तो सिर्फ तीन लड़के हैं।"

"ठगो मत सुचिन्ता, बेकार बातों से ठगो मत। तुम्हारे ढेर सारे लड़के हैं। मुझे क्या नजर नहीं आते ? घर में कितनी भीड़ रहती है। और जब वे लोग नहीं रहते, तब घर कितना शान्त रहता है।—"

"नीता तुम खाली हुई ?"

सहसा अपने स्वभाव के विरुद्ध नीता चीख पड़ीं। इन सब अद्भुत भयावह कर्णकटु प्रसंगों से मुक्ति पाने के लिए ही जैसे वे आर्त स्वर में चीख उठीं।

आश्चर्य है। यह लड़की आखिर कर क्या रही है ?

जाने कब से गयी है।

नीता ने कमरे से जवाब दिया, "आ रही हूँ बुआजी।"

निरुपम क्यों अपने कमरे में नहीं जा रहा है ?

सुचिन्ता सोचने लगी, ये लोग तो इस तरह से कभी नहीं खड़े होते। सुचिन्ता उनकी ओर ताक नहीं पा रही थीं।

उसे हटने के लिए वह भी नहीं पा रही हैं—जाओ मुँह धो लो, जरा आराम कर लो।

लेकिन उद्धार किया नीता ने ही आकर।

आडम्बरहीन साज-सज्जा होने के बावजूद उसमें एक चमक थी।

"क्या हुआ ? लगता है बुआजी मेरी पीठ तोड़ने की व्यवस्था कर रही हैं।"

"तुम्हारी जैसी लड़की के लिए वही उचित होगा।"

स्नेह-भरे तिरस्कार के स्वर में सुचिन्ता ने वातावरण की बोझिलता को कुछ कम करने की कोशिश की। बोलीं, "तभी से तुम शाम होने तक नहा ही रही थी ?"

"ओह बुआ, शाम को नहाने में बड़ा मजा आता है।"

मारे प्यार के नीता जैसे पिघलने लगी।

और साथ ही साथ सुचिन्ता को लगा कि इस तरह से पिघलने का कोई कारण ही नहीं था।

ऐसी भंगिमा का लक्ष्य क्या था ?

निरुपम ने नीता की ओर देखकर आँखों ही आँखों में पूछ लिया, उस वक्त कुछ हुआ ?

पूछने का कारण था।

नीता ने लुम्बिनी जाते समय निरुपम से साथ चलने के लिए कहा था। लेकिन मन:समीक्षक डॉक्टर ने किसी को साथ न लाने की सलाह दी थी। भीड़ करने की जरूरत नहीं थी। रोगी को यह बिल्कुल न पता चले कि उसके लिए यह सब किया जा रहा है। उसे यही समझने दिया जाय कि नीता जिस तरह से अपने पिता को लेकर इधर-उधर घूमने जाती है, वैसे ही वहां भी जा रही है। इसी-लिए निरुपम साथ नहीं गया।

लेकिन डॉक्टर से इस सम्बन्ध में हुए परामर्श का तो वह भागीदार था। इसीलिए उसने नीता से इशारे से पूछा कि उस वक्त क्या हुआ ?

इशारा ! किस बात का था, इसे दूसरा कैसे समझता !

सुचिन्ता का मन कड़वाहट से भर गया। उसके ऐसे देवतुल्य पुत्र की भी यह हरकत ! नीता जिसे बड़े भैया कहती थी।

लेकिन नीता ने इशारे की परवाह नहीं की। जोर से बोली, "बड़े भैया आपने उस वक्त की बातें सुनीं ?"

निरुपम मुस्करा कर बोले, "भला कैसे सुनता, दीवालें तो बातें नहीं करतीं।"

"अच्छा तो मैं ही कह रही हूँ।" नीता बैठते हुए कहने लगी, "तो पिताजी, तुम्हीं न सुना दो बड़े भैया को—वही मजेदार किस्सा।"

सुशोभन विरक्ति से बोले, "लेकिन बड़ा बेटा तो अभी तक खड़ा ही है। इस तरह से खड़े रहने से क्या कहानी सुनायी जा सकती है ?"

"ठीक ही तो है।"

निरुपम हँसकर बोल पड़ा, "यह लीजिए, बैठ गया। अब अपनी कहानी सुनाइये।"

"अरे वह एक मजेदार घटना है। एक पागल हजरत को ख्याल आया कि वह एक डॉक्टर है और मुझको उसने एक मानसिक रोगी समझ लिया। मुझसे बड़े ढंग से बातें करने लगा जैसे मैं बिल्कुल समझ नहीं पा रहा हूँ। उसका एक बना हुआ असिस्टेंट भी मौजूद था। उसने एक तरफ बैठकर ऐसी मुद्रा बना ली जैसे वह हम लोगों की सारी बातें नोट करता जा रहा हो। बातें करते हुए मैंने कितनी गढ़ी हुई बातें उसे बता दीं; इसको तो वह समझ ही नहीं पाया।"

अपनी परिचित मुद्रा में सुशोभन हँसते रहे।

छोटा-सा आंगन उनकी हँसी की गम-गमाहट से भरपूर हो गया।

"वाकई बड़ा मजा हुआ।"

निरुपम ने कहा।

सुशोभन बोले, "बीच-बीच में मानसिक रोगियों को देखने जाना स्वस्थ

व्यक्तियों के लिए बहुत जरूरी है। समझ में आया बड़े साहबजादे ! मैंने तो सुचिन्ता से कहा, हम लोग फिर वहाँ जाएँगे। इस सम्बन्ध में मैंने काफी अध्ययन किया है। अस्वाभाविक लोगों को देखने से ही पता चलता है कि हम लोगों में कोई अस्वाभाविकता है या नहीं। नजर आने पर व्यक्ति उनको तुरंत सुधार लेता है।"

आश्चर्य !

सुचिन्ता चकित होकर सोचने लगी, जब यह और पाँच जनों के साथ बातें करते हैं तब इनकी मानसिक दुर्बलता बिल्कुल समझ में नहीं आती।

सिर्फ सुचिन्ता से बातें करते वक्त ही—

ऐसा क्यों ?

ऐसा क्यों होता था ? वह नहीं जानती। सुचिन्ता इसे नहीं बतला सकतीं। इसीलिए तो उनको लेकर सुचिन्ता को इतना डर बना रहता था। तभी इतना सुख भी मिलता था।

"डॉक्टर ने क्या कहा ?"

नीता गर्दन घुमाकर खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखते हुए बोली, "उन्होंने कहा, एक दिन में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे बहुत सारे रोगी हैं जो कई-कई दिनों तक स्वाभाविक लगते हैं लेकिन अचानक किसी दिन सब कुछ तोड़-ताड़कर तहस-नहस कर देते हैं, बावजूद इसके उन्होंने कहा, यह जो 'सब मर गये हैं, उन्हें सब छोड़कर चले गये हैं', इस शून्यताबोध की कमी शुभ लक्षण मानी जा सकती है।"

"अब ऐसा नहीं कहते ?" निरुपम ने पूछा।

"अधिक नहीं। यहाँ आकर तो काफी इम्प्रूव किया है। ओफ, दिल्ली में तो मेरा एक-दिन जैसा बीता, बता नहीं सकती।"

"डॉक्टर दुबारा जाँच करना चाहते हैं ?"

"सप्ताह में दो दिन दिखलाने के लिए कहा है, लेकिन अब वहाँ नहीं, उनके अपने चेम्बर में।

"तुम्हारी हालत को देखकर बड़ा दुःख होता है।"

"और भी कितनी कष्टकर अवस्था में मनुष्य को रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए मेरे पिताजी, सुचिन्ता बुआ जी को ही देख लीजिए। मेरी-हालत के लिए तो भाग्य उत्तरदायी है, लेकिन इन लोगों की हालत के लिए कौन जवाबदेह है ? सिर्फ लोगों की निर्ममता और उदासीनता के कारण दो-दो व्यक्तियों का सुन्दर जीवन राख में मिल गया। ऐसे कितने नष्ट हुए हैं, न जाने कितने होंगे।"

अपनी माँ के सम्बन्ध में इस तरह की बातें सुनने का अभ्यस्त मन कुछ कह नहीं सका। निरुपम मौन हो गया।

नीता ही फिर से धीरे-धीरे कहने लगी, "इस देश में सब लोगों की यही धारणा बनी हुई है कि प्रयोजन सिर्फ यौवन में ही होता है। लेकिन मुझे तो लगता है कि वार्धक्य में ही साथी की जरूरत अधिक गहराई से महसूस होती है। जब उम्र कम रहती है, तब तो ढेर सारी चीजें करने के लिए पड़ी रहती हैं, कितनी गहमागहमी, कितने सुनहरे ख्वाब होते हैं। लेकिन उस ज्वार की समाप्ति के बाद, उस काम के खत्म हो जाने के बाद जब निष्ठुर पृथ्वी उसे भूल कर निश्चिंत हो जाती है, तब भी तो मनुष्य जीवित रहता ही है? तब आदमी कितना अकेला पड़ जाता है? लेकिन उस समय हम लोग समझते हैं कि दुनिया से अब इस आदमी को कुछ पाने की जरूरत नहीं रह गयी है। साथ ही उस व्यक्ति की भी कोई कामना नहीं रह गयी है। बड़े भैया, क्या ऐसी धारणा बना लेना गलत नहीं है? अगर कोई आध्यात्मिकता में अपने मन को लगा लेता है, तब तो कोई बात नहीं, अगर किसी के प्रति घर संसार की विरक्ति है और तब भी वह व्यक्ति इस सांसारिकता को ही जकड़े रखकर अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता है, तब भी कोई बात नहीं है, वह ऐसा करे। लेकिन जो इन दोनों में से किसी एक का भी अवलम्बन नहीं कर सकते, उनके लिए?"

"उनके लिए तुम क्या सोचती हो?"

निरुपम की आवाज काफी शांत-गंभीर लगी। तब भी लगा जैसे उसकी बात में छिपा हुआ कोई व्यंग्य हो। लेकिन नीता ने इसकी परवाह नहीं की। वह भी गंभीर लहजे में बोली, "वैसी क्षमता मुझमें कहाँ हैं? सिर्फ यही लगता है कि साथी की जरूरत हर उम्र में लोगों को रहती है। अकेलापन हर उम्र के लिए कष्टकर होता है। बुढ़ापे में और भी अधिक।"

"इतनी देर से तो वही एक बात कह रही हो। लेकिन वृद्ध लोगों के विषय में इतनी बातें सोचीं कब? और ऐसा सोचा ही क्यों? उनके मन की बातें तो तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती हैं।"

"स्वस्थ लोग ही तो अस्वस्थ लोगों के बारे में सोचते हैं बड़े भैया। शक्तिशाली लोग कमजोरों के लिए। पैसे वाले गरीबों के लिए सोचते हैं और बड़े लोग बच्चों के लिए। ऐसा न हो तो सोचने का मतलब ही क्या होगा?"

"अच्छा, तुम्हारी इस थ्योरी पर बाद में सोचूँगा।" कहकर निरुपम ने बात समाप्त कर दी। फिर वह एक किताब लेकर देखने लगा।

इतनी-सी लड़की की ऐसी बड़ी-बड़ी बातें उसे बहुत अच्छी नहीं लगती थीं। इस लड़की से उसे थोड़ी ममता भी हो गयी थी, इसलिए जब वह सरल, निःशंक मन से उसके पास आकर बैठती थी तो उसे अच्छा लगता था। अच्छा लगता था,

उसका गैर स्त्रियोचित निर्मल नारी मन, लेकिन बीच-बीच में जब यह लड़की विचित्र बातें करने लगती थी तब उसे अच्छा नहीं लगता था।

जो बूढ़े हो गये हैं, जिन्होंने इस दुनिया का सब लेन-देन चुकता कर दिया है, उनके सिर खपाने की क्या जरूरत है ? जीवन के अंतिम मुहूर्त तक क्या मनुष्य मांगता ही रहेगा ? त्यागपूर्ण सौन्दर्य, त्याग के महत्व का क्या उनके लिए कोई मूल्य नहीं है ?

वृद्धावस्था तो त्याग से ही सुन्दर होती है।

उस समय भी वह अगर हाथ पसार कर बैठा रहे तो क्या अच्छा लगेगा ?

कम से कम निरुपम का ऐसा ही विचार था।

रात में नीता टेबल लैम्प जलाकर अपने सोये हुए पिता की आँखों को रोशनी से ओट करके चिट्ठी लिखने लगी।

ढेर सारी बातों के बाद लिखा—"तुम्हारी परिकल्पना व्यर्थ है। इस देश में 'ओल्ड क्लब' की योजना दुराशापूर्ण होगी। लोगों की मानसिकता बदलने में अभी एक शताब्दी लगेगी। इनके बड़े साहबजादे तो अपनी आँखों के सामने किताब खोलकर ही मुंह बंद करवा देते हैं, लेकिन मँझले साहबजादे मेरी बातों को सुनकर मुस्कराते हुए कहते हैं, "तब आपकी क्या राय है इस देश की सारी विधवा वृद्धाओं और विधुर बूढ़ों को पकड़-पकड़कर उनकी आपस में शादी करवा देनी चाहिए ?

अब इसके बाद कुछ कहना ही बेकार है।

मनुष्य कभी खत्म नहीं होता, समाज व्यवस्था ही उसे खत्म होने वाले अभिनय के लिए विवश करती है, इस बात को उदारता से मान लेने का साहस विरलों को ही होता है। इसे सोचकर नहीं देखता कि अगर मनुष्य खत्म ही हो जाएगा, तो जो लोग अभी भी पृथ्वी को भोग रहे हैं, उनसे जो भोग नहीं पा रहे हैं, ऐसे लोग ईर्ष्या क्यों करते हैं ? क्यों अशांति की सृष्टि करते हैं ? मैं जो इतनी बातें सोचती रहती हूं, इसलिए इन लोगों की धारणा हो गयी है कि मैं बहुत अधिक अकाल परिपक्व हो गयी हूँ।

इस घर का सबसे छोटा भाई तो साफ-साफ कहता है, "इसे ही अकाल परिपक्व होना कहते हैं।" कहता है, "हास्यास्पद बात तो यह है कि जिसका जो विषय नहीं है, वह इस पर सोच रहा है।" कहता है, "अपने एबनॉर्मल पिता के साथ रहते-रहते तुम भी एबनॉर्मल हो गयी हो। अच्छा बताना, तुम्हें क्या लगता है ?"

"बताना, तुम्हें क्या लगता है।"

यह प्रश्न उस 'एबनॉर्मल' आदमी ने भी पूछा था।

यह बात सोचता रहता है खत्म हो जाने का अभिन

अपनी माँ के सम्बन्ध में इस तरह की बातें सुनने का अभ्यस्त मन कुछ कह नहीं सका। निरुपम मौन हो गया।

नीता ही फिर से धीरे-धीरे कहने लगी, "इस देश में सब लोगों की यही धारणा बनी हुई है कि प्रयोजन सिर्फ यौवन में ही होता है। लेकिन मुझे तो लगता है कि वार्धक्य में ही साथी की जरूरत अधिक गहराई से महसूस होती है। जब उम्र कम रहती है, तब तो ढेर सारी चीजें करने के लिए पड़ी रहती हैं, कितनी गहमागहमी, कितने सुनहरे ख्वाब होते हैं। लेकिन उस ज्वार की समाप्ति के बाद, उस काम के खत्म हो जाने के बाद जब निष्ठुर पृथ्वी उसे भूल कर निश्चिंत हो जाती है, तब भी तो मनुष्य जीवित रहता ही है? तब आदमी कितना अकेला पड़ जाता है? लेकिन उस समय हम लोग समझते हैं कि दुनिया से अब इस आदमी को कुछ पाने की जरूरत नहीं रह गयी है। साथ ही उस व्यक्ति की भी कोई कामना नहीं रह गयी है। बड़े भैया, क्या ऐसी धारणा बना लेना गलत नहीं है? अगर कोई आध्यात्मिकता में अपने मन को लगा लेता है, तब तो कोई बात नहीं, अगर किसी के प्रति घर संसार की विरक्ति है और तब भी वह व्यक्ति इस सांसारिकता को ही जकड़े रखकर अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता है, तब भी कोई बात नहीं है, वह ऐसा करे। लेकिन जो इन दोनों में से किसी एक का भी अवलम्बन नहीं कर सकते, उनके लिए?"

"उनके लिए तुम क्या सोचती हो?"

निरुपम की आवाज काफी शांत-गंभीर लगी। तब भी लगा जैसे उसकी बात में छिपा हुआ कोई व्यंग्य हो। लेकिन नीता ने इसकी परवाह नहीं की। वह भी गंभीर लहजे में बोली, "वैसी क्षमता मुझमें कहाँ है? सिर्फ यही लगता है कि साथी की जरूरत हर उम्र में लोगों को रहती है। अकेलापन हर उम्र के लिए कष्टकर होता है। बुढ़ापे में और भी अधिक।"

"इतनी देर से तो वही एक बात कह रही हो। लेकिन वृद्ध लोगों के विषय में इतनी बातें सोची कब? और ऐसा सोचा ही क्यों? उनके मन की बातें तो तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती हैं।"

"स्वस्थ लोग ही तो अस्वस्थ लोगों के बारे में सोचते हैं बड़े भैया। शक्तिशाली लोग कमजोरों के लिए। पैसे वाले गरीबों के लिए सोचते हैं और बड़े लोग बच्चों के लिए। ऐसा न हो तो सोचने का मतलब ही क्या होगा?"

"अच्छा, तुम्हारी इस थ्योरी पर बाद में सोचूँगा।" कहकर निरुपम ने बात समाप्त कर दी। फिर वह एक किताब लेकर देखने लगा।

इतनी-सी लड़की की ऐसी बड़ी-बड़ी बातें उसे बहुत अच्छी नहीं लगती थीं। इस लड़की से उसे थोड़ी ममता भी हो गयी थी, इसलिए जब वह सरल, निःशंक मन से उसके पास आकर बैठती थी तो उसे अच्छा लगता था। अच्छा लगता था,

उसका गैर स्त्रियोचित निर्मल नारी मन, लेकिन बीच-बीच मे जब यह लड़की विचित्र बातें करने लगती थी तब उसे अच्छा नही लगता था।

जो बूढे हो गये हैं, जिन्होंने इस दुनिया का सब लेन-देन चुकता कर दिया है, उनके सिर खपाने की क्या जरूरत है? जीवन के अंतिम मुहूर्त तक क्या मनुष्य माँगता ही रहेगा? त्यागपूर्ण सौन्दर्य, त्याग के महत्व का क्या उनके लिए कोई मूल्य नही है?

वृद्धावस्था तो त्याग से ही सुन्दर होती है।

उस समय भी वह अगर हाथ पसार कर बैठा रहे तो क्या अच्छा लगेगा?

कम से कम निरुपम का ऐसा ही विचार था।

रात मे नीता टेबल लैम्प जलाकर अपने सोये हुए पिता की आँखों को रोशनी से ओट करके चिट्ठी लिखने लगी।

ढेर सारी बातों के बाद लिखा—"तुम्हारी परिकल्पना व्यर्थ है। इस देश मे 'ओल्ड क्लब' की योजना दुराशापूर्ण होगी। लोगों की मानसिकता बदलने में अभी एक शताब्दी लगेगी। इनके बडे साहबजादे तो अपनी आँखो के सामने किताब खोलकर ही मुंह बंद करवा देते हैं, लेकिन मँझले साहबजादे मेरी बातों को सुनकर मुस्कराते हुए कहते हैं, "तब आपकी क्या राय है इस देश की सारी विधवा वृद्धाओं और विधुर बूढो को पकड-पकडकर उनकी आपस में शादी करवा देनी चाहिए?

अब इसके बाद कुछ कहना ही बेकार है।

मनुष्य कभी खत्म नही होता, समाज व्यवस्था ही उसे खत्म होने वाले अभिनय के लिए विवश करती है, इस बात को उदारता से मान लेने का साहस विरलो को ही होता है। इसे सोचकर नही देखता कि अगर मनुष्य खत्म ही हो जाएगा, तो जो लोग अभी भी पृथ्वी को भोग रहे हैं, उनसे जो भोग नहीं पा रहे हैं, ऐसे भोग ईर्ष्या क्यों करते हैं? क्यो अशाति की सृष्टि करते हैं? मैं जो इतनी बातें सोचती रहती हूँ, इसलिए इन लोगो की धारणा हो गयी है कि मैं बहुत अधिक अकाल परिपक्व हो गयी हूँ।

इस घर का सबसे छोटा भाई तो साफ-साफ कहता है, "इसे ही अकाल परिपक्व होना कहते हैं।" कहता है, "हास्यास्पद बात तो यह है कि जिसका जो विषय नही है, वह इस पर सोच रहा है।" कहता है, "अपने एबनॉर्मल पिता के साथ रहते-रहते तुम भी एबनॉर्मल हो गयी हो। अच्छा बताना, तुम्हे क्या लगता है?"

"बताना, तुम्हें क्या लगता है।"

यह प्रश्न उस 'एबनॉर्मल' आदमी ने भी पूछा था।

यह बात सोचता रहता है खत्म हो जाने का अभिनय करने या

नार्मल आदमी भी। उस पागल ने कहा था, "सुचिन्ता, जरा तुम इस बात को मुझे समझा देना कि यों सिर्फ मुझे ही लगता रहा है कि तुम हमेशा मेरे साथ ही रही हो, साथ-साथ घूमती-फिरती बातें करती, गुस्सा, मान-अभिमान, हास-परिहास, प्रेम आदि करती रही हो, लेकिन इसके साथ-साथ सिर्फ ऐसा ही क्यों महसूस होता है कि सब कुछ खाली है, शून्य है। जाने कितने दिन आगे तुम मर गयी हो, खो गयी हो। ऐसा क्यों होता है? तुम्हें क्या लगता है, कहो तो?"

"हर समय मेरे बारे में ही क्यों सोचते रहते हो?"

सुचिन्ता बोली थीं।

"तुम्हारे बारे में क्यों सोचता हूँ? विचित्र सवाल तुमने किया है सुचिता! तुम्हारे बारे में क्या मैं जान-बूझकर सोचता रहता हूँ? चिंताएँ तो मन में बनी ही रहती हैं।"

उनके दिमाग में हमेशा सुचिन्ता की बातें ही घूमती रहती थीं। लेकिन सुचिन्ता?

सत्ताइस वर्षों से सुचिन्ता जब-तब यही सोचती रही थी, इसके बाद सुशोभन ने क्या किया? सोचा था जिंदगी में अब इस सवाल का जवाब नहीं मिलेगा। लेकिन क्या सारे जीवन वे सुशोभन के बारे में ही सोचती रही थीं। सिर्फ सुशोभन की स्मृति से ही मन को भुलाए रखे थीं?

नहीं, सुचिन्ता इसका जवाब इतनी सरलता से नहीं दे पायीं।

सारे जीवन 'सुशोभन' नामक व्यक्ति की स्मृति उनके मन की गहरी परतों के नीचे दबी पड़ी रही बीच-बीच में वह स्मृति विषाद के बादलों के रूप में ऊपर उठ कर मन को बोझिल और असहिष्णु बना देती थी, फिर कभी वह बिल्कुल मुरझाकर पड़ी रहती थी।

लेकिन क्या ऐसे भावोद्वेलन का कभी बाह्य प्रकाशन हुआ था? चूड़ियों भरे हाथों को खनकाकर मसाला पीसने से लेकर मांस-मछली और विविध व्यंजनों के पाक-कौशल का प्रदर्शन क्या कभी किसी दिन भी बन्द हुआ था?

सुचिन्ता ने सोचा सुशोभन के पागलपन के कारण ही उसमें इतना आवेग है। यह भी लगा कि इतने प्रबल आवेग के कारण ही पागलपन हुआ होगा। सोचने लगीं, अगर सुशोभन की पत्नी जीवित होतीं, अगर सुशोभन को आच्छन्न किए होतीं, तब क्या सुशोभन के मन में सुचिन्ता की अनवरत याद बनी रहती?

इसके बाद सुचिन्ता सोचने लगीं कि सुशोभन की इस हालत को देखकर उन्हें मर्मान्तिक पीड़ा क्यों हो रही है?

वे इसे समझ नहीं पायीं।

हर रोज रात में सोते समय और हर रोज स्नान के बाद उपासना करते समय वे भगवान् से यही प्रार्थना करती थीं, 'हे भगवान्! उन्हें स्वस्थ कर दो।'

लेकिन प्रार्थना के इन शब्दों में भी तो वे जान नहीं डाल पाती हैं, बिना इसके सारे शब्द जमीन पर बेजान पड़े हुए नजर आते हैं। ज्योतिर्मय पंखों से उड़कर ये सब उर्ध्वलोक तक नहीं जा पाते ।

अनुपम कुटीर की खामोशी खत्म हो गयी थी। अधिकांश समय सीढ़ियों पर कई-कई जूतों के चढ़ने-उतरने का शब्द होता रहता था। तरह-तरह की आवाजों से दीवालें गूंजती रहती थीं। समवेत कंठों की हंसी और संगीत से सारा वातावरण मुखरित हो जाता था ।

प्राय: वे लोग शाम के वक्त घूमने आते थे।

आते थे लाल, पीले, सफेद और गुलाबी मकान के लड़के-लड़कियाँ। जमघट इन्द्रनील के कमरे में होता था।

उनके साथ इन्द्रनील उन्मुक्त होकर ठहाके लगाता था, नौकर को समय-असमय चाय के लिए कहता था और देर रात तक उसके कमरे में गाने-बजाने की महफिल जमी रहती थी ।

अब वह न कुंठित होता था न उसे किसी तरह की आशंका होती थी ।

शायद उसने अच्छी तरह समझ लिया था कि उसकी इन हरकतों पर अब डाँटने-डपटने का किसी को साहस नहीं रह गया था। इन्द्रनील क्रमशः अपने पिता की तरह होता जा रहा था। शायद सुचिन्ता भी सिर्फ ऐसा कहकर उसे धिक्कारना बन्द करने वाली थी।

इन्द्रनील को अपने पिता अपने अनुपम मित्तिर का स्वभाव मिला था।

अगर सुचिन्ता इसे पसंद नहीं करती तो वे क्या कर सकती थी। सभी कोई तो एक ही रुचि के नहीं होते।

लेकिन अपने कमरे में बैठकर कभी-कभी सुचिन्ता चकित होकर सोचती थीं अचानक इस घर में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे हो गया ?

किसने इन्द्रनील को घर की धारा का उल्लंघन करने का साहस दिया? किसने सुचिन्ता को यह सब शोरगुल आदि सहने की शक्ति दी।

क्या नीता के कारण ऐसा हुआ ?

या हुआ सुशोभन के कारण ?

शायद सुशोभन ही हो। सुशोभन के रहने से ही ऐसा हो।

सुचिन्ता को एहसास हो रहा था कि उसके थोड़ा-सा भी नाराज होते ही वे लोग भी बदले में अपनी नाराजगी जाहिर कर देंगे।

अगर सुचिन्ता कहें, "यह सब मैं पसंद नहीं करती" तो वे भी अपनी नापसंदगी जाहिर करने में नहीं चूकेंगे।

इसीलिए सुचिन्ता को इन सारी चीजों को देखते हुए भी न देखने का अभि-नय करते रहना पड़ेगा।

यह सब सुचिन्ता को बर्दाश्त करना ही पड़ेगा।

सुशोभन ने सुचिन्ता की विरोध करने की शक्ति नष्ट कर दी थी।

न जाने किसने जहर और अमृत दोनों को एक ही पात्र में लाकर सुचिन्ता के सामने रख दिया था।

लाल मकान की लड़की बातें करते-करते सीढ़ी से उतरने लगी। बातें करते हुए सीढ़ियों से इन्द्रनील और नीता के उतरने की आवाज सुचिन्ता के कानों में भी गयी।

इन्द्रनील को कहते हुए सुना, "लेकिन बहस अभी खत्म नहीं हुई। हार-जीत का फैसला बाद में होगा।"

जवाब में लाल मकान वाली लड़की ने क्या कहा। इसे वे स्पष्टतः सुन नहीं पायीं। सुनने का मन भी नहीं था।

ऐसा अहसास हुआ जैसे इन्द्रनील के स्वर में अनुपम मित्तिर बातें कर रहे हों। अनुपम अपने घर में ताश-शतरंज, पासा आदि की बाजियाँ जमाए रहते थे। भाग लेने वालों को विदा देते हुए कहते, "लेकिन आज मामला खत्म नहीं हुआ। हार-जीत का फैसला बाद में होगा।"

खैर, अनुपम मित्तिर तो अपनी हार-जीत का फैसला मुल्तवी रखकर ही बीच में चले गये।

सुचिन्ता की हार-जीत का फैसला कब होगा, क्या कोई बता सकता था?

क्या यह हारने की ही शुरुआत हो रही थी?

क्या अनुपम कहीं से यह सब देखकर हँस रहे थे?

या शांत, सभ्य, शीतल सुचिन्ता की अशांत, उत्तप्त अवस्था देखकर अनुपम अपना मुँह व्यंग्य से विकृत कर रहे थे?

नहीं, इसे अस्वीकार नहीं कर सकती सुचिन्ता कि उनका इतने दिनों का पत्थर मन अब भी अशांत होना भूला नहीं था।

नहीं तो जब कल शाम को अचानक सुशोभन कह उठे, "देखो सुचिन्ता, कितनी सुंदर चाँदनी खिली है, चलो दिनाजपुर के मकान की तरह छत पर चलें।"

तब हृदय से लेकर मस्तिष्क तक और वहाँ से देह की समस्त शिराओं में रक्त का प्रवाह अचानक तीव्र हो गया था।

दिनाजपुर वाले मकान में दोनों चाँदनी रात का मजा लेने के लिए छत पर चले जाते थे।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि सुशोभन और सुचिन्ता अकेले रहते थे। सुचिन्ता के एक फूफाजी भी बीच-बीच में आते रहते थे। वे बड़े शौकीन मिजाज के थे। उनके आते ही घर में तरह-तरह की मजेदार बातें होती थीं। वे बेले की माला गले में डाले रहते थे, बारहों मास शांतिपुरी धोती पहनते थे और उनकी देह पर हमेशा एक चादर रहती थी।

गर्मियों की चाँदनी रातों में वे छत पर चटाई और तकिया लेकर चलने का हुक्म देते।

और घर तथा आस-पड़ोस के बच्चों को इकट्ठा करते।

इनको लेकर मजेदार किस्से-कहानियों, मीठे-मीठे गानों और बीच-बीच में ताश के खेल आदि से वह ऐसा समा बाँधते थे कि सभी बच्चे फूफाजी के नाम की बलिहारी जाते थे।

उनकी उम्र पचास वर्ष की थी। रिश्ते में होते थे फूफाजी। इसलिए पसंद न करने पर भी मना करने का साहस किसी को नहीं होता था। इसके अलावा वे दादी के जमाई थे। दादी के पास उनके सात खून माफ थे।

वे अपने साथ अपनी पत्नी को भी जबरन ले जाते थे लेकिन बेचारी पत्नी बेले की महक और मंद-मंद बयार से प्रभावित होकर दो-चार मिनट में ही खर्राटे लेने लगती थी।

छत पर जाती सुचिन्ता, साथ जाते सुशोभन, सुमोहन और सुशोभन की बहनें।

लेकिन इससे क्या?

तब किसे मालूम था, प्रेम क्या है। अकेले मिलने का सुख भी किसे मालूम था।

नजदीक बैठे रहना ही तब सबसे बड़ा सुख था।

नजदीक बैठना नहीं बल्कि बैठ पाना। जाने कब से 'अब तुम बड़ी हो गयी हो' कहकर सुचिन्ता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। शाम होते ही छत पर छिड़काव करके चटाई ढोने की परेशानी के बावजूद कोई उस पर अपनी नाराजगी जाहिर नहीं करता था। सभी फूफाजी को बहुत चाहते थे।

उसी छत पर—

अचानक एक दिन बेले की एक माला ने एक नये ही इतिहास की सृष्टि कर दी।

शायद वह माला फूफाजी के गले से गिरी होगी या शायद तश्तरी में मल्लिका पुष्पों के साथ पड़ी रह गयी होगी।

वही माला—

सुशोभन कह पड़े, "सुचिन्ता, तुम्हें वह बेले की माला वाली घटना याद है ?"

याद थी, बाद में सिरे से याद आयी भी थी।

याद आने के साथ-साथ तीस वर्ष पहले की उस रात की घटना आँखों के सामने तैर गयी। लगा ताजे बेला के फूलों की महक वातावरण में फैल गयी हो।

लेकिन सुशोभन को अब वह सब क्यों याद आ रहा था ?

सुशोभन तो सब कुछ भूल ही जाते थे।

वही बात सुचिन्ता कहने लगीं, "तुम तो सभी कुछ भूल जाते हो; भला इतनी पुरानी बात तुम्हें कैसे याद है ?"

"याद नहीं थी। याद रहती भी नहीं। सब धुंधली हो गयी थीं। अब तुम्हें देखकर सब याद आ रही हैं। यहाँ बेले की माला नहीं है ?"

"वाह, यहाँ कहाँ माला होगी ? यहाँ पर क्या फूफाजी हैं ?"

"लेकिन हम लोग तो हैं सुचिन्ता ?"

अचानक तमतमाये चेहरे से बेमतलब ही सुचिन्ता चीख पड़ीं,"नहीं हम लोग नहीं हैं। हम लोग भी खत्म हो गये हैं।"

"क्या हम लोग मर गये हैं ?"

यह आवाज दुःख और कष्ट की न होकर तेज झनझना देने वाली आवाज थी। इसी से लग गया कि मायालता ने पति के पास आकर आक्रमण किया होगा। यह जरूर है कि इस तेज आवाज की जवाबदेही सिर्फ मायालता के स्वभाव की ही नहीं थी, सुविमल के कारण भी थी।

इस तरह से बिना चिल्लाए रहा भी नहीं जाता। सुविमल अधिकतर जिस दुनिया में खोये रहते थे वह दुनिया मायालता के अधिकार में नहीं थी इसलिए वहाँ से सुविमल को खींचकर इस दुनिया में उतारना पड़ता था और यह प्रेम-कोमल, नम्र-मधुर बातों से संभव नहीं था।

इधर उम्र हो जाने के कारण सुविमल कुछ अधिक अन्यमनस्क भी रहने लगे थे। यह भी हो सकता था कि उनके मुवक्किलों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो गयी हो। क्योंकि बीच-बीच में मायालता को कहते हुए सुना जा सकता था। अगर मैं तुम्हारी पत्नी न होकर मुवक्किल होती तो मुझे अधिक सम्मान मिलता।

जवाब में सुविमल हँसते हुए कहते, "तब भी तो कभी किसी मुवक्किल को जिता नहीं पाया। हमेशा ही हारता रहा।"

"ताज्जुब है ! केस तो अभी खत्म ही नहीं हुआ। बिना फैसला हुए ही कैसे तुमने समझ लिया कि किसकी जीत और किसकी हार हुई है।"

"खुद न मरने पर क्या समझ में नहीं आता ?" मायालता ने फिर स्वर चढ़ाया, "यह जो जिंदगी भर भूत का बेगार करती आयी न कभी कोई गहना पहना न कोई तीरथ-धर्म निबाहा। बस, तुम्हारे माँ, बुआ, भाई, भतीजे आदि के लिए रसद जुटाते-जुटाते अपना सब कुछ खतम कर दिया, क्या इसी को जीतना कहते हैं ?" जिसने अच्छी आय की है, उसने मकान-गाड़ी सभी कुछ कर लिया है।"

इस अभियोग का मूल लक्ष्य सुशोभन था। वह भी अपने ही किस्म का व्यक्ति था।

एक स्वस्थ व्यक्ति और बाल-बच्चेदार आदमी होने के बावजूद यह उपार्जन करने की बिल्कुल चिन्ता नहीं करता था। हालांकि खाने-पहनने के मामले में घर में सबसे अधिक नकचढ़ा वही था। घर वालों को व्यग्य से आहत करने के लिये उसकी जीभ जैसे लटपटाती रहती थी।

सुविमल के अन्तर्मन में अगर अपने छोटे भाई के प्रति स्नेह प्रेम की अंत:-सलिला न प्रवाहित होती तो शायद मायालता ने अपनी गृहस्थी के बागीचे से उस झाड़-झंखाड़ को उखाड़ कर अब तक फेंक दिया होता। लेकिन वे मन ही मन सुविमल से बेहद डरती थीं। इसे वे अच्छी तरह जानती थीं कि भले ही वह पति पर बौछार करती रहे, जली-कटी बातें सुनाती रहे और सुविमल उन वाक्यों को हँस-हँसकर टालते रहे लेकिन इन सबकी एक लक्ष्मण रेखा खींची हुई थी। परोक्ष रूप से उस रेखा को लाँघने का साहस मायालता को न हो पाने के कारण ही उन्हें जीवन भर इन सारे झंझटों के बीच अपनी गृहस्थी की गाड़ी चलानी पड़ी।

ससुराल में अकेले मँझले देवर सुशोभन ही ऐसे थे जिन्हें मायालता अच्छी नजर से देखती थीं, लेकिन वहाँ सुविमल का रुख बिल्कुल भिन्न था।

प्राय: समवयस्क अपने छोटे भाई सुशोभन के प्रति उनके मन में स्नेह-प्रेम की वैसी भावना नहीं थी। शायद उसके समर्थ होने के कारण ही ऐसा रहा होगा। अपने सबसे छोटे असमर्थ बेकार भाई के प्रति उनके मन में वही ज्यादा गहरे स्नेह और प्रेम की भावना रही थी।

इसीलिए सुशोभन को मायालता अपनी एक अलग सम्पत्ति की तरह ही—समझती थीं, इसलिए भी कि जो सम्पति की अधिकारिणी थीं, उसका निधन काफी पहले ही हो चुका था और वे नीता के साथ अकेले थे।

सुशोभन जब भी आते थे, मायालता घर-गृहस्थी को दर-किनार रखकर सुशोभन के सत्कार में जुट जाती थीं।

लेकिन पिछले तीन-चार वर्षों से सुशोभन के न आने से जीवन बड़ा नीरस और फीका लगने लगा था।

इस बात से मायालता बहुत दुःखी रहती थी।

खैर उसका तो कोई उपाय नहीं था। लेकिन अब ? क्या इस कष्ट की तुलना
ी जा सकती थी ?

कामधेनु ने दूध देना बंद कर दिया था।

अकारण ही उसने ऐसा निष्ठुर संकल्प क्यों किया ? अकारण ! मायालता तो
ही समझती थी। बहुत सोच-विचारकर भी वह सुशोभन के इस रहस्यपूर्ण आच-
ण के कारण के बारे में सही अनुमान नहीं लगा पायी।

लेकिन कामधेनु की विमुखता से दुःखी होकर उसके थनों के नीचे से अपना
कटोरा लेकर चुपचाप सरक जाने की मूर्खता कोई भले ही करे, मायालता नहीं
कर सकती थी।

इसलिए आज फिर उन्होंने पति के दरबार में नालिश कर दी थी।

"हम लोग क्या मर गये हैं ? क्या नीता हम लोगों के घर की लड़की नहीं
है ?"

यही कहते-कहते मायालता कमरे में घुसीं। या शायद घुसते ही उन्होंने कहा
हो। सुविमल समझ गये कि फिलहाल उन्हें अपनी दुनिया से बाहर आना होगा।

हाथ की पुस्तक बंद करके मुस्कराते हुए बोले, "हम लोगों के मरने की
खबर दुश्मन भी प्रचारित करता फिरे तो भी कोई विश्वास नहीं रहेगा। हम
लोग जीवित हैं इसके लिए मैं ढेरों अकाट्य प्रमाण दे सकता हूँ। और नीता हम
लोगों के घर की ही लड़की है, यह भी कानूनन सच है। लेकिन इन दोनों बातों
के योग सूत्र को मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।"

"इसे तुम क्यों समझ पाओगे। पेंचदार बातें ही जानते हो तुम, सीधी-सादी
बातों से तुम्हें क्या मतलब। तपो की बात तो तुमने ध्यान से सुनी नहीं।"

तपो या तपोधन उनका मँझला बेटा था। वही जो सुचिन्ता के घर जाकर
अपने चाचा से मिल आया था।

अचानक सुविमल थोड़े गम्भीर हो गये। संक्षेप में बोले, "सुनी है।"

"सुनी है ? सुनकर भी निश्चित होकर बैठे हुए हो ? मैं कहती हूँ माना कि
मंझले देवर जी का दिमाग खराब हुआ है लेकिन तुम लोगों का तो नहीं हुआ ?
इतनी बड़ी कुआँरी लड़की को लेकर वह न जाने किसके यहाँ रह रहे हैं, लड़की
उनके लड़कों के साथ सिनेमा देखती फिर रही है, भगवान जाने वह और क्या-
क्या कर रही है, क्या इन बातों को लेकर तुम लोग जरा भी सिर नहीं
खपाओगे ?"

सुविमल कुछ और गम्भीर होकर बोले, "हम लोग कौन होते हैं ? अगर वह
किसी दूसरी जगह किराये पर रह रहे हैं, अगर उन्होंने अपनी लड़की को जान-
बूझकर छूट दे रखी है तो इससे हम लोगों को क्या करना है ?"

"हम लोगों को क्या करना है ?"

मायालता सिर पर हाथ रखकर बोलीं, "हमें क्या ? तुमने बड़ी सरलता से यह बात कह दी ? नीता तुम लोगों के कुल की संतान नहीं है ? उसको लेकर कोई ऊँच-नीच होने से तुम लोगों को बुरा नहीं लगेगा ? उसकी माँ नहीं है, कोई उसका भला-बुरा विचारने वाला नहीं है—"

सुविमल ने पत्नी की ओर बेधने वाली नजरों से देखते हुए कहा, "चार साल की उम्र से ही उसकी माँ नहीं रही। उसके बाद पिछले बीस वर्षों में वह तुम लोगों के हिफाजत से दूर रहकर ही बड़ी हुई। अगर इतने दिनों तक उसके बारे में कोई ऊँच-नीच बातें सुनने में न आयी हों तो इसी समय ऐसा होने का कारण क्या है ?"

इतने पर भी मायालता दबने वाली नहीं थी।

बोली, "विदेश में, बाहर रहकर कोई क्या कर रहा है क्या नहीं कर रहा है, इसे कोई देखने नहीं जाता, लेकिन यहाँ नाते-रिश्तेदारों के सामने···"

सुविमल गम्भीर होकर मुस्कराते हुए बोले, ठीक कहती हो ! यह बात याद नहीं थी। अब परनिन्दा करने वाले लोग जरूर हुए हैं।"

मायालता नाराजगी से बोली, "देखो इस तरह से तुमने मुझे जीवन भर धिक्कारा है, लेकिन मैं इससे विचलित नहीं होती। मैं कहती हूँ, मैं खुद एक बार जाकर अपनी आँखों से देखना चाहती हूँ कि मँझले देवर जी का ऐसा करने का कारण क्या है ?"

सुविमल यह सुनकर खीझ उठे।

भौहें सिकोड़कर बोले, "कारण जानकर क्या तुम्हें कोई फायदा होगा ?"

"इसमें फायदा-नुकसान की क्या बात है।" मायालता उदारतापूर्वक बोली, "मनुष्य क्या हर समय नफे-नुकसान की ही सोचता रहता है ? क्या दुनिया सिर्फ अदालत और व्यक्तिगत कानून की ही किताब है ?"

सुविमल बोले, "ऐसा ही है। सिर्फ लोग अपनी धूर्ततावश इसे स्वीकार नहीं करते।"

"ऐसी बड़ी-बड़ी बातें अपने मुवक्किलों के लिए ही रहने दो। मैं कल ही सुचिन्ता के यहाँ जाऊँगी।"

सुविमल हेय दृष्टि से बोले, "चली जाना। इसके लिए इतनी धूम-धाम से मेरी अनुमति के लिए आने का कोई मतलब है ?"

"अनुमति ! अनुमति किस बात की ?" मायालता अत्यधिक नाराजगी से बोली, "मैंने क्या अपने को बेच दिया है कि तुम्हारी अनुमति माँगूँगी ? आजकल नयी-नयी बहुएँ तक अपने श्वसुर-पति की अनुमति की परवाह किए बिना अपने मन की कर रही हैं और मैं इतनी उम्र की होने पर भी आस-पड़ोस में जाने के

लिए अनुमति माँगूंगी ? अपने जाने की खबर मैंने ही तुम्हें दी थी । क्या सुचिन्त के यहाँ जाने में कोई दोष है ? बचपन की दोस्त, कहा जाय तो ननंद ही हुई उससे मिलने की तबियत नहीं हो सकती क्या ? उस पर पता चला कि बेचारे विधवा हो गयी है, मिलने जाना तो उचित ही है ।"

सुविमल ने वैसे ही मुस्कराते हुए कहा, "विधवा होने पर मिलने जान उचित है, मैं इस बात को नहीं मानता । लेकिन जाना है तो जाओ, कैफ़ियत देने की क्या जरूरत है ! मैंने तो तुम्हें वहाँ जाने से रोका नहीं है । सिर्फ पूछ था कि किसी अस्वाभाविक आचरण करने के पीछे जरूर कोई कारण रहता लेकिन दूसरों को उस छिपे कारण को उद्घाटित करने की जरूरत क्या है उस उन्हें तो कोई लाभ नहीं होगा ?"

मायालता अपने पनडब्बे से पान निकालते हुए बोली, "इस दुनिया में गलत फहमी नाम की भी तो कोई चीज होती है । कोई अगर गलतफहमी से मिथ्य अभिमान कर लेता है तो क्या उसे दूर करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए ?"

सुविमल बोले, "वह फिर, मतलब उस तरह की कोशिश ही गलत है । पे के फल को जिस तरह धुआं देकर पकाने से वह सिर्फ दरकच्चा होकर रह जात है, सचमुच पकता नहीं, लोगों के मन की धारणाएं भी वैसी ही होती हैं वास्तविक गलती को जानने के लिए धारणाओं को समय के हाथों में छोड़ देन चाहिए । जब तक मान-अभिमान का आवेग घटकर दृष्टि को परिच्छन्न न क दे तब तक गलत धारणा को तोड़ने की कोशिश से सिर्फ नुकसान ही हाथ लगेगा सुशोभन या उसकी बेटी को अगर हम लोगों के किसी व्यवहार से नाराजगी हु होगी तो तुरन्त जाकर उनकी चोट को सहलाने की कोशिश न करना ही अच्छ होगा । एक न एक दिन उन्हें अपनी गलती का एहसास होगा । लोगों को जा कितनी चोट गलत समझने के कारण लगती है, कितनी असतर्कता से लगती है इन सबको अगर कोई अपराध की संज्ञा दे तो कम से कम मैं उसे बुद्धिमान नह कह सकता । जबकि मैं सुशोभन को हमेशा ही बुद्धिमान समझता रहा हूँ ।"

"संभव है, यह सब बेटी की राय से हुआ हो"—मायालता बोलीं, "व लड़की बिल्कुल ही सरल नहीं है । मेरा मन तो यही कह रहा है कि जरूर उस ने अपने बाप को फुसलाया होगा, यहाँ रहने से तरह-तरह के खर्च और उतन आजादी भी उसे नहीं मिलती थी, इसीलिए—"

अचानक सुविमल ठठाकर हँसने लगे । बोले, "अरे मैं तो देख ही रहा कि तुम कार्य कारण सम्बन्ध हमेशा तैयार रखती हो । तब फिर बेकार मेहनत करने की जरूरत क्या है ?"

"ओह ! लगता है तुम्हारी भी यही धारणा है—" मायालता ने संदेह व्यक्त किया ।

"यह धारणा ही स्वाभाविक है—" सुविमल बोले, "हालांकि यही सही हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इसीलिए समय के हाथों ही निर्णय का अधिकार सौंप देना बेहतर होगा।"

मायालता का गुस्सा बढ़ता गया। बोलीं, "बात का व्यवसाय करने के कारण बस सिर्फ बातें फेंटना ही जानते हो। तुम्हारी बातों का सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आता। मैं कल जाऊँगी और तुम्हें पहुँचाना पड़ेगा।"

"मुझे।" सुविमल ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे काट भी डालोगी तब भी नहीं।"

"ज़रा सुनूँ तो क्यों?" मायालता का उत्तप्त कंठ सहसा मद हो गया, "मुझे तुम कहीं पहुँचा दोगे क्या मैं इस बात का भी दावा नहीं कर सकती?"

"क्या मुश्किल है?" वकील की पत्नी होने से ही देख रहा हूँ कि तुम भी बात-बात में दावा दायर करने लगी हो। तुम तो जानती ही हो, मुझे तुम लोगों को कहीं ले जाने की बिल्कुल फ़ुरसत नहीं होती। अब तो बच्चे बड़े हो गये हैं—"

"बच्चों ने तो बड़े होकर मुझे खरीद ही लिया है।" मायालता फिर फुफ़कार उठीं, "वे लोग अब बड़े हो गये हैं" बस ज़माने से वे बड़े होने की सुविधा हथिया रहे हैं, बाकी बड़ों की तरह जैसा आचार-व्यवहार होना चाहिए, नज़र आता है? बड़े होने के साथ-साथ घर-गृहस्थी के प्रति उनका एक कर्तव्य भी पैदा हो जाता है, क्या इस पर वे अमल कर रहे हैं? पढ़-लिख गये हैं लेकिन बड़ों की इच्छा-अनिच्छा को शिरोधार्य करके चलना वास्तविक शिक्षा है इसे भी क्या वे जानते हैं?"

आक्रोश करते हुए मायालता की भाषा बहुत सुंदर हो आती थी।

सुविमल कह सकते थे, "इसे सिखाने की ज़िम्मेदारी माँ की होती है। और बच्चों के पैदा होने के समय से ही इस ज़िम्मेदारी का निर्वाह शुरू हो जाता है।" लेकिन वे खामोश रहे। जानते थे, कहने से कोई लाभ नहीं होगा। इस ज़रा-सी बात से आत्मालोचना तो होगी नहीं बल्कि उल्टे वक्तृता का द्वन्द्व उपस्थित हो जायगा।

आँखों में उँगली डालकर दिखाने से ही क्या किसी ने अपना दोष स्वीकार किया है? बातें जब की तब रहती हैं अपने स्वभाव के अनुसार ही लोग आचरण करते हैं, सिर्फ बेमतलब की वाद-विवाद की स्थिति पैदा हो जाती है।

बुद्धिमान व्यक्ति कभी किसी दूसरे को ज्ञान देने की चेष्टा बिल्कुल नहीं करते। पानी के तल के कीचड़ को कभी ऊपर लाने की कोशिश नहीं करते। इससे शांति बनी रहती है, वे बाहरी मेल और शान्ति को ही असली चीज़ मानते हैं, इसलिए वे अबोध, अन्यमनस्क, झंझट से दूर, उदार होने का अभिनय करते रहते हैं।

सुविमल बुद्धिमान थे।

इसीलिए मायालता जब अपने पति से बच्चों की शिकायत करती थी तो सुविमल मूर्खों की तरह यह नहीं कहते कि "तुम्हीं इसके लिए दोषी हो, तुम्हारा अंक-स्नेह ही इसका जिम्मेदार है और जिम्मेदार है तुम्हारी अपरिणामदर्शिता।"

सुविमल सिर्फ मुस्कराकर बात के वजन को कम कर देते थे। आज भी उन्होंने वैसा ही किया।

मुस्कराकर बोले, "क्यों, मैं तो देखता हूँ सभी तुम्हारी बातें सुनते हैं।"

"देखते हो?" मायालता क्रोध और क्षोभ मिले स्वर में बोली, "अपने देखने की बात लेकर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू मत बनो। इस दुनिया में आखिर तुम कौन-सी चीज देख पाते हो? और अगर ऐसा होता तो क्या मेरी यह दुर्दशा हुई होती? देख पाते तो देखते कि मेरे कहने से कोई नहीं चलता, उन्हीं लोगों के अनुसार मुझे चलना पड़ता है। यह जो तुम्हारे भाई हैं, भाई की श्रीमती जी हैं—"

सहसा सुविमल प्रतिवाद करते हुए बोले, "अब रहने दो, इस समय उनकी बातें तो नहीं हो रही थीं।"

मायालता जरा बुझ गयीं। शायद अपमानित महसूस करने के अहसास से ही चुप हो गयी थीं।

इसके बाद बोलीं, "इसे समझती हूँ कि उन लोगों की चर्चा किसी समय भी न करना ही ठीक है। लेकिन रात-दिन जिसके सीने पर मूंग दली जाती हो, वही इसके दर्द को समझता है। खैर, लड़कों की ही बात करूँ, वे लोग मेरी बात सुनते हैं? इतने समझदार हो और इसे नहीं समझते—वे बातें नहीं सुनते—इस अपमान से बचने के लिए ही मैं हर समय उनकी इच्छा के अनुसार ही चलती रहती हूँ। मैं जब उन्हें अच्छा खाने को कहती हूँ, अच्छा पहनने को कहती हूँ, तुम्हारी नाराजगी के बावजूद उन्हें मन-भरकर खेलने-कूदने की भी छूट देती हूँ। घूमने-फिरने को कहती हूँ, तब तो वे मेरी सारे बातें मान लेते हैं लेकिन जब भी कोई काम कहती हूँ तभी किसी के कानों में जूँ नहीं रेंगती। कल की ही बात लो, पहले बड़े लड़के साधन से मँझले देवरजी के पास जाने के लिए कहा था। क्या वह गया? छूटा जवाब मिला, "मुझसे नहीं होगा।" तब तपो से कहा। तो वह मारे क्रोध के भुनभुनाता हुआ आया। शायद देवरजी उसे पहचान ही नहीं पाये। अब भला वह दुबारा जाने के लिए राजी होगा?"

शायद प्रसंगेतर का मौका पाकर सुविमल हँसते हुए बोले, "तुम्हारे लिए भी तो यही चिंता बनी रहेगी। अगर वह तुम्हें भी नहीं पहचान पाये तब?"

"मुझे? मुझे नहीं पहचानेंगे?"

मेघाच्छन्न आकाश में बिजली की चमक की तरह मायालता अब तक के

लोपाकार मुख पर गर्वित मुस्कान लाकर बोलीं, "मुझे न पहचान पाने का नाटक करेंगे ? और ऐसा करके वह सफल हो जायँगे ? पहचनवाकर ही छोड़ूंगी मैं ।"

"वह तो है ।" सुविमल बोले, "तुम इस बात पर जरूर गर्व कर सकती हो ।"

"तब ले चल रहे हो न ?"

एक बार पुनः मायालता विजयगर्व से हँस पड़ीं, शायद सोचा हो कि घुमा-फिरा कर पति को उन्होंने अपने काम के लिए राजी कर लिया है ।

लेकिन हँसी मुरझाते देर नहीं लगी, न गलती समझने में ।

सुविमल बोले, "एक ही बात बार-बार क्यों कह रही हो ? उसका तो फैसला हो चुका है ।"

"हो चुका है ? तुम जो भी कहोगे उससे तिल-भर भी नहीं हटोगे ?"

"वाह अपनी बात से हटना क्या ठीक है ? जानती हो हाकिम भले ही हिल जाए, उसका हुक्म नहीं हिलता ।"

"लेकिन तुम तो हाकिम नहीं हो ।"

"हमेशा हाकिम के पास रहते-रहते लगता है उसका थोड़ा प्रभाव मुझ में भी आ गया है ।"

"ठीक है । मैं अकेली चली जाऊँगी ।"

सुविमल बोले, "यही तो समझदारी की बात है । इसके लिए तो मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ ।"

इस बार मायालता बुरी तरह फुफकार उठीं । कमरे से निकलते हुए बोलीं, "इसे क्यों नहीं कहोगे ? इससे तो बोझ कुछ कम हो जाता है । लेकिन इस निर्देश का फल क्या हुआ ? जब जवान थी, जब शक्ति और साहस था तब उन दिनों क्यों ऐसा निर्देश नहीं दे पाए थे । तब तो सिर का घूंघट थोड़ा कम होने से तुम्हारी माँ-बुआ नाराज हो जाएँगी इस भय से तटस्थ रहते थे । बूढ़ी महरिन तक ने आलोचना की थी । अब उसी पंखकटी चिड़िया को पिंजड़ा खोलकर उड़ जाने को कहते हो । अकेली चली जाऊँ । राह-घाट कुछ पहचानती भी हूँ कि अकेली चली ही जाऊँगी ?"

"क्या मुश्किल है ! तुम तो जो कहती हो उसी का खंडन भी करती हो । कहो तो, इतनी परस्पर विरोधी बातें क्यों करती हो ?"

"नहीं मालूम तुम्हें ? आपस में विरोध है इसलिए ।"

इस बार सचमुच झटके से मायालता बाहर चली गयीं ।

मायालता भले ही दुर्बलचित्त हों, लोभी हों लेकिन मायालता की बातें बिल्कुल उपेक्षा योग्य नहीं कही जा सकतीं ।

मनुष्य को तो उसका परिवेश ही गढ़ता है ।

ऐसे कितने लोग हैं जो विना किसी सहारे के अपना निर्माण कर लेते हैं ?

सभी के व्यक्तित्व में लोहा और पत्थर नहीं होता, इस दुनिया में वालू-मिट्टी वाले लोग ही अविक हैं।

वालू-मिट्टी।

इसीलिए मायालता ने अभिमान से आहत होने के वावजूद अपना प्रयास नहीं छोड़ा।

इस वार वे अपने देवर सुमोहन से पास जा पहुँचीं। हालांकि इन दोनों देवर-भाभी में विल्कुल नहीं वनती फिर भी कोई एक सूत्र था जहाँ दोनों एक थे।

शायद यह वंधन प्राचीन संस्कारों का ही था।

मायालता इसे समझती थीं कि कुछ भी हो वह उम्र में छोटा है। सुमोहन भी इसे समझता था कि जो भी हो भाभी आखिर उम्र में वड़ी हैं।

इसलिए वीच-वीच में भले ही दोनों देवर-भाभी में तुमुल लड़ाई-झगड़ा घट भी जाए, मगर वात-व्यवहार वंद होने की नौवत आज तक नहीं आयी।

सुमोहन की वेकारी का मायालता जरा भी फायदा नहीं उठाती थीं। इसको नकारना सत्य को नकारना होगा। मायालता ने चूड़ामणि योग के अवसर पर गंगास्नान करना चाहा था, सुमोहन के कारण ही संभव हुआ था। हालांकि काफी व्यंग्य वौछार करने के वाद ही वह भाभी के साथ गया था।

उसने कहा था, "आज अचानक भूत के मुँह में राम नाम क्यों ? कभी तो धर्म-कर्म की वात होती नजर नहीं आयी, लगता है चूड़ामणि के दिन फिरे।"

मायालता वड़े जतन से गरद की साड़ी पहनते हुए वोली, "तुम लोगों के संसार में आकर तो सिर्फ पेटपूजा के लिए नैवेद्य सजाना ही सीखा है, देव-देवियों के लिए, सोच रही हूँ, अव नैवेद्य सजाना सीख ही लूँ। इसलिए पहले 'योग' के अवसर पर स्नान करके देहशुद्धि कर ले रही हूँ।"

सुमोहन मुँहामुँही होकर वोला, "देह तो नल के पानी से नहाने से भी शुद्ध होती है लेकिन मन ? संतों ने जिसे चित्त कहा है। कभी चित्तशुद्धि की चेष्टा की है ? मेरा ख्याल है थोड़ा उसे ही शुद्ध कीजिए।"

इसके वाद तो फिर घमासान वाग्युद्ध छिड़ गया। लेकिन अन्त में देखा गया कि सुमोहन और मायालता वड़े मजे से एक गाड़ी में सवार होकर चल दिए। और भी आश्चर्य की वात थी कि वे दोनों रास्ते भर वड़े प्रेम से वातें करते हुए गये।

आज भी वाधा नहीं होगी, शायद यही सोचकर मायालता अपने पति के पास से हताश होकर पति के अनुज के घर में जा पहुँची।

लेकिन घर तो पुरुष का नहीं होता, होता है घरनी का।

सुमोहन के घर में भी घरनी का वास है, जिससे मायालता मन ही मन कुढ़ती रहने के वावजूद प्रत्यक्ष में तरह देने को मजवूर थी।

सुमोहन और उसकी पत्नी अशोका दोनों ही अलग-अलग किस्म की धातुओं से बने हुए थे।

हर जगह ऐसा ही नजर आता है। औरत-मर्द स्वभाव से एक दूसरे के विपरीत होते हैं। भगवान एक दूसरे का पूरक बनाने के लिए जानबूझकर ऐसी स्थिति गढ़ते हैं या महज मौज में आकर ही ऐसा करते हैं, कहना जरा कठिन है। लेकिन प्रायः हर घर में विपरीत स्वभाव का ऐसा ताल-मेल नजर आता है।

लेकिन सुमोहन और अशोका के स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर था।

भावधाराओं के अनुसार मनुष्य स्वभाव का एक निश्चित वर्गीकरण किया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो उन दोनों में से एक को शूद्र की कोटि में रखा जा सकता था और दूसरे को विप्र की कोटि में।

सुमोहन में आत्मसम्मान की रंचमात्र भी भावना नहीं थी लेकिन अशोका में यह भावना अत्यन्त प्रबल थी और अहंकार की सीमा तक थी।

सुमोहन ने जीवन में कभी उपार्जन की चेष्टा नहीं की।

ऐसा क्यों किया, यह कहना बड़ा कठिन है। सुमोहन शिक्षित था। स्वास्थ्य-सम्पन्न था। इसलिए बाधा तो कुछ भी नहीं थी लेकिन उसने बाधा की सृष्टि खुद ही कर ली। उसका तर्क था, कानून पढ़ना, वकालत करना, यह सब उससे नहीं होने वाला था। वकालत का मतलब ही है हमेशा झूठ बोलते रहना।

सुमोहन-सुशोभन के पिता भी वकील थे लेकिन वे दिवंगत हो चुके थे, इसी से जान बची थी, लेकिन माँ-बुआ तो अभी जीवित ही थीं।

बुआ नाराज होकर कहतीं, "छोटा मुँह बड़ी बात। तेरे पिता ने जिंदगी भर वकालत नहीं की? तेरा बड़ा भाई भी क्या वही नहीं कर रहा है?"

"इसीलिए तो इस बात को मैंने जाना है।" सुमोहन ने बड़े शांत चित्त से जवाब दिया।

इसलिए कानून की पढ़ाई उसने नहीं की।

तब नौकरी-चाकरी।

सुमोहन अपनी लम्बी जुल्फों को झटकते हुए बोला, "दूसरों की गुलामी मुझसे नहीं पोसायेगी।"

"तब क्या मास्टरी करोगे?"

मास्टरी!

सुमोहन अट्टहास कर उठा।

"बुद्धिमान आदमी भी कभी स्कूल मास्टरी करता है? सात गधे मरते हैं तो एक—"

सुविमल ने 'बस अब रहने दो' कहकर चुप करा दिया। फिर बोले, '

की नौकरी मत करो, कोई व्यवसाय शुरू करो। थोड़े पैसों से जो भी सम्भव हो—"

"थोड़े पैसों से ?" सुमोहन हँसता हुआ बोला, "तब स्टेशन के किनारे पान बीड़ी की दूकान खोल लेनी चाहिए।"

उस दिन उसने अपने बड़े भाई से व्यवसाय के बारे में बड़ी-बड़ी बातें की थीं। कहा था, "लाख-लाख रुपयों से रोजगार आरम्भ न कर पाने से रोजगार का नाम ही मुँह पर नहीं लाना चाहिए। बंगालियों का व्यवसाय इसीलिए—"

ये सारी बातें दिनाजपुर की थीं। इसके बाद जब लड़ाई दंगे और देश विभाजन के तीनतरफा प्रहारों से विकल होकर जीवन में प्रतिष्ठित ढेरों लोग बाढ़ के पानी में तिनकों की तरह बहने लगे तो एक लड़का, वह भी घर का सबसे छोटा लड़का, वह कोई काम तलाश करके अपने को प्रतिष्ठित कर रहा था या नहीं, तब इसे देखने की किसे पड़ी थी।

शादी हो गयी थी। लेकिन उससे क्या, तब भी घर में खाने की समस्या नहीं पैदा हुई थी।

इसके बाद तो देश ही छोड़कर चले आना पड़ा था।

विदेश में आकर क्या सुमोहन जिस-तिस के पास जाकर खुशामद करके काम ढूंढ़ता फिरता ?

नहीं, सुमोहन फिर इन सबके चक्कर में नहीं पड़ा। वह अपनी रात को यथासंभव लम्बी करके सुबह उठकर बासी मुँह से चाय पीने के बाद बड़े आराम से दाढ़ी बनाता, उसी तरह बड़े आराम से नहाता, बड़े आराम से अखबार पढ़ता, इसके बाद ग्यारह बजे के करीब वह प्रातः भ्रमण पर बाहर निकलता था।

लौटने के बाद एक गिलास मिश्री का शरबत या डाभ का पानी पीकर थोड़ा आराम करके फिर खाना-खाने बैठता था।

खाने में रोजाना की चीजों के अलावा खास उसके लिए दो-एक तरह की चीजें और भी बनायी जातीं थीं फिर भी उसकी व्यंग्य-मुद्रा बनी ही रहती थी।

भोजन का रंग, स्वाद, बनावट आदि से अलावा अगर दो दिन एक ही तरह की सब्जी बन गयी तो इसे भी लक्ष्य करके वह पड़ोसियों को सुना-सुनाकर घर की गृहिणी के गृहिणीपने की सुव्यवस्था पर व्यंग्य करता रहता।

भोजन के बाद वह जाकर सोता था।

इसके बाद वह सायंकालीन भ्रमण को रात तक ठेलकर किसी तरह दिन का समापन करता।

सुमोहन की यही दिनचर्या थी।

अपने दोनों बच्चों को भूलकर कभी अपने पास बुलाकर प्यार करते हुए

उसे नहीं देखा गया, बल्कि उनकी चर्चा होने पर दोनों को 'हतभागा' कहकर ही उनसे छुट्टी पा लेता था।

बच्चे जब छोटे थे, तब रात में रोने पर वह अशोका को कड़ा हुक्म देकर कहता, "इन्हें लेकर कमरे से बाहर चली जाओ, या गला-दबाकर इन्हें मार डालो। नींद पूरी न होने से मैं किसी को सह नहीं सकूँगा।"

फिर रात में रोने की उम्र किसी की नहीं रही, सब दिन भर गुलगपाड़ा मचाए रहते, लेकिन अपने कमरे में गुलगपाड़ा होते ही पंखे या छाते की डंडी से बच्चों को खदेड़ने में सुमोहन को वक्त नहीं लगता था।

श्यामापुकुर के इस घर में इतने लोगों के रहने के बावजूद सुमोहन अपने आराम आदि की सुविधा जुटा ही लेता था।

मिजाज ठीक रहने पर सुमोहन हँसते हुए कहता, "चीनी खाने वाले को चिन्तामणि चीनी जुटा ही देता है। लेकिन चिन्तामणि अपने कन्धे पर चीनी का बोरा लादकर तो नहीं पहुँचा जायेंगी। आदमी में रस निकालने की बुद्धि होनी चाहिए। ईख रस का सागर होता है लेकिन क्या अपने आप उससे रस निकलता है? उसे पेरने की कला आनी चाहिए। यह संसार भी ईख के खेत की तरह है। रस हर जगह मौजूद है लेकिन वह अपने आप नहीं मिलता। अगर ईख के प्रेम, करुणा या सद्-विवेक के भरोसे हाथ में पात्र लेकर आदमी बैठा रहेगा तो उसे खाली पात्र लेकर ही घर लौटना पड़ेगा। मशीन चलाना जरूरी है।"

अशोका अगर दूसरी आम लड़कियों की तरह होती, अगर बात-बात में वह पति की भर्त्सना करती, गले में रस्सी डालने जाती, जहर खाने की धमकी देती तब परिणाम क्या होता, कहा नहीं जा सकता। लेकिन अशोका बिल्कुल दूसरे तरह की लड़की थी। पति के मामले में वह बिल्कुल उदासीन रहती। सुमोहन को लेकर उसे रंचमात्र भी शिकायत थी इसका पता बिल्कुल नहीं चलता था। उसके मन में कोई क्षोभ, आक्षेप-अभियोग भी था, इसे कोई देखकर नहीं बता सकता था।

एक शांत, हँसमुख आवरण ओढ़कर वह अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहती थी, मायालता के तरकस के चुनिंदा तीर भी उस तक जाकर व्यर्थ हो जाते थे।

सुमोहन से मायालता का झगड़ा होने पर वह बाद में अपने व्यंग्य बाणों की बौछार अशोका को सुना-सुनाकर करती रहती थी।

लेकिन अशोका भी तो एक तरह की दीवाल ही थी।

पत्थर की दीवाल।

दीवाल जिस तरह निर्विकार चित्त से सारी बातें हजम कर लेती है, यह समझ में भी नहीं आता कि वह सुन भी रही है या नहीं, अशोका भी वैसे ही स्वभाव की थी। मायालता के तरकस से जिस समय खच्च-खच्च करके

छूट रहे होते थे, ठीक उस समय भी अशोका निर्विकार, प्रसन्नवदन कुछ भी पूछ सकती थी, या कहिए पूछ लेती थी, "दीदी, शाम को बच्चों के लिए नाश्ता क्या बनेगा ?" या "दीदी, शाम के लिए सब्जी क्या इसी वक्त काट लूं ?"

एक-एक करके मेहनत के सारे काम अशोका के कन्धों पर सिमट आये थे, लेकिन यह बात अशोका और मायालता इनमें से किसी के भी व्यवहार से समझ में नहीं आने वाली थी।

अशोका हर बात को जिस तरह जिस स्वर में पूछती थी उससे लगता था कि वह काफी शिक्षित और सभ्य लड़की थी। और मायालता जिस तरह से हर बात में "अरे बाप रे मां रे अब मुझसे तो नहीं होता—" करती रहती थीं उससे लगता था कि वे हर समय परेशान ही रहती थीं।

मन में असंतोष रहने से शायद लोग ऐसे ही असहिष्णु हो जाते हैं।

लेकिन आखिर उसे संतोष किसी बात से था ?

अशोका के बारे में मायालता सोचती रहती थीं। सोचती थीं और ईर्ष्या के मारे कुढ़ती रहती थीं।

अशोका की ऐसी सहिष्णुता भी शायद मायालता की असहिष्णुता का मुख्य कारण हो सकती थी।

अस्थिर, अव्यवस्थित चित्त वाले लोग ऐसे आत्मकेन्द्रित व्यक्तियों से कुढ़े बिना रह ही नहीं सकते।

इसीलिए मायालता हमेशा से उनकी छत्रछाया में रहने और पलने वाली, अपने बेटे से भी छोटी उम्र की देवरानी से बाकायदे जलती रहती थीं।

आश्रिता अगर आश्रिता की तरह न रहे, हथेली की छाँह में रहने वाला हाथ अगर सामने न आ पाये—तब सुख कहाँ मिलेगा ?

अशोका इस तरह से रहती थी जैसे वह सुविमल की लड़की ही हो।

उसके दो-दो बेटे थे, उनकी माँगें तो थीं ही, भले ही वे कितनी ही कम क्यों न हों, लेकिन वह सभी को निर्विकार चित्त से सुविमल के सामने पेश कर देती थी।

मायालता ऐसी बातों पर भी व्यंग्य करना नहीं चाहती थी, "जरूरी बातें मुझसे नहीं होतीं, जेठ से होती हैं। मेरे भाग्य में जाने क्या-क्या देखना लिखा है।"

ऐसी बातें अशोका के कान में भी जाती थीं, ऐसा नहीं लगता था बिना कुछ कहे-सुने ही वह अपना काम करती रहती।

फिर भी ताज्जुब था मायालता मन ही मन अशोका से डरती रहती थीं। डर के पीछे सम्मान की भावना भी थी।

इसीलिए देवर के कमरे में जाने की जरूरत पड़ने पर पहले वह देख लेती थीं कि देवरानी कमरे में हैं या नहीं।

आज भी उन्होंने पहले यही देखा।

देखा, नहीं थीं।

जान में जान आयी।

बोलीं, "सुनो देवरजी, मेरा एक काम करोगे? या तरह-तरह के बहाने बनाने बैठोगे?"

सुमोहन इस अबेला में भी बिस्तर पर लेटे-लेटे अपनी टाँगें नचा रहा था। बड़ी भाभी के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए अपने पैरों को सिकोड़कर बड़े ही सुस्त भाव से उठकर बैठ गया लेकिन अपनी सम्माननीय भाभी की बातों के प्रति उसका पूरा-पूरा ध्यान था इसे प्रकट तो नहीं किया जा सकता था इसलिए वह अपने तकिये के नीचे से कबूतर का एक पंख निकालकर उससे अपने कानों को गुदगुदाते हुए आलस्य भरे स्वर में बोला, "काम क्या है, पहले सुन तो लूँ किसी कोरे कागज पर दस्तखत तो नहीं किया जा सकता।"

"मैं कोरे कागज पर तुमसे दस्तखत नहीं करवा रही हूँ।" मायालता नाराज होकर बोली, "और यह काम मेरे बाप का भी नहीं है, है तुम्हीं लोगों का।"

सुमोहन उसी मुद्रा में बोला, "कोई बात नहीं, पेश करो।"

"पेश! पेश करूँगी?" मायालता नाराज होकर बोली, "बातें करते समय जरा ध्यान रखा करो, कि किससे बातें कर रहे हो। मैं तुम्हारे पास अर्जी पेश करूँगी?"

सुमोहन इस बार पल्थी मारकर बैठ गया और कपट-भक्ति की मुद्रा में बोला, "माफ कीजिए, भूल हो गयी। कहिए, क्या आदेश है?"

"इसीलिए तो इस तरफ नहीं आना चाहती," मायालता मारे गुस्से के कांपते हुए वहाँ से लगभग चली आने को हुईं।

"अरे बताइए भी तो हुआ क्या?" सुमोहन दोनों हाथों से रोकने की मुद्रा में बोला, "अच्छी मुसीबत है, बायें जाओ तो आफत, दाहिने जाओ तो आफत। इतनी कवायद न करके फट्ट से कह देने से ही तो झंझट खतम हो जायगा। अब कहिए भी, सुनूँ।"

मायालता भी सचमुच वहाँ से चली जाकर काम बिगाड़ना नहीं चाहती थी, लेकिन, सुमोहन की बातें और उसके कहने का तरीका इतना तन-बदन में आग लगा देने वाला होता था कि मिजाज ठीक रखना मुश्किल हो जाता था।

इस समय सुमोहन के स्वर में अफसोस का आभास पाकर उन्हो।। अप·

संभाल लिया, गम्भीर होकर बोलीं, "कोई भयानक काम नहीं सौंप रही हूँ मैं कह रही हूँ, मँझले देवर जी से एक बार मिलने जाऊँगी, वहाँ ले जा सकोगे ?"

"मंझले देवर जी।"

सुमोहन ने अभ्यस्त विलम्बित लय में दुहराया, "मंझले देवर जी से 'मिलने' जाऊँगी ? उन्हें 'देखने' नहीं। अर्थात् बीमारी-वीमारी कुछ नहीं है। मँझले भैया का भाग्य इतना अच्छा कैसे हो गया, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

"इसमें समझ न पाने की क्या बात है भाई-भाई सब एक जैसे ही हैं। सीधी बातों का टेढ़ा उत्तर मिलता है। ले जा सकोगे या नहीं ? बस, इसी का सीधा जवाब दे दो।"

सुमोहन पुनः कबूतर के पंख को तकिए के नीचे टटोलते-टटोलते पहले से भी विलम्बित लय में बोला, "उसमें नहीं कर सकने की क्या बात है। फर्स्ट-क्लास गाड़ी में बर्थ रिजर्व करके..."

मायालता ने छोटे देवर को डाँट कर चुप कराया, "इतना बन क्यों रहे हो ? गाड़ी किसलिए ? मैं क्या तुम्हें दिल्ली ले चलने के लिए कह रही हूँ ? क्या तुम नहीं जानते कि मंझले देवर जी कलकत्ते में ही रह रहे हैं ?"

"कलकत्ते में रह रहे हैं। मंझले देवर जी, यानी मंझले भैया ?"

"तो और कौन मंझले देवर जी हो सकते है, जरा सुनूं ? तुम्हारी बातों से क्या यूँ ही मुझे जहर चढ़ता है ? घर में इसे लेकर इतनी-इतनी बातें हुईं और कहना चाहते हो कि तुम्हें कुछ भी खबर नहीं है ?"

इतनी देर बाद जाकर सुमोहन को कबूतर का पंख मिला, अतएव उसका उपयोग करते-करते आँखें मूंदे-मूंदे ही वह बोला, "घर में जितनी बातें होती हैं, अगर ध्यान देता रहूँ तो घर में टिकना ही मुश्किल हो जाएगा।"

"हाँ वह तो देख ही रही हूँ।" मायालता व्यंग्यपूर्वक बोलीं, "लेकिन मंझले देवर जी कलकत्ता आकर हम लोगों को बिना कोई सूचना दिए हुए दूसरी जगह रह रहे हैं यह खबर तुम्हारे कानों में पड़ती भी तो तुम्हारा कोई नुकसान नहीं हो जाता।"

"रुको, जरा मुझे समझने दो, मंझले भैया कलकत्ते में हैं, दूसरी जगह रह रहे है और—"

"सिर्फ दूसरी जगह रह ही नहीं रहे हैं, बहुत दिनों से रह रहे हैं, समझे ? इसके मतलब रिटायर होने के बाद उन्होंने दिल्ली छोड़ दिया है। लेकिन—"

सुमोहन ने भौहें सिकोड़कर कहा, "बात सही होने पर मामला जरूर चौंकाने वाला है लेकिन इस अफवाह को फैला कौन रहा है ?"

"अफवाह !" मायालता पुनः उत्तेजित हो गयीं। अफवाह फैलाने का जिसे शौक हो, कम से कम तुम्हारे बड़े भैया को नहीं है। अफवाह ! तपो भी तो वहाँ

हो आया है। तुम कहना चाहते हो कि तुम इस बारे में कुछ भी नहीं जानते ?"

"कहना चाहते हो, क्यों, कह ही रहा हूँ। उम्मीद है, तुम यह उम्मीद नहीं कर रही होगी कि श्रीमान तपोधन जी आकर मुझे सब कुछ बता गये होंगे ?"

मायालता झल्लाकर बोली, "अहा ! तपोधन के न कहने से दुनिया की बातों को जानने का और कोई जरिया नहीं है तुम्हारे पास ? आखिर आप कौन-सी बात खुद जानते-बूझते हैं ? जिसे जतलाना होता है वही जतलाती है, जिसे समझाना होता है, वही समझाती है।"

सुमोहन कौतुकपूर्ण मुद्रा में हँसते हुए बोला, "यह बात किसे इंगित करके कह रही हो ? कहीं इशारा छोटी-बहू की ओर तो नहीं है ?"

"नहीं तो क्या—पड़ोस की बहू के बारे में कहूँगी ?" मायालता नाराज हो गयी।

"तुम ऐसा चेहरा बना रहे हो जैसे छोटी बहू से तुम्हारी बातचीत नहीं होती।"

सुमोहन बोला, "नहीं, बातचीत नहीं होती, यह नहीं कहता। बातें तो होती हैं। लेकिन वाक्यालाप का आलाप ? उसी में काफी संदेह की गुंजाइश है।"

"अहा, वारी जाऊँ—" मायालता होंठ उल्टाकर चेहरे को विकृत करके थोड़ी अशालीन भंगिमा में बोली, "अगर दो-दो बार पकड़ नहीं जाती। मैं खुल कर नहीं कहना चाहती, लेकिन तुम लोगों का यह बनावटीपन देख-देखकर मुझे जहर चढ़ता रहता है।"

"मायालता की बातों का तरीका ही ऐसा था इसको सुन-सुनकर देवर के कानों में गट्ठे पड़ गये थे, इसलिए बहुत अधिक परेशान हुए बिना वह भी मुँह टेढ़ा करके बोला, "स्पष्ट कहने में अब रहा ही क्या। और जहर चढ़ने की बात अगर कहो तो वह तुम्हें किस बात से नहीं चढ़ता। खैर, फिलहाल इन जहर भरे प्रसंगों को छोड़कर मंझले भैया की बात पर ही आएँ। वह जरा रहस्यमय लग रही है। तपो अगर सचमुच अपनी आँखों से देख आया है। तब इसे अफवाह कहकर टाला नहीं जा सकता। तब वह हैं कहाँ पर ? बड़ी बुआ के लड़कों के यहाँ ?"

इतनी देर बाद असल बात पर आने से मायालता थोड़ी उत्साहित हुईं। बोलीं, "जब तुम्हें कुछ पता ही नहीं है तब शुरू से ही तुम्हें बताती हूँ। तुम्हें सुचिन्ता की याद है ?"

"सुचिन्ता !"

सुमोहन हँस पड़ा, "सुचिन्ता, सत्‌चिन्ता इन सबमें मैं नहीं हूँ। मामले को थोड़ा-सा और सरल बनाना होगा।"

"अरे भाई वह तुम लोगों के दिनाजपुर वाले मकान के बगल वाले घोष चाचा ? उनकी लड़की···"

"सुचिन्ता, सुचिन्ता—! ओह ! हाँ, हाँ अब याद आया। सुचिन्ता दी। हर समय उछलती-कूदती घूमती रहती थी। मुझे जरा भी लिफ्ट नहीं देती थी। उन लोगों के साथ खेलने जाने पर ईंटें ढोवाकर, फूल तोड़वाकर कचूमर निकाल देती थीं। लेकिन अचानक मंझले भैया को छोड़कर इस प्रसंग पर क्यों चली आयीं ?"

मायालता अचानक नाराजगी और व्यंग्य मुद्रा त्यागकर रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराते हुए बोलीं, "देवरजी अब वह दोनों प्रसंग मिलकर एक हो गये हैं। वही तो कह रही हूँ। तुम्हारे मंझले भाई इन दिनों उसी सुचिन्ता के यहाँ हैं।"

"आई सी ! मामला तो खासा इंटरेस्टिंग लग रहा है। इसके बाद ?"

"अब और क्या ! तुम्हारे बड़े भैया को जाने कहाँ से यह सूचना मिली, यह सुनकर मैंने तपो को वहाँ भेजा, लेकिन मंझले बाबू तपो को पहचान ही नहीं पाये।"

"अरे, अब तो यह और भी इंटरेस्टिंग लग रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि आखिरी बार जब मंझले भैया आये थे, तभी उन्होंने यह पवित्र-संकल्प कर लिया था। हालांकि ऐसा संकल्प करने का कारण भी हुआ था।"

मायालता थोड़ी देर पहले की रहस्यपूर्ण मुद्रा भूलकर क्रुद्धमूर्ति अपनाकर बोलीं, "तो वह कारण, आशा करती हूँ; मैंने ही घटाया था।"

"अरे रे, उस आरोप को स्वेच्छा से अपने ऊपर क्यों ले रही हो ? उस कारण के मूल में मैं या और कोई भी हो सकता है। असल बात यह है कि उनका दोहन जरा कुछ ज्यादा ही हो जाता था, यह सच है।"

बात को अपने ऊपर लागू न करने की सलाह के बावजूद मायालता ने अपनी बात जारी रखी, बोलीं, "घास-पत्ते से मछली ढँकने से क्या फायदा, किसे अपनी बात का तुमने लक्ष्य बनाया है, यह समझने में मुझे कोई द्विविधा नहीं है। लेकिन देवरजी एक बात कहती हूँ, अपने लड़कों को—"

अचानक मायालता ने बात की लगाम खींच ली और अचानक बात अधूरी छोड़ने के संकोच से बचने के लिए ही शायद वे भरपूर जंभाई लेने लगीं।

जब तक अशोका कुछ कह नहीं लेगी, तब तक मायालता की जंभाई औ आलस्य भंगी खत्म नहीं होने वाली।

हाँ, अशोका के आ टपकने से ही मायालता की बात अधूरी छोड़कर रु जाना पड़ा। भगवान जानता है, मायालता अशोका से इतना क्यों डरती थीं डरती थीं या उसकी इज्जत करती थीं। इसलिए अशोका के सामने कोई छोट

बात मायालता अपने मुँह से नही कह पाती। जरूरत पड़ने पर दूसरी ओर मुँह फेरकर दीवाल को सुनाकर कहतीं।

जरा तमाशा देखो, मायालता सोचने लगी, इतनी देर तक तो दूसरी बातें हो रही थी, बस ठीक जिस समय मायालता ने 'तुम्हारे लड़के को' कहा था कि उसी समय अशोका आ पहुँची। अपनी बात तो वह सुमोहन से नही वह पायीं और इधर अशोका ने आकर सोचा होगा—लेकिन सोचकर भी अशोका क्या मायालता को फाँसी पर चढ़ा देगी?

लेकिन नहीं।

अशोका ने अपने जीवन मे कभी भी सुनी-सुनायी बातो पर कहा-सुनी नही की।

फिर भी असुविधा महसूस होती थी। शायद इसीलिए ही। इस मन ही मन भयभीत होने की बात से ही शायद मायालता में इतना आक्रोश पनप गया हो। आमने-सामने कुछ कह सुन न पाने के कारण ही वह दीवाल को अपना माध्यम बना लेती थी।

तब भी ठीक था। मायालता सोचने लगी, बात तो अधूरी ही रह गयी। सुशोभन के पैसों के सुमोहन के बच्चों के साल भर के कपडे बनते हैं, यही तो मायालता कहना चाहती थी।

खैर, अशोका को जो कहना था वह हो गया।

मायालता ने जँभाई रोककर बिखरा-बिखरा जवाब दिया, "उस वक्त के लिए मछली की बात कह रही हो? तो उस वक्त के लिए रखने से अगर कम पड जाए तो सारी मछली इसी वक्त बना लो। उस वक्त के लिए बल्कि एक दर्जन बतख का अंडा मँगाकर—" बात पूरी होने के पहले ही अशोका ठीक है, कह कर रवाना हुई ही थी कि तुरंत सुमोहन ने उसकी ओर मुखातिब होकर सवाल दाग दिया, "घर मे जो भी बातें होती हैं, खबर होती है, वह सब मुझे बतायी क्यों नही जाती?"

अशोका ने जवाब नहीं दिया, लेकिन वह वहाँ से गयी भी नही। शायद सवाल के दूसरी बार पूछे जाने की प्रतीक्षा करती रही।

हालांकि उसके चेहरे से जिज्ञासा बिल्कुल नही प्रकट हो रही थी। वह सिर्फ खड़ी देखती रही।

सुमोहन गंभीर स्वर में बोला, "मँझले भैया को लेकर घर मे इतनी बातें हो गयी हैं, मैं अब तक जान क्यों नही पाया? तुम अच्छी तरह जानती हो कि यह सब मुझे बताना तुम्हारी ड्यूटी है।"

अशोका न मुस्करायी और न नाराज हुई—उसने कोई प्रतिवाद भी नही किया। बड़े ही सहज भाव से बोली, "मुझे भी ठीक-ठीक नही मालूम।"

"देख लिया ?" सुमोहन ने मायालता की ओर देखकर कहा ।

"देख रही हूँ । सारा जीवन ही देख रही हूँ ।" कहकर मायालता उठ खड़ी हुईं । बोलीं, "कल सवेरे के वक्त जाऊँगी ।"

"अच्छी बात है । वहाँ से आकर सुचिन्ता के रहने की जगह के बारे में मुझे बता देना ?"

"वह तुम्हें तपो से मालूम हो जाएगी ।" कहकर मायालता चली गयीं । जाते हुए सोचती रहीं, ठीक इसी मुहूर्त में उन्हें अशोका के सामने पड़ना चाहिए या नहीं ।

भीतर-भीतर इस डर के रहने के कारण ही शायद जब मायालता जबर्दस्ती कुछ कह बैठतीं थी तब उनकी भाषा कुछ अधिक ही कटु हो जाती थी ।

हर सुबह अपने पिता के साथ थोड़ी दूर तक घूमने जाना नीता की दिनचर्या बन गयी थी । आज भी वह गयी थी और घूमते-घूमते वह उस ओर निकल गयी थी जिधर कार्पोरेशन की ओर से गैरकानूनी मकान तोड़े जाने की कार्रवाई की जा रही थी ।

उधर से गुजरते हुए सुशोभन अचानक चौंक कर खड़े हो गये, इसके बाद बड़ी फुर्ती से नजदीक आकर व्याकुल होकर कहने लगे, "नीता, देख रही हो यह सब ! घर-द्वार सब तोड़-ताड़कर खत्म कर दे रहे हैं ।"

पिता को सहज बातों के बीच परीक्षा करने के उद्देश्य से नीता भी खड़ी होकर बोली, "ठीक ही तो कर रहे हैं पिताजी ।"

"ठीक कर रहे हैं ?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "नीता तू कह क्या रही है । गरीबों का घर बार तोड़कर उन्हें बेकार बना रहे हैं, क्या यह अच्छा है ?"

"अच्छा क्यों नहीं है ? तोड़ना ही तो आखिरी बात नहीं है । उनके लिए फिर से नया मकान बनेगा । तोड़कर खत्म न करने से तो फिर से नया बनाया नहीं जा सकता । लोग तो वही सड़ी चीजें पकड़कर बैठे रहेंगे ।"

थोड़ी दूर पर कुछ लोग झुंड बनाकर आपस में उत्तेजित होकर बातचीत कर रहे थे, और इधर-उधर जगह-जगह पर बस्ती के गरीब लोगों के टूटे-फूटे सामानों के ढेर लगे हुए थे । अर्थात् साफ-समझ में आने वाली बात थी कि बस्ती तोड़ने के पहले सिर छिपाने की कोई भी योजना कारपोरेशन वालों ने नहीं बनायी थी । उधर ही उँगली उठाकर सुशोभन ने अत्यधिक उत्तेजित होकर कहा, "तूने तो कह दिया नये घर का निर्माण होगा ! तो वह पहले क्यों नहीं किया जाता ? अब वे लोग कहाँ जायेंगे, कहाँ रहेंगे ?"

अपने पिता को मनोलोक से निकल कर बाह्य जगत की चिंता करते पाकर नीता के मन में आशा की किरण फूट पड़ी।

लगा वे लौट रहे थे। लौट रहे थे सुशोभन।

लौट रहे थे सोच-विचार के जगत में, सहज जान-पहचान की दुनिया में। इसलिए सवाल-जवाब करके वह देखना चाहती थी कि आखिर जड़ें कितनी-गहराई में थीं।

"कहीं तो वे रहेंगे ही पिताजी।"

"देख नीता, तू इन दिनों बड़ी कठोर हुई जा रही है। कहीं-न-कहीं वे रह लेंगे, क्या यह सोचकर निश्चित हुआ जा सकता है? वे कहाँ रहेंगे इसे सबसे पहले देखना होगा।"

"वाह! हम लोग कहाँ से देखेंगे?"

"नहीं देखेंगे? हम लोग नहीं देखेंगे?" सुशोभन लगभग चीख पड़े," गरीबों को हम लोग नहीं देखेंगे? वे लोग बाढ के जल में बहते रहेंगे और हम लोग महलों में बैठकर देखते रहेंगे? मैं जानना चाहता हूँ किसने उन लोगों के मकानों को तोड़ने का हुक्म दिया है।"

ऊँचे स्वर से आकृष्ट होकर इधर-उधर से लोग देखने लगे। नीता हड़बड़ा कर बोली, "बड़ी मुसीबत है, यह तो कारपोरेशन की स्कीम के मुताबिक हो रहा है। यह गंदा और कच्चा ड्रेन अस्वास्थ्यकर आबो-हवा क्या इसे बदलने की जरूरत नहीं है?"

"इससे बदलाव आयेगा?"

सुशोभन थोड़े मुलायम हुए।

मुलायम और शांत गले से बोले, "माना कि इससे उन्नति होगी। लेकिन नीता जो यहाँ से उखड़ गये हैं, क्या वे दुबारा लौटकर फिर से यहाँ आ सकेंगे? यहाँ जो नये-नये मकान बनेंगे, उनमे क्या वे रह पाएँगे?"

नीता सांत्वना और अफसोस भरे लहजे मे बोली, "ओह, अगर यही लोग यहाँ लौट कर नही आ सकेंगे, तो कोई दूसरा आयेगा। और ये लोग भी जरूर कहीं दूसरी जगह 'सेटल' हो ही जाएँगे।"

"किसी दूसरी जगह!"

सुशोभन पुनः उत्तेजित हो गये, दबे भारी स्वर में शेर की तरह गुर्रा पड़े, "दूसरी जगह मतलब किसी दूसरी बस्ती में। यही न? नीता तुम अभी बच्ची हो, इसलिए अब भी लोगों की धूर्तता को समझ नही पाती हो, बेकार की बातों पर भरोसा करती हो। मैं कह रहा हूँ इनकी हालत कभी भी नही सुधरेगी। ये सारे कच्चे ड्रेन पक्के हो जाएँगे, कच्ची सड़कें पक्की हो जाएँगी, उसके दोनों तरफ कंक्रीट के ऊँचे-ऊँचे मकान खड़े हो जाएँगे, और तब उनमें आकर रहेंगे—

न जैसे लोग। समझ गयी नीता, यही पैसे वाले लोग। विकास ! परिवर्तन।
ोड़े का पक्ष। सब कुछ कपट भरा है, समझी नीता सब कपट भरा। गरीबों
को दूर हटाने का षड्यंत्र। इनको ठेल-ठेलकर ये लोग एकदम समुद्र में धकेल
देंगे। समझ गयी ? सिर्फ पैसे वाले ही इस दुनिया में रह जाएँगे।"

नीता चकित हो गयी थी।

सुशोभन ने इस तरह से बहुत दिनों से सोचा-विचरा नहीं था। यह सोचना
कितना सही है या गलत है इसे नीता नहीं सोच रही थी, वह सोच रही थी कि
पिताजी अब बात की तह तक जाकर सोचने लगे हैं।

पहले इस तरह की जाने कितनी बातें सुशोभन कहते थे। यह जरूर था कि
तब बात-बात में इतने उत्तेजित नहीं होते थे, ठंढे दिमाग से तर्क करते थे और
नीता कितना ही बढ़-चढ़कर तर्क क्यों न करती रही हो, वे कभी इसे घृष्टता
नहीं समझते थे। वे भी अपना तर्क प्रस्तुत करते थे।

लेकिन उस अखाड़े में क्या सिर्फ सुशोभन और नीता ही रहते थे ?

एक ओर बुद्धिदीप्त उज्ज्वल मूर्ति एक तरफ खामोश बैठकर परम कौतुक से
इन दोनों वयस्क और नाबालिग के सोच-विचार और बहस के प्रबल पार्थक्य को
देखती रहती थी।

आह ! तब कितना सहज-जीवन था !

वे दिन कितने सुन्दर थे !

आकाश कितना मनोरम होता था, हवा कितनी मधुर बहती थी, प्रका
कितना उज्ज्वल होता था।

वे दिन क्या फिर कभी नीता के जीवन में लौटकर आएँगे ?

सोच-सोचकर मन व्यथा से कराह उठा। अभिमान से आहत हो गया

नीता ने बहुत दिनों से सागर को चिट्ठी नहीं लिखी थी।

सागर ने भी बहुत दिनों से नीता की कोई खबर नहीं ली थी। नहीं,
उसी दिन तो चिट्ठी मिली थी।

जाने कब वह सागर पार से लौटेगा।

दो साल में क्या इतने दिन होते हैं ?

"अचानक तुम्हारा चेहरा उतर क्यों गया ?" सुशोभन शिकायत क
"तुम्हें तो मैंने दोषी नहीं ठहराया था।"

नीता ने झटपट अपने बहते हुए मन को तट पर खींच लिया और
"भला चेहरा क्यों उतरेगा ? मैं सोच रही थी।"

"सोच रही हो ? गरीबों की बात तुम सोच रही हो ?"

"जरूर सोच रही हूँ पिताजी।"

"बहुत खूब। तब उनको समुद्र में ढकेले जाने से रोको।"

नीता चिंतातुर भंगिमा में बोली, "सचमुच यह बंद करना होगा, सामूहिक कोशिश करके रोकना होगा। लेकिन पिताजी क्या वे ऐसा होने देंगे? बिना गरीबों के पैसे वालों का क्या हाल होगा? उनके न होने से अमीरों का चौका-बासन कौन करेंगे? कपड़ा कौन फचारेंगे? जूते कौन साफ करेंगे? बोझा कौन ढोएँगे? रिक्शा कौन चलाएँगे? अपने स्वार्थवश ही पैसे वाले उनका अस्तित्व बनाए रखेंगे।"

"यह बात तुम्हें किसने बतायी?"

सुशोभन फिर बिगड़ गये, "तुम कुछ नहीं जानती। दुनिया में अभी तुम्हें बहुत कुछ देखना बाकी है। वे लोग नहीं रहेंगे। वे खत्म हो जाएँगे। मिट जाएँगे। समुद्र अगर छोटा पड़ जाये तो वे बड़े-बड़े बम फेंककर उनका एकदम से नामो-निशान मिटा देंगे। यह सारा काम मशीनों से होगा।"

"मशीन।"

"और नहीं तो क्या। इतने दिनों से विज्ञान यही सब तो कर रहा है। पैसे वाले अपना सारा काम मशीनों से करवा लेंगे और गरीबों को मिटा देंगे।"

नीता ने महसूस किया कि बहुत सारी दृष्टियाँ उन्हीं को देख रही हैं। यहाँ से भाग चलने में ही कुशलता होगी। लेकिन अपने पिता की बातों के सिलसिले को भी एकाएक तोड़ देने का मन नहीं हुआ।

न जाने अभी और कितना कुछ सुशोभन कह सकते हैं। देखा जाय वे और कितना सोच पाते हैं।

इसीलिए यथासंभव धीमे गले से वह चर्चा का सूत्र बनाए रही, "पिताजी *ऐसा क्या कभी संभव है? दुनिया में गरीबों की संख्या तो काफी है, वे कितनों* का विनाश करेंगे?"

"करोड़ों-करोड़ आदमियों का संहार करेंगे"—सुशोभन तैश में आकर बोले—"दुनिया का अधिकांश हिस्सा अपने कब्जे में करके हाथ-पैर फैलाकर बैठे रहने के लिए वे झुंड के झुंड लोगों को खत्म कर देंगे। नीता, मैं तुमसे कह रहा हूँ, इसके बाद सामान्य-जन के रूप में कोई भी बचा नहीं रहेगा। रहेंगे सिर्फ पैसे वाले और सिर्फ यंत्र।"

नीता ने पिता का हाथ अपनी हाथों में लेकर कहा, "कोई खत्म नहीं होगा पिताजी, तब तक तो ये गरीब भी पैसे वाले बन जाएँगे।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। नीता तुम मुझे बहलाने की कोशिश मत करो।"

"अच्छा पिताजी चलो, घर चलकर फिर इस पर बहस करेंगे।"

"क्यों घर चलकर क्यों करें? सुशोभन धमाधम पैर पटककर थोड़ी दूर तक चहलकदमी करते हुए बोले, "यहीं पर फैसला हो जाए न। उनमें से किसी एक को बुला लो। वे लोग क्या कहते हैं, इसे उन्हीं की जुबानी सुना जाय।"

"अब वे लोग क्या कहेंगे ?"

नीता ने चकित होकर पूछ लिया।

"वे लोग क्या कहेंगे ! वाह खूब कही। अपनी बातें वे नहीं बताएँगे। क्या वे लोग हमेशा खामोश ही रहेंगे ? क्या उनको ऐसे ही मौत होगी ?"

"ऐसा क्यों होगा पिताजी। वे भी अब चुप नहीं रहते। चुपचाप बैठकर मार नहीं खाते। सिर्फ उनमें एकता न होने से ही उनकी उन्नति नहीं हो पाती है। सब लोग मिलकर एक होकर एक स्वर में चिल्लाकर कह नहीं पाते कि हमें घर चाहिए, मकान चाहिए, भोजन-वस्त्र चाहिए। वे सिर्फ फुसफुसाकर ही कह सकते हैं, हमें घर-मकान, भोजन-वस्त्र चाहिए। कहते हैं—"मेरा लड़का पढ़-लिख ले, लायक हो जाय बस। मेरे भाई का लड़का मूर्ख और बेकार होकर घूमता रहे, तभी सुख की बात होगी। लोग देश की चिंता न करके सिर्फ अपनी ही चिन्ता करते हैं। यह नहीं सोचते कि सिर्फ एक व्यक्ति के लोभ की ज्वाला सारे देश को जलाकर राख कर सकती है। अगर सब लोग लोभमुक्त होकर एक साथ अपने अधिकारों की माँग कर सकें तो फिर किसी को इस तरह से मरना नहीं पड़ेगा।"

नीता क्या अचानक भूल गयी कि सुशोभन अस्वस्थ थे, अप्रकृतिस्थ थे, अबोध थे। वे इतनी देर से जो कुछ कह रहे थे उसे शायद वे इसी क्षण भूल भी जाएँ। ऐसी स्थिति में नीता का काम क्या अपने पिता को सिर्फ संभाले रखना होगा। शायद वे अपनी बात भूल ही गये थे इसीलिए उनके स्वर में ऐसा आवेग और वेदना झलक आयी थी।

सुशोभन क्या वाकई अच्छे हो गये थे ? क्या सचमुच उनकी खोयी हुई समझ लौट आयी थी ? इसी से शिकायत के स्वर में बोले, "नीता तुम्हें उन लोगों के दोष-दर्शन का कोई अधिकार नहीं है। उन्हें इतनी बातें सोचने की जरूरत क्या है ? उन्होंने कब कोई शिक्षा ग्रहण की है ? उनकी चेतना पर कोहरा छाया हुआ है। और तुम्हारे वे सब पैसे वाले लोग, जो पांडित्य का बोझ लादकर उच्च शिक्षा की बड़ाई करते रहते हैं। क्या वे सब समझ-बूझकर भी सिर्फ अपने लाभ के लिए देश को नुकसान नहीं पहुँचा रहे हैं ? देश के अकल्याण को बुलावा नहीं दे रहे हैं ? वे इसे नहीं समझते कि आग लगने पर उनका मकान भी सुरक्षित नहीं रहेगा।"

धूप तेज हो गयी थी।

पिता को ज्यादा उत्तेजित करने का साहस नीता को नहीं हुआ। उसने यह भी सोचा कि घर पहुँचकर वह पिता से हुए आज के इस बातचीत के विवरण को लिख डालेगी और उसे उनसे छिपाकर डॉक्टर को ले जाकर दिखलाएगी। शायद आज की इस बातचीत, सोच-विचार में से डॉक्टर के हाथ कोई आशा-जनक सूझ हाथ लग जाए।

इसीलिए नीता बोली, "पिताजी आप ठीक ही कह रहे हैं। पैसे वालों को ही दंड देने की जरूरत है। उन्हें यह समझा देना होगा कि यह दुनिया सिर्फ तुम्हारी अकेले की नही है।"

"यही तो—इतनी देर बाद तूने सही बात कही।"

मुशोभन खुश होकर बोले, "इतनी देर बाद जाकर तुमने अपनी अक्ल से काम लिया। मैं तो सोच रहा था कि मुचिन्ता के ढेर सारे लड़कों के साथ उठते बैठते रहने के कारण तेरी बुद्धि कुंद हो गयी है। अब तू उनमे से किसी एक को जरा यहाँ पर बुला। जरा पूछें कि अब वे लोग कहाँ जाएँगे ?"

नीता व्यस्तता दर्शाते हुए बोली, "अच्छा पिताजी बुलाऊँगी। किसी दूसरे दिन बुलाऊँगी। आज बहुत देर हो गयी है। देख ही रहे हैं धूप कितनी तेज हो गयी है।"

"होने दो! तुम उस आदमी को बुलाओ।"

"नही पिताजी—और किसी दिन।"

"क्यों, किसी दूसरे दिन क्यों ?" मुशोभन जिद करते हुए बोले, "आज ही! ....अरे सुनो भाई, जरा इधर आना।"

झुंड में खड़े लोग काफी देर से पिता-पुत्री को इस तरह से खड़े बातें करते हुए देख रहे थे और इन लोगो की मुद्राओं से उन्हें यह समझने मे भी कतई दिक्कत नही हुई थी कि इनके बातों का विषय बस्ती और वस्ती वाले ही हैं।

सुशोभन के हाथ हिलाकर पुकारते ही एक बूढा नजदीक आ गया।

पिताजी क्या कहने जाकर क्या कह बैठें यह सोचकर नीता झटपट कह पडी, "अच्छा यह सब क्या कारपोरेशन द्वारा तोडा जा रहा है ?"

उस आदमी ने बडी लापरवाही से कहा, "यमराज जाने और यह कारपोरेशन वाले जानें।"

मुशोभन ने गम्भीर स्वर मे कहा, "तुम लोग नही जानते ?"

"नहीं, जानने की जरूरत ही क्या है। यहाँ रहना अब नहीं हो सकेगा, दुर-दुर करके भगा रहे हैं, बस इतना ही हम लोग जानते हैं।"

"वाह, अब तुम लोग कहाँ जाकर रहोगे क्या इसे नही सोचा ?"

"कोई जरूरत नही है बाबू! मूल बात समझ ली है कि जब तक परमायु रहेगी, हमे कोई मार नहीं सकेगा और जिस दिन वह खत्म हो जाएगी, कोई रोक भी नही सकेगा। बीच मे जो हो रहा है, होता रहे।"

अचानक सुशोभन गुस्से से गर्जनकर उठे, "नही ऐसा नही होगा। यह सब नही चलेगा। तुम लोगों को कहना पडेगा, कि पहले हमारे रहने की व्यवस्था करो, तभी इसे तोड़ सकते हो। अन्यथा"—

"सुशोभन की बात खत्म होने के पहले ही वह आदमी बदतमीजो की तरह

हँसते हुए बोला, "बाबू को तो रोज साहब की तरह हवाखोरी करते हुए औ
जब-तब हवागाड़ी पर सवार होकर हवा खाते हुए देखता हूँ, उन्हें आज अचान
गरीबों की चिन्ता क्यों हो गयी, बताइये तो ? लगता है आने वाले इलेक्शन
उम्मीदवारी का इरादा है।"

नीता का चेहरा लाल हो गया, और सुशोभन भी एक तरह से अचक
गये। नीता का हाथ पकड़कर असहाय स्वर में बोले, "यह क्या कह रहा
नीता ?"

"कुछ नहीं पिताजी; तुम घर चलो।"

"हाँ हाँ, चलो।"

सुशोभन डरते-डरते बोले, "वह नाराज हो गया है।"

झटपट, नीता को लगभग खींचते हुए अपने भारी-भरकम देह को लेकर
दौड़ने लगे। पीछे से ढेर सारे लोगों के अश्लील ठहाकों की आवाज सुनाई पड़
यह हँसी सुनकर विश्वास करना कठिन था कि इस समय वे लोग गृहहीं
हो रहे थे, मर्माहत होकर आँखों में आँसू लिए वे इतने दिनों के बनाये अपने
घरों को देख रहे जो कुदाल और रंभे की मार से टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे
सचमुच उन्हें ऐसा करते देखकर विश्वास नहीं होता।

साहब को वे लोग चिढ़ा सके थे, यही उनकी बहुत बड़ी जीत थी।

थोड़ी दूर जाने के बाद सुशोभन ने अपनी चाल धीमी कर दी। बेज
आवाज में बोले, "नीता, वे लोग हमें फॉलो तो नहीं कर रहे हैं ?"

"नहीं पिताजी।"

"अच्छी तरह देख लिया।"

"हाँ पिताजी।"

"ओह, खूब बचे। थोड़ा और होता तो पकड़े जाते।"

सुशोभन चेतनालोक में लौट रहे थे न ?

लौट रहे थे सहज ज्ञान की दुनिया में।

कम से कम नीता इतनी देर से यही सोचकर खुश हो रही थी।

एक गहरी सांस मन को मसोसते हुए निकली और बहती हुई हवा की
पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। नीता ने अपने पिता की हथेली कस कर पकड़ ल

दो चार कदम चलकर सुशोभन फिर खड़े होकर बोले, "अच्छा नीता,
आदमी इस तरह से हँसने क्यों लगा था ?"

"क्यों हँसने लगा था ?" नीता ने बेहिचक कहा, "पिताजी वह आद
पागल था।"

"पागल ! ओह ! ऐसा कहो।"

सुशोभन भी अचानक अट्टहासकर उठे, "तभी कहूँ कि मैं अच्छी बातें क

गया, और वह व्यंग्य करने लगा, हँसने लगा। पागल। आई सी। इस दुनिया में जाने कितने पागल भरे पड़े हैं।"

"हाँ, पिताजी! अच्छा, अब जरा जल्दी चलो।"

"लेकिन नीता मुझे लगा और भी ढेर सारे लोग हँस रहे थे।"

"हँसेंगे ही!" नीता बलपूर्वक बोली, "हँसेंगे नहीं? पागल का पागलपन देखकर ही वे सब हँस रहे थे।"

"सचमुच! लेकिन नीता, देखो कितने आश्चर्य की बात है, यहाँ कोई नहीं है, फिर भी जैसे मैं उनकी हँसी की आवाज सुन रहा हूँ।"

"यह मन का भरम है पिताजी। अब चलो न, बहुत देर हो रही है। सुचिन्ता बुआ जाने कब से तुम्हारे जलपान की व्यवस्था करके इंतजार कर रही होंगी।"

"इंतजार कर रही हैं।"

सुशोभन व्याकुल होकर बोले, "सुचिन्ता इन्तजार कर रही है, और तुमने मुझे अभी तक यह बात नहीं बतायी?"

"बतायी तो अभी।"

"तो इसे और पहले भी बता सकती थी।"

सुशोभन अत्यन्त असंतुष्ट होकर बोले, "इतनी देर बाद बता रही हो। मेरा क्या है। मैं सुचिन्ता से कह दूंगा कि सारा दोष तुम्हारा है। कहूँगा, नीता ने मुझे ले जाकर एक पागल से भिड़ा दिया था—"

नीता जैसे भयभीत होकर बोली, "ऐसा मत कहना पिताजी। मत कहना। बुआ फिर मुझे नहीं बख्शेंगी।

"बख्शेंगी नहीं?"

सुशोभन फिर रुक गये, "तुम्हें नहीं बख्शेगी? इसका मतलब? मारेगी? देखो नीता, तुम्हें मारेगी तो मैं भी उसे नहीं छोड़ूंगा। परेशान कर दूंगा। लेकिन नीता—" उनके चेहरे पर पुनः असहायता उभर आयी। "सुचिन्ता तो वैसी नहीं है। तुमको कितना चाहती है।"

"बड़ी आफत है। पिताजी तुम तो सचमुच सोचने लगे। मैं तो मजाक कर रही थी।"

"मजाक किया था? तुमने मुझसे मजाक किया था? तो इसे पहले बताना था। मैं इधर सुचिन्ता पर नाराज हो रहा था। यही तो सोच रहा था सुचिन्ता ऐसा क्यों करने लगी?"

"यह तो सच है।" नीता बड़े ही उत्साहपूर्वक बोली, "लेकिन पिताजी तुम घर जाकर नाश्ते में सारे फल को खा लेना। इस बात से बुआ खूब प्रसन्न होंगी।"

"प्रसन्न होगी। सच कह रही हो ?"

"कह तो रही हूँ पिताजी।"

नीता का स्वर बुझने लगा। और कितनी देर तक वह उत्साह प्रदर्शन का अभिनय करती रहेगी ? और कितने दिनों तक कर सकेगी।

बीच-बीच में बिजली की चमक की तरह आशा की एक झलक दिखायी पड़ती, फिर सारा आकाश मेघाच्छन्न हो जाता।

नीता क्या अब हार जाएगी ?

नहीं, नहीं, सागर के लौटने से पहले नहीं। बालू में फँसे जहाज को फिर से प्रवाह में लाया जा सकता है या नहीं, इसे आखिरी दम तक देखना है।

सागर ! सागर ! सागर !

आज रात को ही वह सागर को चिट्ठी लिखेगी।

घर के निकट आते ही सुशोभन बोले, "नीता तू उस समय क्या कह रही थी ? सुचिन्ता किस बात से खूब प्रसन्न होगी ? अब याद नहीं आ रहा है।"

लेकिन नीता को ही क्या याद था ? नीता कहने के लिए कोई बात गढ़ने लगी तब तक वे दोनों मकान के दरवाजे तक पहुँच गये थे। सुचिन्ता दरवाजे के सामने ही परेशान उत्कंठित होकर खड़ी थी। उन्हें तुरन्त खुश करने की आशा कम ही दिखी।

उनके नजदीक पहुँचते ही सुचिन्ता के चिंतित परेशान स्वर ने उन पर हमला बोल दिया, "इतनी देर तक कहाँ घूम रही थी नीता ? तभी से तुम्हारी ताई और चाचा बैठे इन्तजार कर रहे हैं।"

ताई और चाचा।

नीता के पैर छूते ही मायालता ने भी शिकायत भरे लहजे में वही बात दोहरायी, "बहुत देर से बैठी हुई हूँ। सुबह इतनी देर तक टहलना क्या तुम लोगों का नित्य नियम है ?"

"नियम ही समझिये और क्या ? नीता शंकित दृष्टि से एक बार सीढ़ी की ओर देखकर मुस्कराने की कोशिश करते हुए बोली, "घूमते-टहलते जिस दिन जितनी देर हो जाए।"

सुशोभन धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ रहे थे। उनके ऊपर आने के पहले ही ताई से प्रारंभिक वार्ता हो जाना अच्छा था।

"ओह ! घूमने की सुविधा के लिए ही शायद यहाँ आकर रह रही हो ?" मायालता होंठ दबाकर पूछ बैठीं।

नीता सहसा संकोच त्याग कर सामान्य लहजे में बोली, "ठीक कहा आपने। सचमुच यही बात है। पिछले कुछ समय से पिताजी की तबियत ठीक नहीं चल रही थी।"

"अच्छा, यहाँ तुम चेंज के लिए ले आयी हो ?" मायालता ने क्रूर परिहास भरे स्वर मे कहा, "तो हवा बदलने के लिए जगह का चुनाव तुमने ठीक ही किया है। दिल्ली का आदमी हवा बदलने आया भी तो कहाँ, धुर गोविन्दपुर में। खैर, एक बार खबर कर देती तो क्या कुछ हर्ज हो जाता बेटी ? हम लोग तुम्हारे मामले में बाधक तो नही होते।"

"ऐसा क्यों कह रही हैं ताई ?" नीता का चेहरा आरक्त हो [illegible]। [illegible] "बंगाल की शीतल जलवायु में कुछ दिन अलग-थलग रहने से शायद [illegible] यही सोचकर—" कहते-कहते नीता रुक गयी। समझ नहीं पायी कि ताई [illegible] बात कितना जान चुकी हैं, कितना नही। बहुत देर से आयी हैं, सुचिन्ता से काफी बातें हुई होंगी।

क्या सुचिन्ता ने सुशोभन की मानसिक स्थिति के बारे में बता दिया है ? नीता को लगा सुचिन्ता ने अभी इस बारे मे कुछ नहीं कहा होगा। [illegible] क्या मायालता अभी तक ऐसी ही उग्रमूर्ति धारण किए रहतीं ? [illegible] मुलायम रुख न लिये होती ?

आश्चर्य। अर्से से नीता मायालता के व्यवहार को देख रही है, [illegible] से जैसे हमेशा शहद टपकती रहती थी। लेकिन आज [illegible] का कारण क्या था ?

छोटे चाचा भी आये हैं क्या ? कहाँ हैं वे ? [illegible] नीलांजन के कमरे से बातों की आहट महसूस हुई। [illegible] जमा ली है।

मायालता कुछ और भी कहते-कहते रुक गयीं।

सुशोभन रुक-रुककर सीढ़ियां चढ़कर [illegible] होने की मुद्रा मे खड़े हो गये।

उनके ठीक पीछे ही सुचिन्ता थी।

स्टेच्यू की तरह सब शून्य चेहरा था।

यह समझने में दिक्कत नहीं हुई कि सुचिन्ता ने [illegible] केन्द्रित कर लिया था।

मायालता को क्या आँखें नहीं थीं ?

सुशोभन के इस विह्वल भाव को देखकर [illegible] पा रही हैं ? या जिस बात को [illegible] के दायरे के बाहर थी क्या [illegible]

"कहो मंझले देवर जी, क्या तुम [illegible]

सुशोभन वैसी ही विह्वल दृष्टि से [illegible] पहचान तो रहा हूँ।"

अचानक मायालता का लहजा बदल गया। विगलित हँसी में मनुहार करते हुए बोलीं, "मंझले देवरजी तुम मुझे बेवकूफ बनाकर नहीं लौटा सकते। मैं क्या चीज हूँ, जानते हो न ? मैं तुम्हें यहाँ से ले जाकर ही मानूंगी। सुचिन्ता बहन, तुम मन में कोई ख्याल न लाना, लेकिन कहती हूँ, अपना घर छोड़कर पराये मकान में रहने से लोग क्या कहेंगे, जरा तुमको इसे भी सोचकर देखना था। और नीता—"

"ताई जी !"

नीता ने असहिष्णु प्रतिवाद किया।

लेकिन मायालता ने उस स्वर की तीक्ष्णता पर बिना कोई ध्यान दिए ही चहकते हुए बोलीं, "ओ छोटे देवर जी, जरा आकर देख जाओ, तुम्हारे मँझले भैया अब मुझे भी नहीं पहचान पा रहे हैं। मँझले देवर जी क्या तुमने इसी कला में महारत हासिल की है ? या किसी ने कोई जड़ी-बड़ी सुँघाकर तंत्र-मंत्र करके तुम्हें जड़ पदार्थ बना रखा है ?"

मायालता ने सुचिन्ता की ओर तीव्र कटाक्ष किया।

लेकिन सुचिन्ता तो बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बनी हुई थी।

और लगता था नीता भी उन्हीं का अनुकरण कर रही थी।

मायालता की चहकती आवाज से सुमोहन 'क्या बात है ?' कहते हुए कमरे से निकल आया।

लेकिन फिर मामले को किसी दूसरे को समझाने की जरूरत नहीं पड़ी। सुशोभन ने ही स्पष्ट कर दिया। सुमोहन को देखते ही वे बच्चों की तरह पुलकित होकर चीख पड़े, "नीता, नीता देखो यह मेरा छोटा भाई है।"

नीता ने आगे बढ़कर अपने चाचा के पैर छूकर शांत, तटस्थ स्वर में बोली, "यह क्या पिताजी आप छोटा भाई, क्यों कह रहे हैं। नाम लेकर बुलाइये।

"नाम लेकर ! हाँ हाँ, नाम से ही तो पुकारूँगा। लेकिन नीता नाम क्या है ? वह नाम कहाँ चला गया ? नाम तो नहीं ढूंढ़ पा रहा हूँ। नीता जरा ढूंढ़ क्यों नहीं देती ?"

सुशोभन कुर्सी पर हताश होकर बैठ गये।

इस बार मायालता के परेशान होने की बारी थी। वे वहाँ उपस्थित लोगों के चेहरे की ओर देखने लगीं।

सुमोहन ने नीता से इशारों से पूछा "ऐसा कब से है ?"

लेकिन नीता ने उस इशारे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की। पिताजी की कुर्सी कस कर पकड़े हुए वैसी ही खड़ी रही।

सुचिन्ता चुपचाप अपने कमरे में चली गयीं। नीलांजन भी एक बार कमरे से

मोहन ! मोहन सुमोहन का घर का नाम था ।

सुशोभन फिर से खिल उठे, "ओ नीता, सुचिन्ता ! सुना तुम लोगों ने— मोहन ! मोहन ! तुम लोग एक नाम ढूंढ़कर नहीं निकाल सके, मोहन ने ढूंढ़ निकाला । मोहन ! मोहन ! कितने आश्चर्य की बात है, अचानक जाने कैसे चीजें खो जाती हैं ।"

सुमोहन मायालता जैसा नहीं था । न ही वह बेवकूफ था । वह परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालकर बोला, "मँझले भैया, तुम दिल्ली से कब आये ?"

"दिल्ली से ?"

सुशोभन ने खिन्न होकर कहा, "नीता, दिल्ली से हम लोग कब आये थे ?"

"पिछले महीने की दो तारीख को पिताजी ।"

"हां हाँ, सुना मोहन, पिछले महीने की दूसरी तारीख को ।"

"अभी तो कलकत्ते में हो न ?"

सुशोभन ने बेफिक्री से कहा, "बिल्कुल । अब क्या सुचिन्ता को मरने के लिए छोड़ दूँ ? दिल्ली में तो सभी मर जाते हैं । लेकिन तुम ? तुम क्या दिल्ली में रहते थे ?"

"नहीं भैया, मैं तो हमेशा से ही यहाँ पर हूँ ।"

"तुम बहुत बेकार की बातें करते हो मोहन । यहाँ तुम कब थे ? अभी तो आये, अभी तो तुम्हारा नाम ही खो गया था, फिर तुमने उसे ढूंढ़ निकाला ।"

"पिताजी कमरे में चलो, तुम्हारे नाश्ते का समय हो गया है ।"

"नाश्ते का समय हो गया ?"

सुशोभन अचानक भड़क उठे, "और मोहन का ? मोहन के नाश्ते का समय नहीं हुआ ? नीता तुम कैसी हो ? मोहन का सब कुछ नष्ट हो गया है, वह नहीं खायेगा ? आखिर वह कहाँ खायेगा ?"

"क्या बेकार की बात कह रहे हो पिताजी", नीता चिढ़ गयी, "चाचाजी का मकान क्यों नष्ट होगा भला ? वे मकान तो दूसरों के थे । उन गरीब लोगों के ।"

"गरीबों के । वही तो । ठीक कहा तुमने । देखा मोहन, नीता मेरी सारी भूलों को सुधार देती है ।"

मायालता तुरन्त कसमसाकर बोल पड़ी, "मँझले देवर जी, नीता तुम्हारी गलतियों को सुधारने के लिए हमेशा तो बैठी नहीं रहेगी । शादी के बाद नीता को ससुराल नहीं जाना पड़ेगा ? तब क्या होगा ?"

"तुम फिर क्यों बात कर रही हो ?"

सुशोभन ने रोबदार आवाज में डाँटा, "तुम्हारे कहने से ही मैं नीता को उसके ससुराल में भेज दूंगा क्या ? सिर्फ तुम्हारे हुक्म से ?"

मायालता को मजा आने लगा।

जैसा मजा सौ में ६८ लोगों को पागलों को देखकर आता है। "सुशोमन पागल हो गये हैं।" इस कटु सत्य को जानकर भी इस समय मायालता विमूढ नहीं हुयी। इसलिए वे तीखी नजरों से अपने देवर के चेहरे की ओर देखते हुए बोली, "मैं तो हुक्म दे ही सकती हूँ। मैं उसकी ताई होती हूँ न। वह मेरे श्वसुर-खानदान की बेटी है न? शादी न करके बेकार घूमते-फिरते रहने से हम लोगों की भी तो बदनामी होगी कि नहीं?"

यह बात मायालता किसे सुना रही हैं इसे समझने में नीता को देर नहीं लगी। फिर भी वह अविचलित स्वर में बोली, "अच्छा जरा बैठिए ताई! पिता जी को जरा कुछ नाश्ता करा दूँ, इसके बाद जितनी खुशी हो सवाल पूछिएगा। रोज इसी समय उन्हें कुछ नाश्ता करने की जरूरत महसूस होती है।"

मायालता सबको समेट कर छलछलायी आँखों और रुँधे गले से बोलीं, "खुशी? खुशी के सवाल पूछने का मुँह भगवान् ने रखा है क्या? तब से चकित होकर मैं देख-देखकर सोच रही हूँ, यह क्या हुआ। कैसे थे और कैसे हो गये। अच्छा मँझले देवर जी अच्छी तरह से देखकर बताओ तो मुझे क्या बिल्कुल पहचान नहीं पा रहे हो?"

अचानक सुशोमन अपने तरह का अट्टहास कर उठे। "नहीं पहचान पाऊँगा, मतलब? कौन कहता है मैं नहीं पहचान पाऊँगा? तुम तो वही उन लोगों के यहाँ की बड़ी बहू हो न?"

मायालता का सारा दिन अत्यन्त उद्विग्नता में बीता, सुविमल कब आएँ और सारी बात बताएँ। जब सुविमल ने पूछा, "अब बताओ, तुम लोगों का अभियान कैसा रहा? उम्मीद है सबसे सफल रहा होगा।" सुनकर मायालता चुप्पी साध गयीं। शायद इस सवाल में छिपे एक व्यंग्य का आभास उन्हें हुआ।

"क्यों, क्या फिर जाना नहीं हुआ?"

"हुआ क्यों नहीं।" भौंहों को सिकोड़कर मायालता ने अपना मुँह फेर लिया, "किसी बात का डर था क्या?"

"क्यों, तुमको तो पहचान लिया न?"

"हाँ, मेरे पूर्वजन्म का फल था। देखो, एक बात मैं पहले से बता देती हूँ, छोटे देवर जी तुम्हें भले ही मँझले देवर जी की दिमागी गड़बड़ी के बारे में बताएँ लेकिन मैं इस बात पर यकीन नहीं करती।"

दिमागी गड़बड़ी।

सुविमल चौंक पड़े। यह बात तो उनके ध्यान में ही नहीं आयी थी। जबकि भतीजे को न पहचान पाने के पीछे न कोई तर्क था और न सुशोमन का

वैसा स्वभाव ही था। इस बात पर तो उन्होंने सोचा ही नहीं था। सुशोभन के दूसरी जगह रहने की बात को लेकर उन्होंने बस यही सोचा था कि अब भाई-भाई में वैसा लगाव नहीं रहा होगा। 'दिमागी गड़बड़ी' इस शब्द से लगा जैसे किसी ने उन पर हथौड़े की चोट कर दी है। लेकिन इस चोट को महसूस करने की दृष्टि मायालता की नहीं थी। इसके अलावा सुशोभन के प्रति सुविमल की बड़े भाई के अनुरूप स्नेह और वात्सल्य का भाव भी कभी उनके देखने में नहीं आया था। हमेशा ही सुशोभन की चर्चा होने पर सुविमल उन्हें 'मँझले बाबू' कहकर ही व्यंग्य करते थे, मायालता के सामने यह भी एक कारण था।

इसीलिए मायालता अपनी ही रौ में बातें करती रहीं।

"कितनी लज्जा की बात थी। सब देख-सुनकर भी भागने का रास्ता नहीं मिला। अच्छा तुम्हें शुरू से ही बताती हूँ: जाकर पाया कि बाप-बेटी दोनों टहलने गये हैं, तब सुचिन्ता और उनके बेटे से बातचीत हुई। जितनी बार भी पूछने की कोशिश की तुम्हारे यहाँ उनके रहने का कारण क्या है? हर बार वे बात का रुख बदल देते। इधर-उधर की बातें करते। बचपन की बातें बताने लगीं। उधर छोटे देवर जी सुचिन्ता के पुत्र के साथ बातचीत में मशगूल हो गये। बहुत देर बाद बाप-बेटी टहलकर लौटे।

भेंट होते ही फिर वही कायदा। जैसे देखकर भी नहीं देखने, पहचानकर भी नहीं पहचानने की भंगिमा। छोटे देवर जी को धीरे-धीरे पहचानने की कोशिश की।

मैंने इन सब बातों की परवाह नहीं की। आगे बढ़कर पूछते ही बोले, "हाँ हाँ, पहचानूँगा क्यों नहीं, तुम तो उन लोगों के घर की बड़ी बहू हो।" इतना बता सके और किसके घर की बहू हूँ यह नहीं बता सके? बताएँगे क्यों, यह एक नयी चाल है।"

"अब जरा चुप भी रहो।" कहकर सुविमल सुमोहन के कमरे में जा पहुँचे, "क्या बात है मोहन?"

"बात क्या है।" मोहन ने हताश होकर कहा, "एकदम तो पागलपन की हालत है।"

"अचानक ऐसा कैसे हुआ?"

"कहना कठिन है! रोग कब अचानक शरीर में जड़ जमा लेता है। अचानक तो नहीं होता। नीता ने बताया कि पिछले तीन वर्षों में इसके लक्षण दिखने लगे थे। दवा कराने कलकत्ता आये हैं—"

सुविमल चीख उठे, "आखिर नीता देवी ने हम लोगों को इसकी सूचना देने की जरूरत भी नहीं समझी?"

सुमोहन अब क्या कहता यह भगवान् ही जानते होंगे लेकिन उसके कुछ कहने

के पहले ही पति की अनुगामिनी सती मायालता सुविमल के पीछे-पीछे आकर वहाँ हाजिर हो गयी और अपनी बुद्धि के अनुसार उन्होंने जवाब देने में कोताही भी नहीं की, "मैं यही तो कह रही हूँ। यह सब सच नही है, यह जान-बूझकर पागल बनना है। सचमुच पागल होने से क्या नीता परेशान नहीं होती ? तब हम लोगों को एकदम दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक सकती थी—अपने मन से भी भला ऐसा कर सकती थी ? यह तो साफ ही है कि इसमें उसके पिता का भी हाथ है।"

"यह तुम क्या कह रही हो भाभी ?" सुमोहन झुंझला पड़ा, "हम लोग अपनी आँखों से देख आये। बड़े भैया, देखकर तकलीफ ही हुई। यही तो आदमी असहाय होता है। ऊँची नौकरी करने से क्या और बैंक मे भारी रकम जमा करने से क्या, एक मिनट में सब बेकार हो जाता है।"

मायालता ने रद्दा जमाया, "सच कहते हो देवर जी ? तभी तुम दुनियादारी से बिल्कुल अलग निश्चिंत बैठे हुए हो, कभी कुछ करने की जरूरत नहीं समझी।"

सुमोहन बिना विचलित हुए बोला, "बात तुमने सही कही है।"

सुविमल खीझते हुए बोला, "अब तुम यहाँ क्यों चली आयी ? असल बात क्या है, जरा सुनने दो न ?"

"ओह, लगता है, तुम्हें मुझसे सच्ची बात की जानकारी नहीं होती ?" मायालता गुस्से में बोली, "लेकिन मैं कहे देती हूँ कि बाद में मेरी बात पर ही विश्वास करना पड़ेगा। अगर पागलपन है तो बनाया हुआ पागलपन है। नीता को थोड़ा झिड़क क्या दिया कि वह उल्टा मुझी को डाँटने लगा। बात का तरीका देखो, "नीता को तुम डाँट क्यों रही हो ? तुम्हें उसे डाँटने का क्या अधिकार है ? नीता ने तुम्हारे यहाँ से चली आकर बड़ा अच्छा किया है। तुम्हारी जैसी झगड़ालू औरत के पास वह क्यों रहेगी ? जरा सुचिन्ता को देखो। वह सही मायने में एक लेडी है, जिसे कहते हैं भद्र महिला। नीता सुचिन्ता जैसी बनेगी। ऐसी ही ढेरों बातें।"

सुविमल थोड़ा मुरझाकर बोले, "उसने यह सब कहा ?"

"कहा कि नहीं, पूछ लो अपने छोटे भाई से। हुँ, तुम तो समझते हो कि मैं हर बात बढ़ा-चढ़ाकर कहती हूँ। इन्हीं से पूछो कि ये सब अतिरंजित वर्णन हैं या सच-सच बातें हैं ! मैं कहे देती हूँ उस सुचिन्ता ने ही कुछ जादू-टोना किया होगा। और इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि बहुत दिनों से दोनों की चोरी-छिपे मुलाकातें होती रही हैं। बचपन का प्रेम भला—"

"अब तुम चुप भी रहो।"

सुविमल ने डाँट दिया।

लेकिन डाँटकर कब कौन गृहिणी का मुँह बन्द कर सका है ? सुविमल भी

रोक सके। जवाब में मायालता चीखने लगीं, "क्यों, आखिर क्यों चुप ? सच बात कहने में मैं किसी से भी नहीं डरती, यह मैं साफ-साफ कहे देती मँझले बाबू को मैं इतने दिनों तक सीधा-सादा, सरल इन्सान समझती थी। क्या जानती थी कि बाहर कुछ और है और अन्दर से कुछ और। हे गवान्। मैंने तो प्रेमपूर्वक यही कहा, "मँझले देवर जी, तुम बहुत दिन यहाँ रह चुके, अब घर चलो।" यह सुनकर तो वे भड़क उठे।

"उनके जहाँ-जहाँ भी अपने लोग थे, मैंने उन सबको मार डाला है। इस घर में अब उनका कोई नहीं रहता। मैं भी जल्दी छोड़ने वाली नहीं थी। मैंने कहा, मेरे साथ चलकर एक बार देख तो लो तुम्हारा वहाँ कोई है या नहीं ! मैं आज यूँ ही नहीं लौटूँगी, तुम्हें साथ लेकर ही जाऊँगी। इसके बाद की बात तुम्हें बताते हुए शर्म आती है। चूंकि छोटे देवर जी के सामने यह हुआ था नहीं तो मैं उसे जबान पर ला ही नहीं पाती। जैसे ही ये सारी बातें मैंने कहीं, वह दौड़कर दोनों हाथों से सुचिन्ता को जकड़ते हुए आँख मूँदकर आर्तनाद करने लगे, "सुचिन्ता, उस घर की बड़ी बहू को भगा दो, अभी भगा दो। वह मुझे तुम्हारे पास से छीनने आयी है। और किसी दिन उसे इस मकान में मत घुसने देना। छिः छिः यह देखकर तो मैं शर्म से गड़ ही गयी। मारे शर्म के रास्ता नहीं मिल रहा था। लेकिन तुम लोगों की सुचिन्ता को धन्यवाद देती हूँ। न वह हिली न डुली, न उसे शर्म ही आयी बल्कि उल्टे मुझे उसने साफ-साफ कह दिया "भाभी इनकी हालत तो देख ही रही हो। ज्यादा उत्तेजित करके अस्वस करने से कोई लाभ नहीं होगा। आज तुम चली जाओ।"

"मैं भी उनको सुना आयी हूँ, सिर्फ आज ही क्यों, जिन्दगी भर के जा रही हूँ। तुम्हारे यहाँ कभी पैर धोने भी नहीं आती, अगर हम लोगों अपना कोई यहाँ न रहता होता। खैर ये तो यहाँ जड़ बन के बैठे हुए हैं, और किसके पास आऊँगी।" कहकर दनदनाती हुई वहाँ से निकल अ लेकिन नीता कैसी कठोर लड़की है जरा देखो वह एक बार भी पीछे-पी आयी, न मनुहार किया, "ताई एक पागल की बातों पर नाराज मत हो पागल कहकर तो परिचय ही नहीं दिया—

इतनी देर बाद अचानक मायालता की बातों पर किसी के प्रतिवाद सुनाई दिया। जाने कब अशोका भी वहाँ उपस्थित हो गयी थी। प्रति ने किया था।

हालांकि ऐसा करना अशोका के स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था। लेकिन शायद अशोका को कमरे की इस आबोहवा में घुटन होने इसलिए भी कि मायालता सब कुछ अपनी ही रौ में कहे जा रही थी

बिस्तरे पर लम्बायमान थे और एक भाई स्तब्ध होकर गूंगे-बहरे की तरह बैठे हुए थे।

लेकिन अशोका ने अधिक कुछ नहीं कहा, बल्कि मधुरता से ही बोली, "दीदी, पागल खुद ही अपना परिचय दे देता है, उसके बारे में किसी दूसरे को बताने की जरूरत नहीं पड़ती। बड़े भैया आइये, आपके लिए भोजन परोस दिया है।"

कचहरी से लौटने के बाद सुविमल को गरिष्ठ जलपान ग्रहण करने की आदत बराबर रही है और उन्हें नाश्ता कराने की जिम्मेदारी अशोका की थी। जेठ को 'बड़े ठाकुर' कहकर सम्बोधन न करने से जेठ के प्रति संकोच का अभाव महसूस करके मायालता नाराज होती थी, लेकिन अशोका बेपरवाह होकर उन्हें बड़े भैया ही कहती थी।

अशोका के स्वर में प्रतिवाद था। दूसरों की बातों में उसे कोई रुचि नहीं थी।

सबसे अधिक आश्चर्य सुमोहन को हुआ था।

उस वक्त घर लौटकर उसने सुशोभन की हालत और बाकी घटनाओं के बारे में अपनी पत्नी को बतलाने की कोशिश की थी, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। अशोका ने उसके उत्साह पर पानी फेरते हुए कहा था, "यह सब मुझे बताने से क्या लाभ?"

सुमोहन खिसियानी हँसी-हँसता हुआ बोला, "अपनी पत्नी के साथ बातें करते वक्त आदमी क्या हर समय नफे-नुकसान के बारे में सोचता है?"

"क्या यह बात चर्चा करने लायक है?" कहकर अशोका ने अपना ध्यान बुनाई पर केन्द्रित कर दिया।

इस समय तो उसने अपने आप ही बात शुरू की थी।

इसे मायालता ने भी महसूस किया।

उन्होंने सोचा, यह और कुछ नहीं सिर्फ जेठ की प्रशंसा प्राप्त करने का तरीका है। जेठ के उकसाने से ही तो इसे इतना घमण्ड हुआ है। लेकिन मुँह पर कुछ कह नहीं पाती, पीछे कहती हैं, "चले जाइये। हुकुम। आदमी जैसे मशीन हो गया है, कि हमेशा लगाम कसकर घोड़े पर दौड़ना ही रहेगा? दो घड़ी बैठकर आदमी दुःख-सुख की बात भी नहीं करेगा?"

"सुख की बात सिर्फ कहने की ही है।···बड़े भैया अब जल्दी आइये। नाश्ता ठण्डा हो रहा है।" यह कहकर कमरे से बाहर चली गयी।

उसके जाने के बाद मायालता गुस्से से आग हो उठी, "देख लिया? देख लिया तुम दो भाइयों की चार आँखों ने? मुझसे छोटी होकर भी छोटी बहू मुझ से किस तरह से पेश आती है?"

सुविमल उठ खड़े हुए। जाते-जाते बोले, "छोटा-बड़ा क्या आदमी अपनी उम्र से ही होता है बड़ी बहू ?"

मायालता मान किये नहीं बैठी रहीं। उनमें इतनी क्षमता भी नहीं थी। छोटी बहू उनके पति का कितना ख्याल रख रही है, इसे देखे बिना वे नहीं रह सकीं। लेकिन पति के पीछे-पीछे जाते हुए वे सुनाकर बोल भी पड़ीं, "आखिर मन, बुद्धि, ज्ञान चैतन्य को तोलने का कोई बटखरा तो अभी तक नहीं निकला कि जिससे बड़े-छोटे का पता लगाया जा सके। आदिकाल से ही उम्र से ही छोटे-बड़े की परख होती रही है।"

कहना न होगा, इस बात का किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। जरूरत ही नहीं समझी गयी। लगातार बकबक और दोषारोपण करते रहने से मायालता अपना मान-सम्मान खत्म कर चुकी थी। उनकी अपनी जायी संतान भी कहती थी, "माँ हम लोगों में तुम्हारी तरह कभी न खत्म होने वाली जीवनी शक्ति नहीं है, बताओ ? तुम्हारी सारी बातों का जवाब देना हम लोगों की बुद्धि से बाहर है।"

अल्पभाषिणी अशोका की जितनी भी बातें होतीं वह प्रायः अपने जेठ से ही होती थीं।

मायालता इस बात से भी चिढ़ती थीं। लेकिन इससे घबराकर पीछे हट जाने वाली अशोका नहीं थी। बच्चों की पुस्तकें, जूते, कपड़े, फीस आदि जरूरत की सारी चीजों के लिये वह अपने जेठ से ही कहती थी। इसमें उसे कोई संकोच नहीं महसूस होता था।

मायालता को ये बातें जब मालूम होतीं तो वे दीवाल को सुना-सुनाकर कहतीं, "न जाने लोग कैसे इतने निर्लज्ज हो जाते हैं। मैं तो यही जानती थी—कि हाथ फैलाने से सिर लज्जा से झुक जाता है। कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। लेकिन यहाँ तो सारी बातें ही उल्टी हैं। बड़ा आश्चर्यजनक मामला है।"

शायद उस वक्त अशोका दूसरी ओर मुँह किये हुए पान लगाती रहती, लेकिन वह मुड़कर भी नहीं देखती थी। बल्कि अगर बहुत देर से मायालता को अपनी शक्ति खर्च करते हुए देखती तो अचानक मुखातिब होकर कह बैठती, "दीदी, जरा चार सुपारी काट दीजियेगा ? बातें करते-करते काम हो जायेगा।"

मायालता वहाँ से बड़बड़ाती हुई चली जातीं।

या दूसरे ही दिन चकित होकर देखतीं जब वे अशोका को यह कहते पातीं, "बड़े भैया, जरा चार-एक रुपया दे जाइयेगा, आज उनके स्कूल में फैन फी या ऐसा ही कुछ देने के लिए कहा है।"

अशोका ऐसे ही सहज रूप से माँग लेती थी।

इसमें वह जरा भी कुंठित नहीं होती थी।

आज भी उसने उसी तरह पूछ लिया, "बड़े भैया, आप क्या मंझले भैया को देखने जाएँगे ?"

सुविमल चौंककर बोले, "अभी तक कुछ तय नहीं कर पाया हूँ। सोचता हूँ जाने कैसी प्रतिक्रिया होगी। लेकिन यह सवाल तुमने क्यों पूछा ?"

"अगर जाइयेगा तो मुझे भी लेते चलियेगा।"

"तुम्हें ? तुम जाना चाहती हो ? लेकिन तुम वहाँ जाकर—"

कहते हुए सुविमल थोड़े चिन्तित हो गये।

"आपकी क्या राय है बड़े भैया, क्या जाना उचित नहीं होगा ?"

"नहीं, नहीं, उचित-अनुचित का सवाल नहीं उठता। सोचता हूँ, वहाँ जाकर क्या उन्हें अच्छा लगेगा ? मतलब कि सुन रहा हूँ कि शोभन तो अब किसी को पहचान ही नहीं पा रहा है।"

"यह तो सुना। लेकिन बड़े भैया, उनके लिए उतना नहीं, मुझे एक बार आप लोगों की सुचिन्ता को देखने की इच्छा है।"

"सुचिन्ता को ?"

"हाँ, बड़े भैया।"

"लेकिन ऐसा क्यों ?"

"ऐसे ही।"

अनुपम कुटीर के पड़ोसियों के बीच फिर एक सनसनाहट छा गयी थी। लेकिन लाल मकान, गुलाबी मकान वाले अब सिर्फ अपने में ही अनुमान नहीं लगाते रहते थे बल्कि अब सीधे-सीधे अनुपम कुटीर के सदस्यों से ही सम्पर्क साधते थे।

लाल मकान की लड़की, जिसका वर्ण रक्ताभ था, और नाम था कृष्णा, ने एक दिन रास्ते में इन्द्रनील को रोककर पूछा, "सुनो कल तुम्हारे यहाँ कौन लोग आये थे ?"

इन्द्रनील ने गम्भीरता ओढ़कर कहा, "यह कोई सवाल है ? मतलब सवाल का विषय है ?"

"बिल्कुल। एक प्रौढ़ महिला और एक सज्जन अचानक तुम लोगों के यहाँ क्यों आये थे, क्या यह बात हम लोगों के जानने की नहीं है ? यह भी हो सकता है कि कोई प्रौढ़ा, किसी कुमारी की माँ सुपात्र की खोज में चली आयी रही हों—"

इन्द्रनील बोला, ऐसा ही है तो तुम लोगों को सोचने की क्या ज़रूरत है ? आने पर समझ ही गयी रही होगी कि यह गलत जगह पर चली आयी थीं।"

"ऊँह ! कोई मूर्ख ही किसी लड़के की देह पर किसी डिग्री की मोहर देखकर उसे सुपात्र समझने का भ्रम पाल सकता है।"

"ऐसा होने पर भी चिन्ता का कोई कारण नहीं है। यह मोहर तुम सबके ऊपर ही अधिक लगी हुई है। मैंने तो इस बार एम० ए० में फेल होना ही तय कर लिया है।"

"तुम्हारी बात कौन करता है।"—कृष्णा मुँह बिचकाते हुए बोली, "तुम अपने को गिने लायक ज्ञाता क्यों समझते हो ? तुम्हारे बड़े भाइयों के बारे में ही कह रही हूँ"

"स्वीकारता हूँ मेरे बड़े भैया लोग अत्यधिक सुपात्र हैं, लेकिन उनके लिए, 'लड़के फँसाने वालों' को आते हुए देखने से तुम्हारे सर में क्यों दर्द हो रहा है, यही नहीं समझ पा रहा हूँ।"

"इसे कैसे समझोगे ? जो आँखें होते हुए भी अंधे हो। नीता दीदी के बारे में शायद कभी सोचा भी नहीं होगा ?"

अचानक इन्द्रनील खिलखिलाकर हँस पड़ा, "अरे बालिका, तुम अभी बिल्कुल नादान हो। इन हाथ की पहुँच के फूलों की ओर नीता की नजर नहीं है। उसने बहुत पहले ही एक बहुत ऊँची डाली को झुकाकर अपनी मुट्ठियाँ भर ली हैं।"

"मतलब ?"

"मतलब बहुत सरल है। हर सप्ताह विलायती मोहर लगी हुई एक चिट्ठी उसके नाम से आती है।"

"क्या कहते हो। सचमुच ?"

"रुपये में एक सौ पाँच पैसे सही।"

"इसके मतलब उनके भावी पतिदेव किसी लम्बी दुम को साधने वहाँ गये हैं।"

कृष्णा अपनी वेणी हिलाते हुए बोली।

"ऐसा ही लगता है।" इन्द्रनील ने कहा।

"तुमने पूछा नहीं ?"

"नहीं, दूसरों के प्राइवेट मामलों में झाँकने की बुरी इच्छा मुझे नहीं होती।"

"लेकिन मुझे तो है। मैं आज ही इस बारे में सब कुछ मालूम करके रहूँगी।"

इन्द्रनील परेशान होता हुआ बोला, "खबरदार ! यह सब बिल्कुल मत पूछना। उसका मन होगा तो खुद ही बतायेगी।"

कृष्णा भौंहें सिकोड़कर बोली, "तुम्हारा इस तरह से ना-ना कर उठना, तुम क्या सोचते हो मुझे बिल्कुल अच्छा लगा ?"

"मेरी सारी बातें तुम्हें अच्छी लगने के पैमाने पर खरी उतरें ही, यह कोई जरूरी नहीं है।"

"है।" कृष्णा विजयगर्व से मुस्कराते हुए बोली।

"यह तुम्हारी गलत धारणा है।" इन्द्रनील ने कहा, "अगर समुद्र पार के सागरमय की चिट्ठियों पर नजर न पड़ी होती तो भला मैं तुम्हारी ओर ताकता भी ?

"क्यों नही ? मतलब नीता ही तुम्हारी मनोनीता हुई होती।

"बि-ल-कु-ल। क्या लड़की है वह।"

"उम्र में तो तुमसे बड़ी ही होगी।"

"उससे क्या ?"

"उससे क्या ? अपने से बड़ी उम्र की लड़की से शादी करने की तुम्हें इच्छा होती है ?"

"मेरी इच्छा का सवाल तो अब छोड़ ही दो।"

"ओह, बड़ी तकलीफ हो रही है न ? लेकिन दूल्हे से अधिक उम्र की दुल्हन क्या तुम्हें अच्छी लगती है ?"

"न लगने की इसमें क्या बात है, इसे नहीं समझ पा रहा हूँ। लड़कियाँ अपनी उम्र से बड़े दूल्हे को काफी पसंद करती हैं।"

"बहुत स्वाभाविक है। हिरन की नाक में नकेल डालने मे क्या सुख धरा है ? मजा तो तब जब नकेल शेर की नाक में डाली जाए।"

"हूँऽऽ, देखता हूँ, तुम लोग इस मोहल्ले की लड़कियाँ नकेल डालने की ही बात अच्छी तरह समझती हो।"

"इसके मतलब ? कृष्णा आँखें नचाकर बोली, "अब फिर कहाँ नाक और रस्सी का संयोग होते हुए देखा ?"

"क्यों तुम्हारी प्यारी सहेली विनता और मेरा अभागा पड़ोसी अमल सेन तो आँखों के सामने ही हैं।"

"ऐसा कहो।" कृष्णा निश्चिंतता की मुद्रा बनाते हुए बोली, "उन दोनों का सम्बन्ध तो बहुत दिनों से चल ही रहा है।"

"उनके घर वाले एतराज नहीं करते ?"

"एतराज क्यों करेंगे ? बुरा क्या है, नकचिपटी लड़की की बिना पैसे में शादी हो जाएगी। लड़की के प्रेमी के पास अपना मकान है, गाड़ी है।"

"वह तो है। लेकिन नाक पिचकी होने की बात तुम सिर्फ जलन के मारे कह रही हो।"

"इंची-फीता लेकर नाप सकते हो। लेकिन इस बात को छोड़ो। सागर पार वाली खबर देकर तो तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया है। मैं तो इस सवाल

दूसरे ढङ्ग से हल कर रही थी। लेकिन अब यह कहना ही पड़ेगा कि नीता मतलब, बड़ी खिलवाड़ी लड़की हैं।"

"छिः कृष्णा। बेकार की बातें मत करो।"

"अरे बाप रे!" कृष्णा मानभरे स्वर में बोली, "उसके लिए बड़ा दर्द देखती हूँ। लेकिन क्या मैं सच बात कहने में डर जाऊँगी? नीता ही के प्रेम में पड़कर तुम्हारे मँझले भैया घायल नहीं हो गये हैं, क्या तुम यही कहना चाहते हो।"

"मँझले भैया उस टाइप के लोगों में नहीं हैं।"

"इस्स, पुरुषों की भी भला कोई टाइप होती है? लाइनो मशीन की टाइप की तरह गलाकर उन्हें कभी भी बिल्कुल नये ही टाइप में ढाला जा सकता है।"

"इतने मर्दों को कब परख लिया?"

"पैदा होने के बाद से ही।"

"हूँ। वही देख रहा हूँ। लेकिन अगर कोई चाँद देखते हुए चन्द्राहत होता हो तो भला चाँद का क्या दोष?"

"देखो बार-बार तुम्हारा नीता ही की ओर बात को घसीट ले जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"मुझे भी लग रहा है कि हम लोगों का इस तरह से सड़क के किनारे खड़े होकर प्रेमालाप करना गुजरने वालों की निगाहों में बहुत अच्छा नहीं लग रहा है।"

"प्रेमालाप? मतलब?"

"क्या यह बात नहीं है?" इन्द्रनील बड़े भोलेपन से बोला, "मेरी तो धारणा हो रही थी—"

"धारणा को बदलो।"

"अच्छा।"

कृष्णा अचानक मजा लेते हुए बोली, "ओफ! मुझे भी क्या क... बदलनी पड़ी है?"

"किसके बारे में?"

"यही तुम्हारे बारे में। ओफ! पहले तुम किस तरह के ... जाते हुए देखती थी तो लगता था जैसे तुम रेगिस्तान में भाग रहे ... बगल कहीं भी नजर नहीं रहती थीं। बस सड़क पार करना ... था।"

"यह सच है। हम लोगों का तौर-तरीका ऐसा ही था। ... जानते थे कि चलते हुए इधर-उधर ताकना असभ्यता है, असभ्... है।"

"यह धारणा बदली कैसे ?"

"सच बात सुनकर तुम नाराज हो जाओगी।"

"मतलब बात नाराज होने लायक है।"

"मतलब तुम जैसी गुस्सैलों के लिए नाराज होने लायक। अन्यथा यह सच है कि नीता ने आकर हम लोगों के मकान की बंद खिड़कियाँ खोल दी हैं।"

कृष्णा मुँह फेर कर बोली, "भविष्य के लिए एक प्लान बना रही थी, लगता है उसे तोड़ना पड़ेगा।"

"ऐसा क्यों ?"

"जीवन भर नीता के गुणगान मैं नहीं सुन पाऊँगी।"

"ओह ! मैं ऐसे ही नहीं कहता कि लड़कियाँ बड़ी ईर्ष्यालु होती हैं।"

"लड़कियाँ मतलब हम जैसी अधम लड़कियाँ। नीता दीदी जैसे महिमामयी नारियाँ, जरूर नहीं।"

"मेरा भी एक प्लान था, लगता है उसे भी अब तोड़ना ही पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि जीवन भर मैं भी व्यंग्य-वचन सह नहीं पाऊँगा।"

कृष्णा खिलखिलाकर हँसते हुए बोली, "अच्छा कब से हम लोगों ने ऐसा प्लान किया है, बताना तो।"

"क्या मालूम ?"

"कितने दिन हुए ही हैं हम लोगों की पहचान हुए।"

"फ़िलहाल तो लग रहा है जन्म-जन्मांतर से ही। लेकिन यह कितना स्थायी होगा, बता नहीं सकता।"

"नहीं जानते ?"

"नहीं। कैसे जान सकता हूँ। लगता है नदी की तरह—"

"सब का नहीं। लड़कियाँ क्या नहीं। अपनी माँ को ही ले लो। देख रही हूँ—"

इन्द्रनील अचानक गम्भीर होकर बात करते हुए बोला, "क्या देख रही हो ?"

"यही कि जीवन में पहला प्रेम अमर होता है।"

"कितने दिन मेरे यहाँ आते-जाते हुए हैं? इसी बीच तुमने इतना कुछ देख-समझ लिया ?"

"आँखें रहें तो एक क्षण में भी सब देखा जा सकता है। इसके अलावा लड़कियाँ लड़कियों को समझने में गलती नहीं करतीं। लेकिन क्या तुम नाराज हो गये ?"

इन्द्रनील थोड़ा उदासीन होकर बोला, "नहीं नाराज होने की भला क्या

। सच को नकारने से क्या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है? लेकिन
त्साहजनक प्रसंग नहीं है।"

"अच्छा रहने दो। कुछ ख्याल मत करना।"

"अच्छा चलूं।"

राहगीरों की असुविधा को कम करके दोनों अपनी-अपनी राह पर चले गये

कृष्णा जाते हुए सोचती रही कि इस प्रसंग को न उठाना ही बेहतर होता,
कुछ भी हो वे उसकी मां होती हैं।

और इन्द्रनील भी मन ही मन सोचता रहा कि इस तरह से गंभीर हो जानी
मेरे लिए लज्जाजनक ही हुआ। कुछ भी हो हम लोग आधुनिक हैं। फिर भ
जाने क्यों मन को उन्मुक्त करना संभव नहीं होता।

मां! लेकिन नीता के भी तो पिताजी हैं।

नीता कितनी सहज है।

नीता कितनी उन्मुक्त है। कितने स्वच्छन्द मन की है।

अपने पिता के सम्बन्ध में उसकी कितनी ममता है, कितना उदार स्नेह है।

इन्द्रनील अपनी लाख कोशिशों के बावजूद अपने मन को क्यों नहीं सहज
बना पा रहा है। वह जीवन भर के लिए वंचित उन दोनों को अपनी उदार स्नेह
दृष्टि से क्यों नहीं बांध पाता है। नहीं यह उसके बूते का नहीं है।

प्रेम की भावना तो नहीं होती बल्कि विराग ही उत्पन्न होता है।

उधर तो आंखें फेर लेने का मन होता है, अपने को उस चिन्ता से हटा ले
का मन होता है।

बाह्य आचरण में आधुनिक होना जितना सरल है, मन से आधुनिक
उतना ही कठिन है।

अच्छा अगर इन्द्रनील के पिता जीवित होते तब भी इन्द्रनील इस त
बात क्या घटित होते हुए देखता? इन्द्रनील ने अच्छी तरह से सोच-विच
देखा, ऐसा संभव हो सकता था, खूब संभव हो सकता था। उस दुर्ब
पिता की दुर्बलता मान लिया जा सकता था।

दुनिया में सभी को दुर्बलता को क्षमा किया जा सकता है, अगर
है तो शायद मां की।

नीता भी अपने मां के सम्बन्ध में इसे स्वीकार नहीं कर पाती।

ऐसा इन्द्रनील का दृढ़ विश्वास था।

लेकिन क्यों?

इस बात का इन्द्रनील के पास कोई जवाब नहीं था।

शायद लोग मां को सर्वाधिक श्रद्धास्पद मानते हैं इसलिए।

शायद मां को दुनिया की साधारणताओं से ऊपर देखना चाह

लेकिन दुनिया में तो बंगाल के अलावा भी और बहुत से देश हैं।

हिन्दू समाज के अलावा और भी तो समाज हैं, जहाँ विभिन्न प्रकार की प्रथाएँ और पद्धतियाँ होंगी। क्या वहाँ माँ के प्रति श्रद्धा नहीं होती ?

मन ही मन यह सवाल करके इसका भी वह कोई जवाब नहीं दे पाया।

नीता भी अपने मन से यही प्रश्न करती है, लेकिन उत्तर नहीं सूझता।

सोचती है क्या ताई के प्रस्ताव को स्वीकार करना उचित नहीं हुआ ?

मायालता ने कहा था, "ठीक है, अगर पुलिस में देने लायक पागल यह नहीं हैं और लोगों के साथ के बिना हो-हल्ले के रहने से अगर असुविधा होती है तो हम लोगों के घर के नजदीक ही कोई एक छोटा-सा फ्लैट किराए पर लेकर तुम दोनों बाप-बेटी वहाँ पर रहो, हम लोग देखभाल करते रहेंगे। लेकिन यह तो ठीक नहीं है।"

कोई युक्तिसंगत जवाब न सूझ पाने से नीता बोली थी, "आजकल फ्लैट भी तो बड़ी मुश्किल से मिलते हैं।"

मायालता ने मुँह टेढ़ा करके कहा था, "अहा तुम्हारी सुचिन्ता बुआ के घर के अलावा तो कलकत्ते में कहीं और मकान ही नहीं है।"

विवश होकर नीता को कहना पड़ा था, "ठीक है, डॉक्टर से पूछ कर देखूँगी। अगर वे कहेंगे तो—"

उस समय तो यह बात यूँ ही कही गई थी। लेकिन इस समय नीता काफी गहराई से सोच रही थी। सुचिन्ता की कष्टकर अवस्था को देखकर इसे और शिद्दत से महसूस कर रही थी।

हाँ, अपने दोनों हाथों से सुशोभन ने सुचिन्ता को जकड़ लिया था। जिस समय मायालता ने वीरदर्प से कहा था, "मैं अकेली लौटने वाली नहीं हूँ, तुम्हें अपने साथ लेकर ही जाऊँगी।"

सुशोभन मारे भय के आर्तनाद करते हुए मायालता, सुमोहन, नीता और निरंजन सभी के सामने ही सुचिन्ता का आश्रय प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे थे।

सुचिन्ता अविचलित खड़ी थी।

वे जैसे जड़ हो गयी थीं।

अचानक पत्थर बन जाने पर आदमी जैसा हो जाता है वैसे ही और पत्थर की यह मूर्ति जैसी अविचलित रहती है, ठीक वैसे ही वह भी हो गयी थीं।

लेकिन उनके अन्तर में व्यथा का जो समुद्र हिलोरें ले रहा था क्या सुचिन्ता की आँखों में वह नजर नहीं आ रहा था ?

ऐसा न होता तो पुतलियों की नीली-शिराएँ वैसी घटक लाल-स्यों हो गयी होतीं ? ऐसा क्यों लगता था कि जैसे वे शिराएँ अभी-अ

सुचिन्ता के अन्तर्मन से एक दुःसह यंत्रणा की चीख बाहर निकलने के लिए अकुला रही थी सिर्फ यही नहीं उनके सर्वाङ्ग और हर रोमकूप से यह चीख बाहर निकलने को तत्पर थी। इस चीख को सुचिन्ता ने अपनी दोनों आँखों में कैद करके पकड़ रखा था।

नीता ने वे आँखें देखी थीं।

वह इसीलिए इतना सोच-विचार कर रही थी।

सोच रही थी कि और सुविधा माँगने से सुचिन्ता की क्या हालत होगी? नीता को और सुविधा माँगने का अधिकार भी क्या था?

सुचिन्ता तो समाज के बंधनों से अनुशासित थी। उसी समाज के, जिस समाज में मायालता रहती थीं।

सुचिन्ता अपनी आँखों के सामने एक किताब खोलकर बैठी हुई थीं। नीता ने नजदीक आकर कहा, "बुआ जी, किताब क्या बहुत रोचक है।"

सुचिन्ता चौंककर बोलीं, "कहाँ, नहीं तो? क्यों?"

"कुछ बातें करनी थीं।"

"कहो।"

"कह रही थी, आप पर तो हम लोगों ने काफी अत्याचार किया, अब मैं सोचती हूँ कि पिता जी को लेकर कहीं अन्यत्र चले जाना ही शायद अच्छा होगा।"

सुचिन्ता आँखें ऊपर उठाकर बोलीं, "यह अच्छा लगने वाली बात किस पद के लिए कह रही हो?"

"शायद सभी के लिए ठीक होगा।"

सुचिन्ता ने आहिस्ते से झल्लाते हुए कहा, "हाँ, तुम्हारे पिता को अपने नजदीक ले जाकर तुम्हारी ताई की गृहस्थी का जरूर कुछ भला हो सकता है।"

नीता को सुचिन्ता से ठीक इस तरह के उत्तर की आशा नहीं थी। दुविधा में पड़ी हुई बोली, "इसे मैं बखूबी समझती हूँ। लेकिन आपके कष्ट को भी मैं अपनी आँखों से देख रही हूँ। ताई जी आदि को जब पता चल गया है तो वे लोग अकसर ही यहाँ आकर इस तरह का तमाशा खड़ा करेंगे।"

सुचिन्ता ने स्थिर स्वर में कहा, "तमाशा खड़ा करने दो। इससे तो उनकी वास्तविकता का पता चल जाएगा।"

नीता कातर होकर बोली, "बुआ, ऐसा आप नाराज होकर कह रही हैं।"

"नाराजगी" सुचिन्ता मुस्करायीं! मुस्कराकर ही बोलीं, नहीं मैं बिल्कुल नाराज-वाराज नहीं हुई हूँ।"

"यह आपका बड़प्पन है। इसके अलावा सोचा था लेकिन इसे रहने दीजिए। मैं समझ पा रही हूँ कि इतनी लोक लज्जा का भार वहन करना कोई आसान

या जीवन भर के संचित अमृत से भरे जीवन-पात्र को कहीं संसार के गुड़ के उपयोग के लिए तो कहीं खर्च न करना पड़ेगा, कहीं यही सोचकर तो परेशान नहीं हो रही थी। सोच रही थीं, सोचकर परेशान हो रही थी कि क्या अलौकिक को लौकिक बंधनों के बीच बांध लेने जैसी स्थूलता और कुछ हो सकती है? सुशोभन सुचिन्ता के समधी बनें, भला इससे अधिक कुत्सित और क्या हो सकता है।

इसीलिए नीता के बारे में इस समाचार ने उन्हें प्रफुल्लित कर दिया था।

ऐसा जाने क्या घटित हुआ था जिसे न सुचिन्ता जानती थी और न नीता ही, सिर्फ इसी दिन से सुचिन्ता पहले की तुलना में कहीं अधिक शांत और स्थिर हो गयी थीं, अधिक सहज भी हुई थीं। सागरमय के बारे में वे अधिक कुतूहली भी हुई थीं।

सागरमय के बारे में सुचिन्ता जानती थी इसीलिए नीता कह सकी थी, "सागर के लौटने से भरोसा पाऊँगी, सहायता पाऊँगी।"

लेकिन आज सुचिन्ता ने इस भरोसे वाली बात को तरजीह नहीं दी।

नीता को स्तंभित करते हुए बोलीं, "आठ महीने बाद जो होगा, उसे सोच कर तो इस समय का काम छोड़ा नहीं जा सकता। इस समय सुशोभन भला किसके भरोसे दिल्ली जाएँगे।"

नीता आश्चर्यचकित होकर बोली, "लेकिन पिताजी तो पहले भी दिल्ली में ही थे। उस समय वे किसके भरोसे पर थे? उस समय तो हालत और अधिक खराब थी।"

सुचिन्ता दृढ़ स्वर में बोली थीं, "वैसी हालत को पुनः लौटाने से लाभ क्या? फिर यहाँ चिकित्सा भी चल रही है। अभी तो नये इंजेक्शन की शुरुआत ही नहीं हुई है। मैं इस समय सुशोभन को ले जाने की राय नहीं दे सकती।"

क्या सुचिन्ता अपने अधिकारों को विस्तृत कर रही थीं?

क्या सुचिन्ता लज्जा के आघात-प्रत्याघातों से कहीं अधिक दृढ़ हो गयी थीं?

या लगातार एक पागल के सम्पर्क में रहने के कारण वे भी पागल हो गयी थीं?

नीता को सुचिन्ता का यह रूप देखकर डर लगता था। इसीलिए अचानक अवरुद्ध कंठ से कह पड़ी, "अब अगर मुझे यहाँ अच्छा न लगे?"

"तो क्या दुनिया का हर काम किसी के अच्छा लगने न लगने पर ही निर्भर करता है?" सुचिन्ता ने भावशून्य लहजे में कहा।

नीता थोड़ा मौन रहकर बोली, "लेकिन मैं तो आपका मुँह देखकर ही—"

नीता अपनी बात पूरी भी नहीं कर पायी थी कि सुचिन्ता तीखे गले से बोल उठी, "मुँह देखकर? मेरा मुँह देखने आयी हो? लेकिन मुझे इसकी जरूरत

नहीं है नीता। मैंने अपना रास्ता चुन लिया है। सुशोभन को ठीक करके ही रहूँगी, यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

."मैं भी तो यही प्रतिज्ञा करके यहाँ आयी थी बुआ—" नीता बुझे हुए स्वर में बोली।"

"बीच-बीच में लगता भी है कि पिताजी स्वस्थ हो रहे हैं, लेकिन फिर तो सब गड़बड़ा जा रहा है। और इसके लिए आपको जैसा मूल्य चुकाना पड़ रहा है—"

सुचिन्ता शान्त गले से बोली, "मूल्य कुछ तो चुकाना ही होगा। दुनिया में कौन-सी वस्तु यूं ही मिलती है ? लेकिन हर समय हम लोग किस चीज का कितना मूल्य है इसका ठीक अदाजा नहीं लगा पाते। एक संकटपूर्ण परीक्षा में फँसने पर ही वास्तविक मूल्य की पहचान हो पाती है। ऐसी ही एक परीक्षा की घड़ी तब आयी थी। तुमसे झूठ नहीं कहूँगी नीता, एक बार तो आँखों के सामने अँधेरा ही छा गया था, जिन हाथों ने व्याकुल होकर मुझे पकड़कर आश्रय ढूँढना चाहा था उसे एक बार तो धक्का मारकर हटा देने के लिए उद्यत हो गयी थी, लेकिन यह भावना क्षणांश के लिए ही आयी थी। फिर तो झूठी लज्जा का पर्दा गिर गया और हक़ीक़त को पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई।"

नीता रुकते-अँटकते हुए बोली, "अगर उस समय आपने धक्का मारकर हटा दिया होता तो उस धक्के में इतने दिनों की सारी मेहनत धूल में मिल गयी होती। पिताजी के पुनः स्वस्थ हो पाने की सभावना हमेशा के लिए खत्म हो जाती। इतने बड़े मानसिक आघात से—"

"हाँ, ठीक यही बात मेरे दिमाग में भी आयी थी। उस घड़ी में अपनी जान बचाने के लिए नाव से किसी दूसरे आदमी को पानी में फेंक देने जैसी ही निष्ठुर स्वार्थपरता मुझे लगी थी। असल में हम लोग जिस चीज का जो भी नाम दें, उसके मूल में यही स्वार्थपरता रहती है। इसके अलावा और कुछ नहीं। मैं क्यों समाज विरोधी काम नहीं कर पाती हूँ, क्या समाज से बहुत लगाव है इसलिए ? ऐसा नहीं है नीता, अपने से बहुत लगाव है इसलिए नहीं कर पाती। इसे करने से मेरी निन्दा होगी, उसे करने से मेरी निन्दा होगी, यही सोचकर तो हम लोग खामोश रहते हैं।"

कुछ देर खामोशी के बाद नीता एक गहरी साँस लेकर बोली, "फिर भी क्या लगता है, जानती है बुआ, कि दिल्ली लौट जाने में ही भला होगा। अब अगर श्यामापुकुर से वे लोग हमेशा ही यहाँ आते रहे तो पिताजी की क्या हालत होगी, यह नहीं समझ पा रही हूँ। सुबह उनके उस तरह भयभीत हो जाने के बाद से अब वे सो ही रहे हैं।"

"नींद लगना तो अच्छी बात है। डॉक्टर तो नींद की दवाई देते है।"

"वह अलग वात है। यह दिमागी थकावट है।"

"मैं सुविमल दा आदि को समझा दूँगी।"

नीता गहरी साँस लेकर वोली, "अच्छे भले थे आप लोग, बीच में मैं धूम-केतु की तरह आकर उपस्थित हो गयी और सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया।"

"खुद को निमित्त मानकर कष्ट पाने की जरूरत नहीं है नीता। जो होना है होकर रहता है। भाग्य में जो लिखा होता है, वही होता है।"

"नींद से उठने पर पिताजी क्या खाएँगे?"

इन दिनों सुशोभन की सेवा-शुश्रूषा का अधिकांश भाग सुचिन्ता के हाथ में चला गया था। यह कैसे हुआ नहीं मालूम। धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके ही यह हुआ था। इसीलिए नीता को अपने पिता के भोजन की वात सुचिन्ता से पूछने की जरूरत हुई थी।

"फल-वल तो इन दिनों खा नहीं रहे हैं, इसलिए आज एक देशी भोजन उनके लिए वना रखा है।"

"देशी भोजन।"

"हाँ सरू चाकली और चसी की खीर।"

"अरे, आप यह सव वनाना जानती हैं?" नीता खुश होकर वोली, "पहले पिताजी जव स्वस्थ थे तव इन सव व्यंजनों की चर्चा करते थे। कहते थे कि उनकी बुआ यह सव वहुत अच्छा वनाती थीं। एक वार पूजा की छुट्टियों में श्यामापुकुर वाले मकान में हम लोग आये थे। पिताजी ने कहा था, "भाभी एक वार बुआ की तरह यह सव व्यंजन वनाओ तो जरा।" ताई हँसकर टाल गयी थीं। वोली थीं, "वह सव खाना खेत-खलिहान में घूमने वाले गँवई-गाँव के लड़के को अच्छा लगता रहा होगा, अव केक-पुडिंग खाने वाले साहव को भला वह सव अच्छा लगेगा?"

"पिताजी के लड़कपन से तो आप परिचित ही हैं। इस पर भी वे वोले, "तुम वनाओ तो। देखो चखता है कि नहीं। जिस सामान की जरूरत हो वता दो, मँगवा देता हूँ।" ताई वोली, "देश छोड़ने के वाद वह सव वनना एक दम वंद हो गया है। अव भूल गयी हूँ।" मेरा मन हुआ कि मैं इसे सीखकर पिताजी को खिला दूं। लेकिन वताइए मैं सीखती किससे? आज आपने खुद ही—बुआ मैं आपसे वनाना सीख लूंगी।"

"पहले देखो तुम्हारे पिता को अच्छा लगता भी है या नहीं।" सुचिन्ता थोड़ा मुस्कराकर वोलीं, "असल में वहुत सारी चीजों की हम लोग कल्पना करके उसे मन ही मन सँजोए रहते हैं। एक वार पसंद आने पर उसे स्मृति के पात्र में रखकर परितृप्ति के रस में उसे डुवो रखते हैं मन ही मन सोचते हैं कि अव ऐसा नहीं होगा। वह जव तक उस पात्र में वंद रहता है तव तक विल्कुल वैसा

ही बना रहता है। रोमांचमय रहता है, उसको उस पात्र से निकालकर अगर नये सिरे से उसके उपभोग की इच्छा होती है तो वह विकृत हो जाता है, एकदम नष्ट हो जाता है। बचपन की स्मृति भी ऐसी ही चीज होती है। हालांकि सबके लिए समान नहीं होता। असल में उपभोग करना भी एक कला है और जो उस कला से परिचित होता है वह सारी चीजों को सुन्दर बना सकता है।"

बातें हो ही रही थीं कि अचानक उसे रोक देना पड़ा। कमरे से एक भयभीत स्वर सुनायी पड़ा, "नीता, नीता!"

नीता और सुचिन्ता दोनों ही तुरन्त उठकर भीतर चली गयी।

वहाँ जाकर देखा सुशोभन सिर तक एक चादर ओढ़कर बैठे हुए थे। आँखों में पहले की तरह ही एक व्याकुल असहाय भाव बना हुआ था; वैसी दृष्टि अब उनमें नजर ही नहीं आती थी।

"क्या हुआ?"

सुचिन्ता ने नजदीक जाकर सहज भाव से पूछ लिया।

"वे लोग गये?" सुशोभन ने फुसफुसाकर पूछा।

"कौन लोग? कौन लोग गये?"

"वहीं जो मुझे पकड़ने आए हुए थे।"

शायद नीता कुछ कहने जा रही थी, लेकिन उसके पहले ही सुचिन्ता खिलखिलाकर हँसने लगी "तुम्हें पकड़ने कौन आया था? बड़े आश्चर्य की बात है सुशोभन, तुम्हारी इतनी उम्र हो गई लेकिन तुमने अभी मजाक समझना नहीं सीखा?"

"मजाक?" जैसे सुशोभन चकित होकर देखने लगे।

"बिल्कुल। वे तुम्हारी भाभी नहीं थी? क्या भाभियाँ मजाक नहीं करती हैं? नीता से पूछकर देखो। इतनी छोटी लड़की है, लेकिन वह भी इस बात को समझती है।"

सुशोभन ने धीरे से अपनी देह पर से चादर को हटा दिया। बोले, "नीता सुचिन्ता तो ठीक बात ही कहती है। है न?"

"हाँ पिताजी, बुआजी हमेशा सही बातें ही कहती हैं।"

"मतलब वे लोग मुझे नहीं ले जाएँगे?"

"बिल्कुल नहीं।"

"वे लोग चले गये?"

"वह तो कब के चले गये।"

"नाराज होकर तो नहीं गये?" सुशोभन की आँखों में फिर एक किस्म की व्याकुलता फूट पड़ी।

"क्यों? नाराज भला क्यों होंगे?" सुचिन्ता बोली, "देखा नहीं, मुझसे वह

कितनी बातें कर रही थी ?"

"नहीं, उन लोगों की बड़ी बहू तो तुम्हें डाँट रही थीं।"

"क्या कहते हो सुशोभन। उन लोगों की बड़ी बहू का तो बातें करने का ढङ्ग भी वैसा ही है। तुम्हें याद नहीं है ? सभी से चिल्ला-चिल्लाकर बातें करती है। मोहन ने मुझे डाँटा थोड़े ही था ?"

"मोहन। मोहन ! मेरा वह भाई ?" सुशोभन चीख उठे, "वह अच्छा लड़का है।"

"वही तो कह रही हूँ। वे सभी अच्छे लोग हैं।"

"नहीं, बड़ी बहू अच्छी नहीं है। वह मुझे पकड़कर ले जाएगी।"

अब सुचिन्ता गंभीर हो गयीं। गंभीर मगर शांतचित्त से बोलीं, "सुशोभन तुम मेरी बातों पर भरोसा क्यों नहीं कर रहे हो ? मैं कह रही हूँ, कोई तुम्हें मेरे पास से पकड़ कर नहीं ले जा सकता।"

"नहीं ले जा सकता ? कोई नहीं ले जा सकेगा ?"

"नहीं, कोई नहीं ले सकेगा—मेरी बातों पर भरोसा करो।" उन्होंने आहिस्ते से सुशोभन की पीठ पर अपना हाथ रखकर और अधिक गंभीर होकर कहा, "सिर्फ अगर तुम खुद—"

लेकिन वह मीठी बात उस उन्माद ग्रस्त पागल के कानों में नहीं गयीं।

वे अचानक प्रसन्न होकर बोल उठे, "नीता सुन लिया न ?"

"सुना पिताजी।"

"ओह, बेकार ही मैं इतना डर गया था। मुझे क्या पता था कि यह सब मजाक था, सिर्फ मजाक था। जानता हूँ कि सुचिन्ता के आगे किसी की दाल नहीं गल सकती। सुचिन्ता, मुझे भूख लगी है। बहुत देर से भूख लगी है, लेकिन तुम लोगों को पुकार नहीं पा रहा था। चादर में अपने को छिपाकर बैठा हुआ था।"

आतंक की छाया हटते ही सुशोभन बहुत अधिक उत्फुल्ल हो उठे और भोजन का आयोजन देखते ही वे और अधिक खुश हो गये। चीख कर मेज पीट-कर एकदम शोर मचाने लगे, "नीता जल्दी आओ, आकर देखो। और सुचिन्ता के लड़के कहाँ हैं ? वे लोग कहाँ गये ? उन लोगों ने कभी यह सब देखा है ?"

यह हमारे दिनाजपुर की चीज है। इसे सिर्फ मैं और सुचिन्ता ही जानते हैं। अच्छा सुचिन्ता, इसे और कौन-कौन जानता था ?"

"क्यों, तुम्हारी बुआ, ताई और दादी, सभी तो।"

"ठीक, ठीक। यू आर राइट !" अत्यधिक उत्साह में भरकर सुशोभन खड़े हो गये, "सुचिन्ता सब जानती है। इसीलिए तो मैं सुचिन्ता को इतना प्यार करता हूँ।"

"और मुझे प्यार नहीं करते पिताजी, नीता मजा लेने के उद्देश्य से बोली।

सुशोभन बोले, "यह क्या। तू भी कैसी बातें करती है नीता? असल में तू समझ नहीं पा रही है, तू तो—मतलब—"

"अच्छा पिताजी, मैं समझ गयी हूँ। अब तुम खाओ। अभी तो कह रहे थे कि बड़ी भूख लगी है।"

"भूख तो लगी है। देखो कितना खाता हूँ।" बैठकर एक सरू पाकली अपने मुँह में ठूँसकर गोल-गोल मुँह से अस्पष्ट आवाज में बोले, "एक्जैक्टली। अविकल। हूबहू एकदम वैसा ही। सुचिन्ता देखो, मैं अब बिल्कुल भूल नहीं रहा हूँ—सब बातें याद रख पा रहा हूँ। वह दादी, जो मुझे—जो मुझे वह किस नाम से—"

"भला 'भानू' कहकर दादी तुम्हें पुकारती थी।"

"ओह, तुमने क्यों बता दिया सुचिन्ता? मैं तो कहता ही। तुम चुप रहो, देखो मैं सब ठीक-ठीक कहता हूँ कि नहीं। दादी, दादी जो मुझे—जो मुझे 'भानू' कहकर बुलाती थी, वे छत पर खड़ी होकर पुकारती थी, "भानू! भानू! *मोहन को साथ लेकर एक बार चला आ, पीठा-पूली तैयार किया है।*" सुनते ही उछलते-कूदते उनके पास पहुँच जाता, मोहन को बुलाने की भी फुरसत नहीं रहती थी। लेकिन नीता मोहन कौन है?"

"वह छोटे काका हैं? तुम्हारे छोटे भाई हैं न?"

"हाँ हाँ। सुचिन्ता के जैसे ढेरों लड़के हैं, वैसे ही मेरे दिनाजपुर के मकान में ढेरों लड़के रहते थे। लेकिन मैं अभी क्या कह रहा था?"

सुचिन्ता थोड़ा जोर देते हुए बोली, "सोचो जरा, किसकी बातें हो रही थीं? अभी तो कह रहे थे कि सब याद आ रहा है।"

"याद तो आ रहा है लेकिन नीता जाने कहाँ पर—"

नीता हँस पड़ी। बोली, "वहीं जहाँ पर तुम अपने छोटे भाई को छोड़कर पेटू की तरह दौड़कर पीठा-पूली खाने के लिए जा रहे थे।"

सुशोभन ठहाका मारकर हँस पड़े, हँसी ऐसी कि रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। बहुत देर बाद हँसी के मारे लाल हो गये चेहरे से बोले, "हाँ मैं जरा पेटू रहा हूँ। *पेट भरकर भात नहीं खाता था, बस बुआ से कहता लड्डू दो,* चिवड़ा-पट्टी दो, मतलब हर समय दो-दो की रट लगाए रहता। और बुआ कहती, "बाप रे! अच्छा यह लड़का हुआ है।"

"अच्छा! अच्छा क्या है पिताजी?"

नीता हँसकर लोट-पोट हो गयी।

"ओफ, अच्छा उनका तकिया कलाम था। अच्छा। *गाँव-जवार की औरतें*

ऐसा ही कहती थीं। घर में मैं इतना अधिक खाता था न, फिर दादी, जो मुझे भानू कहती थीं, उनके पास जाकर मैं कितनी शैतानी करता था।"

नीता बोली, "वाह, पिताजी तुम तो बहुत बढ़िया तरीके से कहानी सुना रहे हो।"

"क्यों नहीं सुनाऊँगा। देखो अब मैं कुछ भी नहीं भूल रहा हूँ।"

"अब और किसी दिन भूलना मत, मैं कहे देती हूँ।"

"अच्छा, अच्छा। लेकिन सुचिन्ता तुम बात क्यों नहीं कर रही हो?"

"बात क्यों करूँगी, सुन रही हूँ।"

"लेकिन उस समय तो तुम बातें ही करती रहती थी। जब मैं वही दादी के पास जाता था। दादी कहतीं, "अब तू थोड़ा खामोश रह चिन्ते, अपनी बातों को थोड़ा लगाम दे।" ऐसा कहती थीं न सुचिन्ता? कहती थी न, "लड़की तो नहीं, जैसे ग्रामोफोन हो। हरदम चाभी भरी रहती है।"

"बिल्कुल कहती थीं। आश्चर्य है, तुमसे तो बिल्कुल गलती नहीं हो रही है।"

"देखो सुचिन्ता, जाने कब तुमने मेरी पीठ पर हाथ रखा था।" सुशोभन परेशान होकर बोले।

सुचिन्ता लज्जा के कारण अपना चेहरा दूसरी ओर करके बोलीं, "अभी तो पीठा खाने की बातें हो रही थीं।"

"वह तो हो ही रही थी। लेकिन जब तुमने मेरी पीठ पर हाथ रखा तब ऐसा लगा जैसे जाने कहाँ का कोई बंद दरवाजा खुल गया, कोई एक उलझी हुई गांठ सुलझ गयी। बताओ तो जरा ऐसा क्यों हुआ?"

सुचिन्ता शांत-सहज बोलीं, "ऐसा ही होता है। ऐसा मेरी इच्छाशक्ति के जोर से हुआ।"

"तब इतने दिनों तक तुमने उस शक्ति का इस्तेमाल क्यों नहीं किया सुचिन्ता? क्यों अब तक तुमने मेरी पीठ पर अपना हाथ नहीं रखा था? तुम तो जानती थीं कि दादी की पुकार पर मैं सिर्फ लड्डू और पीठा खाने के लिए ही नहीं दौड़कर जाता था। जाता था सिर्फ तुम्हारे लिए। तुम्हें बिना देखे मैं रह नहीं पाता था। बेचैन हो जाता था। यह सभी कुछ तो तुम जानती हो।"

सुचिन्ता बोली, "गलती हो गयी थी सुशोभन। भूल से यह गलती हो गयी थी। अब याद रखूंगी। अब वही करूँगी जो उचित समझूंगी।"

उन्होंने सुशोभन की पीठ पर आहिस्ते से अपना हाथ रख दिया।

यौवन का उन्माद जिस स्पर्श में न हो वह क्या व्यर्थ होता है?

क्या मां के हाथों का स्पर्श अन्तर्मन के गहनतम स्तरों तक नहीं पहुँचता? प्रिया में भी तो वही मां की ममता निहित रहती है।

तीन-चार दिनों के बाद सुविमल आये। साथ में अशोका भी थी।

वे लोग चकित रह गये। उस दिन सुशोभन बहुत ही सहज रहे। उनकी इस सहजता को देखकर सिर्फ वे ही लोग चकित नहीं हुए, वरन् सुचिन्ता और नीता भी चकित रह गयी।

सुविमल के सामने आकर बैठते ही सुशोभन थोड़ी देर तक देखकर बोले, "वे लोग जिन्हें बड़े भैया कहते हैं, वही हैं न ?"

सुविमल हँसकर बोले, "सिर्फ वे क्यों, तू भी तो कहता है।"

"हाँ-हाँ, मैं भी तो कहता हूँ। ठीक है न नीता ?"

"हाँ पिताजी।"

"बड़े भैया तुम दुबले हो गये हो।"

सुशोभन ने कहा।

सुविमल बोले, "दुबला तो हूँगा ही। बूढ़ा नहीं हो रहा हूँ ?"

"बूढ़े क्यों होंगे ?" सुशोभन असंतुष्ट हुए, "बूढ़ा होने की क्या जरूरत है। सुचिन्ता भी यही कहती रहती है। एक दिन मैंने उसे खूब डाँटा, तब से वह डर गयी है। अब नहीं कहती।"

आज सुचिन्ता को दूर-दूर रहने की जरूरत नहीं महसूस हुई, न वे अप्रतिम ही हुईं। सहज भाव से बोली, "अब तुम बड़े भैया को भी कसके डाँट लगाओ। वे ठीक हो जाएँगे।"

"नहीं-नहीं बड़े भैया को नहीं डाँटते। ऐसा उचित नहीं होगा।" सुशोभन ने सिर हिलाया। इसके बाद अचानक बोले, "वह इतना खामोश क्यों बैठा है ?"

यह बात अशोका को देखकर कही गयी थी।

नीता हँसते हुए बोली, "वह कौन ?"

सुशोभन सभी को चकित करते हुए बोले, "तूने क्या नीता मुझे पागल समझ रखा है ? वह कौन है, क्या मैं नहीं जानता ? वह तो छोटी बहू है। बहुत अच्छी लड़की है, बहुत अच्छी लड़की। समझी सुचिन्ता, उनके घर के बड़ी बहू जैसी नहीं।"

यह सुनकर अशोका, सुचिन्ता, नीता सभी का चेहरा आरक्त हो गया। सिर्फ सुविमल निर्विकार रहे। बल्कि उनके चेहरे पर मुस्कराने का आभास ही मिला।

सुचिन्ता भी मुस्कराकर बोली, "बातचीत मे एकदम वेपरवाह हैं।"

सुविमल बोले, "वह तो होगा ही। हाँ, परिवार मे एक-आध वेपरवाह पागल-वागल रहने से लगता है परिवार के सभी व्यक्तियों का असली चेहरा सामने आ जाता है। ठीक है न सु-सुचिन्ता। अच्छा, तुम्हे बुलाने का एक और नाम था न ?"

सुचिन्ता मुस्करायीं, "सिर्फ 'चिता' कहकर सभी बुलाते थे 'सु' को छोड़ देते थे, शायद लड़की के स्वभाव-गुण के कारण ही। आपकी बुआजी तो 'दुश्चिता' कहकर बुलाती थीं।"

"ठीक-ठीक।" सुविमल हँसने लगे "वैसा ही कुछ मुझे याद आ रहा था।"

"बुआजी कहती थीं, लड़की तो नहीं एक डाकू है। उसे देखते ही मुझे दुश्चिता होने लगती है।"

नीता हँसते हुए बोली, "सचमुच बुआजी, आप ऐसी ही थीं?"

"सारे गवाह तुम्हारे सामने ही हैं, पूछकर देख लो।"

"लेकिन अब आपको देखकर यकीन नहीं आता।"

"तो उस 'मैं' के साथ आज के इस 'मैं' की क्या तुलना हो सकती है। वह सुचिन्ता तो जाने कब मर गयी। जन्म-जन्मांतरवाद तुम लोग नहीं मानते, लेकिन मैं मानती हूँ। जाने कितनी जन्म-मृत्युओं को पार करते हुए यहाँ तक आकर पहुँची हूँ। आगे और भी जाने कितने जन्म और मरण मुझे झेलने हैं। सिर्फ लोग अपनी सुविधा के लिए कहते हैं, "यह तो वही सुचिन्ता है।"

सुशोभन असुविधा और खीझ भरे स्वर में कह उठे, "मरने की बात क्यों सुचिन्ता, मरने की बात क्यों? यही तुम्हारी सबसे बड़ी कमी है। देखो, ये लोग तो इस तरह की बातें नहीं कर रहे हैं।"

"वे लोग अच्छे हैं।" सुचिन्ता हँस पड़ीं।

"और क्या तुम बुरी हो? जरा देखूं तो कौन ऐसा कहता है?"

"तुम्हीं तो कह रहे हो।"

"आश्चर्य है। बुरा मैं क्यों कहूँगा? यह छोटी बहू तो यहाँ है, वह झूठ नहीं बोलेगी, वह कह दे कि मैंने तुम्हें बुरा कहा है।"

अचानक अशोका बोल पड़ी, "मैं झूठ नहीं कह सकती ऐसा आपसे किसने कह दिया मँझले भैया?"

"और कौन कहेगा?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "मैं तुम्हें नहीं जानता क्या?"

"लेकिन...लेकिन यह मँझले भैया कौन है छोटी बहू?"

"वाह, आप ही तो हैं मँझले भैया।"

"मैं मँझला भैया हूँ। मैं मँझला भैया हूँ। अब तुम बिलकुल गलत कह रही हो छोटी बहू। मँझला भैया तो उनके घर में, वही बड़ी बहू के घर में रहता है।"

सुविमल थोड़े कौतूहल से बोल उठे, "उस मकान का मँझला भैया क्या करता है?"

"क्या करता है ? क्या करता है ?" अचानक सुशोभन जैसे हताश होकर मुर्झा गये। बोले, "नीता जरा बताना तो क्या करता है ?"

नीता ने गंभीरता से कहा, "मैं क्यों कहूँगी। बता देने से तुम गुस्सा हो जाते हो। तुम खुद ही सोचो न।"

"तब मैं यहाँ से जाता हूँ। जरा अकेले में जाकर सोचूँगा।"

"उहूँ। जाने नही पाओगे। हम लोग क्या कही जाकर सोचते हैं ? यहीं पर सोचो।"

सुविमल बड़ी धीमी आवाज मे बोले, "रहने दो, अनावश्यक रूप से दिमाग पर जोर देने से—"

नीता भी वैसे ही स्वर मे बोली, "नही ताऊजी। डॉक्टर ने कोशिश करवाने के लिए कहा है। कहा था जैसे पानी पर सिवार की पर्त पड जाती है ठीक उसी तरह ऐसी बीमारी में ब्रेन के ऊपर विस्मरण की एक पर्त पड़ जाती है, उसको जोर देकर हटाने की जरूरत है। फिर ज्यादा दिनो तक आलस्य में पड़े रहने से मन मे एक पलायन वृत्ति जन्म ले लेती है, तब व्यक्ति मेहनत से दूर भागेगा, इसलिए मेहनत के लिए इस तरह से जोर देने की जरूरत है। हालांकि ऐसा उन्होंने हाल ही मे कहा है।"

"पहले से कुछ इम्प्रूव हुआ है ?"

"बहुत। आकाश-पाताल का अन्तर आया है। यहाँ तक कि उस दिन से भी; जिस दिन ताई जी आयी थी—"

सुशोभन खीझकर बोले, "तुम लोग इतने गुपचुप क्या बातें कर रहे हो, कहो तो ? मुझे डर नही लगता ?"

"डर ? डर क्यों लगेगा ?"

"वाह, डरूँगा नहीं। तुम लोग गुपचुप बातें करोगे—"

सुचिन्ता बोली, "तो तुम उन लोगों की बात नहीं मान रहे हैं। उनके मँझले भैया क्या करते हैं यह नही बता रहे हो—"

"क्यों नहीं कहूँगा ? कह तो रहा हूँ—उस [illegible]
मँझले भैया गाड़ी पर चढ़कर घूमने जाते थे, और और—"

अशोका अपनी बातों पर बल देते हुए बोली, "और [illegible]
देते थे, उनके लिए खिलौने खरीदते थे, उन्हें लेकर [illegible]"

"बिल्कुल ठीक। यू आर राइट। छोटी बहू, [illegible]
के बारे में सुनना मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है।"

"लेकिन आप ही तो उस समय [illegible]"

"मैं मँझले भैया होता था ?"

"बिल्कुल होते थे। गाड़ी से उतरकर कहते थे, छोटी बहू तुम्हारे लड़के तो बिल्कुल डाकू हैं, एकदम डाकू।"

अचानक सुशोभन मेज पर मुक्के का प्रहार करके उच्छ्‌वसित कंठ से चीख पड़े, "मैं जाऊँगा।"

"जाओगे? कहाँ जाओगे पिताजी?"

"और कहाँ? उनके मकान में? उन लड़कों से मैं कितना प्यार करता हूँ। नीता मेरे धुले हुए कपड़े कहाँ हैं? जरा जल्दी देना। छोटी-बहू आओ चलें—" अचानक सुशोभन अशोका के काफी निकट सरककर फुसफुसाते हुए बोले, 'चलो भाग चलें। नहीं तो ये लोग जाने नहीं देंगे।"

"अच्छा चले जाना—" सुचिन्ता बोलीं, "पहले इन्हें चाय पीने दो, थोड़ी देर बैठकर बातचीत करने दो।"

"नहीं नहीं "अचानक सुशोभन चीख पड़े, "सुचिन्ता तुम्हारा इरादा अच्छा नहीं है। तुम मुझे उनके साथ जाने नहीं देना चाहती हो। लेकिन मैं परवाह नहीं करता, मैं जरूर जाऊँगा। नीता टैक्सी बुलवाओ, जल्दी गाड़ी मँगवाने को कहो, देर करने से परेशानी बढ़ेगी।" कहते हुए उन्होंने फिर मेज पर मुक्के का जोरदार प्रहार किया।

सुविमल तुरंत बोले, "लेकिन शोभन उस मकान में तो बड़ी बहू रहती है। वह तुम्हें पकड़ ले जाएगी।"

"नहीं-नहीं।" सुशोभन और जोर से चीख उठे, "यह तो मजाक था। तुम मजाक भी नहीं समझते?"

अचानक चप्पलों में अपने पैर डालकर सुशोभन सीढ़ी से उतरने लगे।

"पिताजी इस समय तुम्हारे दवा का वक्त हो गया है, "नीता नजदीक जाकर कंधे पर हाथ रखते हुए बोली, "आज रहने दो। कल हम सभी लोग चलेंगे।"

"नहीं नहीं, मैं तुम लोगों की कोई भी बात नहीं सुनना चाहता—" सुशोभन ने अपनी लड़की का हाथ परे कर दिया, "कहाँ, किसी दिन तुम मुझे वहाँ ले गयी? तुम नहीं जानतीं कि उन बच्चों को मैं कितना चाहता हूँ।"

सुशोभन धम-धम करके उतरने लगे।

"मुसीबत हो गयी।" सुविमल बोले, "पहले तो देखकर ऐसा लगा था—

नीता बोली, "कब किस बात से क्या हो जाए कहना मुश्किल है लेकिन पिताजी तो उतर कर नीचे चले गए, बुआजी अब क्या होगा?"

सुचिन्ता उठ खड़ी हुई।

कुछ एक सीढ़ियाँ उतरकर वे दृढ़ स्वर में बोलीं, "तुम यहीं रहोगे, कहीं नहीं जाओगे।"

सुशोभन रुक गये।
बोले, "मैं यही रहूँगा ? और कहीं नहीं जाऊँगा ?"
"हाँ, मैं भी यही चाहती हूँ।"
"अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो फिर करने को क्या है। नीता गाड़ी को वापस लौटा दो।" कहकर सुशोभन धम-धम करके ऊपर चले आये, फिर बैठते हुए बोले, "इतनी जल्दी तुमसे गाडी लाने के लिए किसने कहा था नीता ? देख रही हो कि सुचिन्ता की बिल्कुल मर्जी नही है।"
मायालता लगभग रास्ते में ही खडी थी। सुविमल के लौटते ही बोली, "कहो छोटी देवरानी, तुम्हारी आस मिटी ?"
"बिल्कुल मिटी दीदी।"
अशोका बोली।
"वहाँ तो काफी समय लगा दिया, लगता है सुचिन्ता बाला ने खूब आव-भगत की होगी।"
"हाँ, कुछ किया तो था।"
"इसके बाद—"मुझे पकड़ने आए हैं" कहकर तुम्हारे मँझले भैया ने कोई नाटक नही खड़ा किया ?"
अपने दोनों जेठों को अशोका भैया कहती थी इसीलिए मौका पाते ही मायालता इस शब्द के प्रति व्यंग्य करने से नहीं चूकती थी।
"बड़े भैया तो साथ ही थे। वहाँ क्या बातें हुईं आप उन्हीं से पूछ लीजिए। मुझे तो अभी इन डाकुओं को जरा देखना है" कहकर अशोका मायालता के बगल से निकल गयी।
"देख लिया ?"
मायालता क्रोध और क्षोभ की अपनी मिली-जुली विशेष भंगिमा में बोली।
"बिल्कुल देखा।"
सुविमल ने जँभाई ली।
"हर समय ऐसी ही उदासीनता बरतती है।"
"बात मनवाने का मंत्र तुमने सीखा ही कहाँ बडी बहू ?"
"मन्त्र-तंत्र, टोना-टोटका सीखने की मुझे जरूरत नहीं है। यह मंत्र तुम लोगों की सुचिन्ता ही सीखे, जिनकी टोटका करके पर-पुरुष को अपने आँचल से बाँध रखने की प्रवृत्ति अभी बनी हुई है।"
सुविमल सूखी हँसी हँसते हुए बोले, "तो पर-पुरुष की प्रवृत्ति भले ही न हो लेकिन घर में भी तो एक—"
"हाँ वैसा ही तो मर्द है। आँचल में बाँध रखने लायक।"
"कौन आदमी कैसा है, इसका हिसाब क्या इतनी जल्दी लगता है बड़ी बहू ?

संभव है इसका सारे जीवन पता न चले। वैसे आँचल का सहारा मिलने पर क्या होता, यह कहना बड़ा मुश्किल है।"

"अब शुरू हुई वही पेंचवाली बातें। हे भगवान् अब मैं क्या कहूँ। इससे तो एक अपढ़ मूर्ख देहाती के साथ ब्याह हुआ होता तो कम से कम मन की दो बातें करके तो सुख पाती।" मायालता खीझकर बोलीं, "वहाँ जाकर तो तीन घंटे बिता आये। भाई को किस हाल में देखा, यही सुनूँ।"

"बहुत बढ़िया। देखकर, सच कहूँ, बड़ी ईर्ष्या हुई।"

"ईर्ष्या हुई ?"

"हुई तो।"

"पागल होने का मन हो रहा है ?"

मायालता की मुस्कराहट में कसैलापन था।

"बुरा क्या है ?" सुविमल भी व्यंग्यपूर्वक मुस्कराये।

"तो ऐसे पागल होने से काम नहीं चलेगा, प्रेम के कारण पागल बनो तभी तो सुख होगा।"

"तुमने ठीक ही कहा। मैं बेकार ही तुम्हें मूर्ख समझता था।"

"क्यों नहीं समझोगे ? अब बेकार की बात छोड़कर काम की बातें करो।"

"कहो।"

"मामला कुछ समझ में आया ? रुपया-पैसा सब सुचिन्ता के कब्जे में जाकर पड़ा है न—"

"अरे इस बात को तो पूछने का ध्यान ही नहीं आया। बड़ी भारी गलती हो गयी।"

"ठीक है, जितना हो सके मुझ पर व्यंग्य कर लो। बाद में समझोगे। सुचिन्ता की उतनी खातिर के पीछे जो बात है वह तुम लोग भले ही न समझो, मैं समझती हूँ। मँझले देवर जी की एक ही लड़की है, अगर उसको किसी तरह पटाकर घर की बहू बनाया जा सके तो मँझले देवर जी की सारी सम्पत्ति पर कब्जा जमाया जा सकता है। और तुम लोग मुँह बाकर इसे देखते रहना कि तुम लोगों के घर की लड़की कायस्थ सास की चरण-सेवा कर रही है।"

"यहीं तुमने गलत कहा बड़ी बहू। आज के युग में सेवा कोई नहीं करती। न सास की, न सास के लड़के की। यह सत्य अटल है।"

"खैर, चरण-सेवा नहीं करती तो ठीक है" मायालता नाराज हो गयीं, "कायस्थ दामाद पाकर तुम लोगों का मुँह तो उज्ज्वल हो ही जायेगा।"

"मुंह उज्ज्वल होने लायक घटना तो कभी-कभी ही घटती है।"

"अगर न हो तो इसके मतलब—। हाय मँझली बहू के कितने गहने थे— मँझले देवर जी के पास रुपयों की भी कमी नहीं है—देखती हूँ सभी कुछ खत्म

हो जायेगा, लेकिन इस तरह से कोई अपनी जात दे देगा, यही सोच रही हूँ। तो सुचिन्ता ने किसके साथ नीता का जोट बैठाया ? बड़े, मँझले या छोटे में से किसके साथ ? सुना है, लड़की तीनों ही के साथ रास रचा रही है।"

"ऐसी बात है ? इतनी खबर तुम्हें कहाँ से मिली ?"

"हूँ, बुद्धि रहने से माँगकर खाने की जरूरत नहीं पड़ती। घर की महरिन को मिठाई खाने के लिए एक रुपया देकर उससे खोद-खोदकर सारी बातें मालूम कर लीं।"

"बहुत खूब। तुम वकील क्यों नहीं हुई, यही सोचता हूँ। लेकिन तुम्हें पूछने का इतना समय कहाँ मिला ?"

"यही जानना चाहते हो तो—" मायालता मुस्करायी, "भाग्यवान का बोझ भगवान ढोता है। मैं गुस्से में वहाँ से निकल रही थी कि तभी महरिन को भी काम खत्म करके घर से बाहर निकलते हुए देखा। उसको इशारे से गाड़ी के नजदीक बुला लिया।"

सुविमल मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले, "अगर इतना ही मालूम कर लिया तो यह बड़े, मँझले, छोटे में से किसके साथ कैसी है इसका पता क्यों नहीं लगा लिया ?"

"समय कहाँ था ? उधर तो तुम्हारे छोटे भाई जल्दी मचा रहे थे। जीवन में स्वाधीनता का सुख मुझे मिला ही कहाँ ?"

"यह भाग्य ही समझो कि नहीं मिला। लेकिन इसे रहने दो—एक समाचार देकर तुम्हारे मन की उथल-पुथल का समाधान कर दूँ। सुचिन्ता का टोटका काम नहीं आया। नीता की शादी तय हो गयी है और बहुत पहले से ही तय हो चुकी है।"

"नीता की शादी ठीक हो गयी है और बहुत पहले ही तय हो चुकी है ?" मायालता ने अजब मशीनी तरीके से इसे दोहराया।

"हाँ।"

"कितने दिन हुए ?"

"यह नहीं जानता। सुना, तय हो गयी है बस इतना ही। [illegible] की बीमारी के कारण—"

"आखिर तुम क्या हो—पागल के घर की हवा खाकर [illegible] हो गये ? नीता की शादी तय हो गयी है और हम लोगों को [illegible]"

"हम लोगों को सूचना देने की जरूरत उन [illegible] होगी।"

"हूँ। लेकिन तय कहाँ हुआ ?"

"यह नहीं जानता।"

मायालता ने पूछा, "सब तय हो गया ?"

सुविमल ने कहा, "हाँ।"

लेकिन भाग्यविधाता यह सुनकर परोक्ष रूप से मुस्कराये थे, "अच्छा, यह बात है। सब तय हो गया है।"

हाय, भाग्यविधाता ने क्या कभी इस पर गौर किया है कि उनकी ऐसी मुस्कान प्राणियों पर कैसा कहर ढाती है। यह मुस्कान वज्र के रूप में, रुद्र के रूप में और आग के रूप में पहुँचती है। अकचकाया हुआ व्यक्ति मारे डर के स्तुति करता हुआ प्रकट में कहता है, "प्रभु तुम जो भी करते हो कल्याण के लिए करते हो।" लेकिन उसका मन अन्दर-ही-अन्दर विद्रोह करता रहता है, कल्याणकारी रूप का मुखौटा उतारकर चीख पड़ना चाहता है, "गलत है, यह सब एकदम गलत है।"

वह आसमान को चीरकर पूछना चाहता है, "क्यों, आखिर ऐसा क्यों ?"

दोनों हाथों से अपना दिल थामे हुए आज नीता भी उसी प्रश्न से आसमान को चीर डालना चाहती है—"क्यों, आखिर ऐसा क्यों ?" मुझ पर भाग्यविधाता की ऐसी निष्ठुरता क्यों ? वह क्यों इतना हिंस्र, क्यों इतना कुटिल है ? मैंने उसका क्या बिगाड़ा है ?"

यही सवाल अनगिनत लोग करते आये हैं।

अनन्तकाल से एक यही सवाल पूछा जाता रहा है।

लेकिन इस सवाल का जवाब कोई नहीं पाता।

आसमान की तरफ हाथ बढ़ाकर भिक्षाप्रार्थी की तरह लोग सहारा माँगते हैं, अपने थोड़े से सवालों का जवाब माँगते हैं। उस आसमान से जो सिर्फ सीमाहीन शून्य से बना है।

भाग्यविधाता के निष्ठुर दण्ड के रूप में उसे एक टेलीग्राम मिला।

दूर सागर पार से सागरमय का समाचार लेकर नीता के नाम यह टेलीग्राम आया था। किसी छुट्टी के दिन सैर करते वक्त एक मोटर दुर्घटना में सागरमय गम्भीर रूप से घायल हो गया था। वह बचेगा कि नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। वह अभी तक बेहोश था, होश में आयेगा कि नहीं, इसे भी कहना मुश्किल था। नीता को यह समाचार एक कर्तव्य समझकर भेजा गया था। इस टेलीग्राम को भेजा था सागर के खास दोस्त शिशिर राय ने। वह सिर्फ नीता का पता ही जानता था। इसी पते पर वह सागर को ढेरों चिट्ठियाँ लिखते हुए भी देखता रहता था। सागरमय के घर का पता उसे मालूम नहीं था।

लेकिन सागरमय के घर में था ही कौन !

सागरमय त्रिपुरा का रहने वाला था। कलकत्ते में बोर्डिंग में रहकर वह पला-बढ़ा था। यह भी इसलिए सम्भव हुआ था क्योंकि पिता कुछ रुपया छोड़

गये थे। देश के मकान मे सौतेले चाचा और सौतेली दादी रहती थी जिनका व्यवहार सागरमय के साथ कभी भी अच्छा नही रहा।

इसके बावजूद सागरमय अपने बूते पर बाहर निकल आया।

उसने डॉक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण की, मनस्तत्त्व पर शोध किया और न केवल एक अच्छी नौकरी ही बल्कि एक मनलायक प्रेमिका भी उसने हासिल कर ली। नीता से उसकी भेंट कलकत्ते मे हुई थी। नीता की प्रेरणा और आकर्षण के वशीभूत होकर वह अपना भाग्य आजमाने दिल्ली चला गया था। वहाँ जाकर उसका भाग्योदय भी हुआ था।

इसके बाद जब सारी बातें तय हो गयी, यहाँ तक कि शादी की तारीख भी, तभी अचानक सुशोभन की दिमागी गड़बडी शुरू हो गयी। सब कुछ गडबड़ हो गया। नीता की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। निरन्तर देखभाल करते हुए जब सागरमय ने सुशोभन के रोग की जड को समझ लिया तब उसने नीता को सलाह दी कि सुशोभन को कुछ दिनों के लिए ऐसी जगह ले जाकर रखना होगा जहाँ उनके मन को परितृप्ति मिल सके।

इस रोग के बारे में सागर ने काफी अध्ययन किया था। लेकिन इसके पहले एक और ऐसी घटना होनी थी जिसने नीता के जीवन में कुछ और कठिनाई पैदा कर दी। हालाँकि यह तय पहले से ही था लेकिन तब सुशोभन बिल्कुल स्वस्थ थे। सागरमय को उच्चतर शोधकार्य के लिए विदेश जाने के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। पहले यही तय हुआ था कि विदेश जाने से पूर्व दोनों विवाह कर लेंगे और सागरमय नीता को भी अपने साथ विदेश ले जाएगा। लेकिन सारा मामला उलट-पलट गया। सब गड़बड हो जाने से उसे अकेले ही विदेश जाना पडा। वहाँ जाकर उसने खबर दी कि उसे लौटने मे निर्धारित समय से कुछ समय अधिक लग जाएगा क्योंकि ठीक सुशोभन जैसे मानसिक विकारग्रस्त रोगियों के बारे में वह कुछ नवीनतम चिकित्सा सम्बन्धी जानकारियाँ प्राप्त करना चाहता है। सागरमय वहाँ से प्रेसक्रिप्शन और सलाह लगातार भेजता रहा, लेकिन सुशोभन के लिए जिस स्नेहनीड़, परितृप्ति भरे आश्रय की उसने सलाह दी थी उसका पालन करना नीता के लिए शुरू-शुरू मे बेहद कठिन हो गया था।

एक असंभव, आसामाजिक और अस्वाभाविक काम करने के लिए बहुत बडे साहस की जरूरत होती है। इसीलिए वह अपने पिता को दार्जिलिंग ले गयी, कि शायद वहाँ जाकर उन्हे आराम महसूस हो। लेकिन वहाँ पर सुशोभन के भयभीत होने की भावना कुछ अधिक ही बढ गयी। हर क्षण 'तू गिर जाएगी' कहकर उन्होंने नीता को रोकना शुरू कर दिया। नजरों से पहाड को ओझल करने के लिए वे हमेशा अपनी आँखें मूंदे रहने लगे।

उधर सागरमय लगातार दबाव डाल रहा था। हर बार यही लिखता,

"जब वह भद्रमहिला विधवा हैं अर्थात् वह अपने घर की सर्वेसर्वा हैं तब तुम्हें इतना संकोच करने की जरूरत क्या है ? वहाँ जाकर देखो न।" लिखता था, "मुझे तो नहीं लगता कि ऐसा प्रबल आवेग सिर्फ एकतरफा प्रेम का होगा।"

सागरमय अपनी चिट्ठियों में और भी ढेर सारी बातें लिखता।

आखिरकार नीता ने भी तय कर लिया और फिर एक दिन सुबह के वक्त उनकी गाड़ी अनुपम कुटीर के दरवाजे पर जाकर खड़ी हो गयी थी।

लेकिन नीता के जीवन का रथ भी क्या इसी अनुपम कुटीर के अंतराल में रुक जाएगा ? नीता ने तो अब यह सोचना शुरू ही किया था कि उसके जीवन का अँधेरा अब छँटने लगा है, सुशोभन की अवस्था में क्रमिक सुधार नजर आने लगा था।

यह समाचार पाकर सागर उत्साहित हो गया था। उसने लिखा था, "उम्मीद है मैं जब तक लौटूंगा तब तक तुम्हारे पिताजी कन्यादान करने की व्यवस्था प्रारम्भ कर देंगे। तुम डॉक्टर पालित की सलाह के अनुसार ही काम करना। मेन्टल हॉस्पिटल में भर्ती न करने की सलाह देकर उन्होंने वास्तव में अत्यन्त विलक्षणता का परिचय दिया है। जो रोगी दूसरों के लिए खतरनाक नहीं है, उसे हॉस्पिटल में भर्ती करने की राय से यहाँ के भी कई डॉक्टर सहमत नहीं हैं।"

यह पत्र पढ़कर नीता सोचने लगी थी, "दूसरों के लिए खतरनाक। मतलब ? मार-धाड़ करने वाला पागल ? लेकिन कोमल प्रकृति का व्यक्ति भी क्या दूसरों के लिए खतरनाक नहीं हो सकता है ?"

नीता ने उस दिन सोचा था, बहुत बार सोचा था, 'सुचिन्ता बुआ का भारी नुकसान होगा। यह नुकसान मैं कर रही हूँ। उसने फिर सोचा, अब तो कुछ ही दिनों की बात है। इसके बाद तो सब ठीक हो हो जाएगा।"

लेकिन ठीक हुआ कहाँ। इस बार फिर जाने कहाँ से सब कुछ गड़बड़ हो गया।

यही समाचार नीलांजन के हाथों में था।

टेलीग्राम।

नीता थोड़ा-सा कांप गयी।

फिर भी उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते समय उसने सोचा, डरने की क्या बात है। शायद सागर को मानसिक चिकित्सा के बारे में किसी नयी पद्धति की या किसी नयी दवा की जानकारी मिली हो और उसने झटपट टेलिग्राम कर दिया हो। सोचा, संभव है सागर का ही वहाँ से अचानक तुरन्त लौटने का कार्यक्रम बन गया हो। शायद समय से पूर्व ही उसका काम समाप्त हो गया हो, ऐसी बातें

सोचने में उसे कुछ ही क्षण लगे होंगे तभी तक जब तक कि उसने लिफाफा फाड़ कर कागज को अपनी नजरों के सामने कर न लिया होगा।

इसके बाद नीता के माथे पर पसीना चुहचुहा गया। अचानक उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह अंग्रेजी अक्षर-ज्ञान ही भूल गयी हो। इसलिए टैलीग्राम की भाषा उसकी समझ से परे हो गयी थी। अनपढ़ की तरह एक अबोध असहाय भाव से उसकी दोनों आँखें धुंधली हुई जा रही थी।

नीता के नाम से विदेशी मोहर लगी हुई चिट्ठियाँ अक्सर आती थी लेकिन नीलांजन की नजरों में यह कभी नहीं पड़ी थी। नीता ने पहले से ही लेटर बक्स की चाभी अपने पास रख ली थी। और अपनी चिट्ठियाँ? उसे भी खुद अपने सिवाय कभी उसने किसी को पोस्ट नहीं करने दिया। इसीलिए अचानक विदेश से आये हुए टेलिग्राम को देखकर नीलांजन की भौंहें सिकुड़ गयी थीं। उसने सोचा, 'आखिर यह क्या बला है।'

इसके बाद उसने सोचा, शायद किसी विदेशी दवा कम्पनी का टेलीग्राम होगा। शायद सुशोभन के लिए डॉक्टर ने ऐसी किसी दवा का प्रेसक्रिप्शन दिया होगा, जो यहाँ न मिलती होगी। इसीलिए नीता ने दवा के बारे में तुरंत पूछ-ताछ की होगी।

नीता के हाथ में टेलीग्राम थमाकर वह खामोशी से चला आना चाहता था, लेकिन वह ऐसा नहीं कर सका। बंगालियों का मन टेलीग्राम पाकर आज भी धक से हो जाता है। इसी से निलांजन लौटना चाहकर भी नीता के चेहरे की ओर देखता हुआ खड़ा रह गया। उस चेहरे की ओर जिस पर अपरोक्ष रूप से नीलांजन की टकटकी हमेशा ही लगी रहती थी। नीता को कभी शह देने वाली नजरों से देखता तो कभी उसमें हताशा भरी होती और कभी-कभी तो नजरें एकदम मूर्खों हो जाती थी।

बीच-बीच में वे नजरें जैसे विद्रोही हो जाना चाहती थीं, असहिष्णु होकर कोई दुस्साहस से भरा काम भी करना चाहती। लेकिन अनुपम कुटीर के अनुशासन का भी कोई महत्व था, इसलिए नीलांजन की वैसी मानसिकता और दृष्टि से नीता अपरिचित ही रही।

आज भी वह अपरिचित ही रही। नीता ने उसकी ओर देखकर भी नहीं देखा कि एक दृष्टि व्यग्र होकर उसके चेहरे के हर भाव-परिवर्तन को लक्ष्य कर-करके चकित हो रही है।

हाँ, नीलांजन चकित ही हो रहा था खासकर उस समय जब टेलीग्राम पढ़ते वक्त नीता के माथे पर पसीना चुहचुहा आया था और उसकी उँगलियाँ काँपने लगी थीं।

नीलांजन चकित था। उसने व्यग्र होकर कुछ पूछना भी चाहा, लेकिन वह खामोश रहा।

लेकिन तब तक नीता ने अपनी मान-मर्यादा की परवाह किए बिना ही कहा, "जरा देखिये तो यहाँ क्या लिखा है, ठीक से समझ नहीं पा रही हूँ।"

लेकिन समझ न पाने जैसी कोई बात नहीं थी।

बड़े टेलीग्राम की भाषा बिल्कुल साफ और सरल थी। अक्षर तक साफ-साफ टाइप किए हुए थे।

फिर भी नीता समझ नहीं पा रही थी।

क्या वह समझ नहीं पा रही थी।

इसका साफ मतलब था कि उसे यकीन नहीं हो रहा था। आखिर वह कैसे यकीन करती? हालांकि नीता काफी तकलीफ उठा रही थी लेकिन अभी उसकी उम्र ही कितनी थी। उसे यह भी नहीं मालूम था कि प्यासे के ओंठों से लगा हुआ पानी का बर्तन अचानक छीनकर धूल में गिरा देना भाग्यविधाता का सर्वाधिक प्रिय खेल है।

नीलांजन टेलीग्राम की ओर एक नजर डालकर सूखे गले से बोला, "सागर कौन है?"

"है एक साहब।" नीता व्यग्र होकर कह पड़ी, "उसके बारे में क्या लिखा है, जरा वही बताइये।"

नीलांजन तीखी नजरों से नीता की ओर देखते हुए बोला, "आपने जो पढ़ा है, वही लिखा है। मोटर एक्सीडेंट में बुरी तरह घायल होकर—"

"यहाँ पर क्या लिखा है—" नीता के गले से एक करुण आर्तनाद फूट पड़ा, "क्या उसे कभी-होश नहीं आयेगा?"

नीलांजन गंभीर होकर बोला, "कभी नहीं लौटेगा, ऐसा तो नहीं लिखा है। बस संदेह व्यक्त किया गया है। लेकिन सागर कौन है? और शिशिर राय कौन है? क्या आपकी सहेली और उसके पति हैं?

"कैसी पागलों जैसी बातें कर रहे हैं।" नीता उससे हाथ से झटपट टेली-ग्राम खींचकर बोली, "सागर मेरा मित्र है। मेरी उसके साथ सगाई हो चुकी है।" कहा जाता है, सांप के सामने विष-पत्थर रखने से साँप एकदम बुत की तरह स्थिर हो जाता है। लेकिन बातें भी क्या विष-पत्थर से कम असरदार होती हैं? क्या आदमी को भी वह बुत नहीं बना देतीं?

जरूर बना सकता है। बात वैसी हो तो यह बिल्कुल संभव है। फिलहाल नीता की इस बात ने तो नीलांजन को बिल्कुल जड़ बना दिया था।

नीलांजन बड़ी मुश्किल से सिर्फ इतना ही कह सका, 'एन्गेज्ड?'

"हां-हां। लेकिन साफ-साफ क्यों नहीं बता रहे हैं?"

वैसी शांत और शिष्ट लड़की भी आज ऐसी व्याकुल हो गयी थी। भाग्य की हिंस्रता के कारण वह खुद भी हिंस्र हो उठी थी।

"अब और साफ-साफ कहने के लिए क्या है ?" नीलांजन बड़े ही ठंडे स्वर में बोला, "जो कुछ लिखा हुआ है उससे अधिक कहने के लिए क्या है। मोटर एक्सीडेंट में वे घायल हुए हैं, उनके दोस्त शिशिर राय को आपके अलावा और किसी का पता नहीं मालूम था, इसीलिए उन्होंने आपके पते पर यह जानकारी दी है। घायल की स्थिति बड़ी नाजुक है—"

"उसने क्या मुझे आने के लिए लिखा है ?"

यह बात नीता ने अत्यंत ही व्याकुलता से कही और उसने फिर से टेलीग्राम पर अपनी नजरें गड़ा दीं। सुशोभन की लड़की के खून में क्या सुशोभन जैसी हड़बड़ाहट समा गयी थी ? सुशोभन के पागलपन का भी कुछ असर आ गया था क्या ? कम से कम नीलांजन को तो यही लगा। उसने चकित होकर कहा, "आने के लिए लिखा है। आने के लिए। कहाँ जाने के लिए ?"

"क्यों जहाँ पर वह है ?"

"जहाँ पर ! मतलब विलायत में ?"

"इसमें इतना चौंकने की क्या बात है ? लोग क्या वहाँ नहीं जाते ? जरा चलिए मेरे साथ इस टेलीग्राम को लेकर पासपोर्ट ऑफिस चलें, फिर एयर इंडिया ऑफिस में—"

"दिमाग तो नहीं खराब हो गया है ? जरा ठंडे दिमाग से सोचिए कि जो आप करना चाहती हैं, कहाँ तक तर्क-संगत है।"

नीता वहीं पर बैठ गयी। बोली, "तर्क-संगत नहीं है ? मेरा प्रस्ताव तर्क संगत नहीं है ? उधर वह मर जाए और मैं उसे देख भी न पाऊँ, क्या यही युक्ति-संगत है ?"

"अब इस बारे में मैं क्या कह सकता हूँ।"

"आप मुझे इन जगहों में ले चलेंगे कि नहीं यही बताइये ?"

अचानक नीलांजन की आँखें किसी साँप की आँखों की तरह चमक उठीं, वैसी ही स्थिर दृष्टि और गले से उसने कहा, "लेकिन मुझे ऐसा करने की जरूरत क्या है ? इससे मुझे क्या लाभ होगा ?"

"लाभ ? आप इस समय अपने लाभ-हानि के बारे में सोच रहे हैं ?"

"बिल्कुल। लाभ-हानि के बारे में सोचने के लिए इससे पहले तो ऐसा भयंकर मौका नहीं आया था। सारे समय मन ही मन अपने लाभ की ही गणना करता रहा हूँ, अब इस समय अचानक मुझे 'लाभ' जैसी कोई चीज न दिखायी दे और सिर्फ नुकसान ही नुकसान—"

"आप कहना क्या चाहते हैं, इसे समझने की क्षमता अभी मुझमें नहीं है। आप न जायें, मैं अकेली ही जा रही हूँ।" कहकर काँपते हुए तेज कदमों से नीता बाहर चली गयी। नीलांजन उसके साथ ही लगा रहा, चलते-चलते बोला, "अपने पिता की तरह बेकार का पागलपन मत कीजिए, बल्कि एक ट्रंककॉल करके—"

"आपके परामर्श के लिए धन्यवाद !"

कहकर सुचिन्ता के पास आकर नीता खड़ी हो गयी।

लेकिन अकेले नीलांजन ने ही नहीं, सभी ने यही कहा। सुचिन्ता, निरुपम, इन्द्रनील—इन सभी ने।

"जाओगी? यह क्या कह रही हो ? पागल हो गयी हो क्या ?"

अगर पागल की लड़की पागल हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। ऐसा भी संभव है कि अचानक भाग्य की निष्ठुरता और लोगों के लाभ-नुकसान की गणना करते रहने की प्रतिक्रियास्वरूप ही नीता भी पागल हो गयी हो।

"मैं हर हालत में जाऊँगी।"

नीता बोली।

"जाओगी ही ?" सुशोभन भी चकित होकर बोले, "कहाँ जाओगी ?"

"सागर के पास।"

"सागर ! सागर के पास ?" सुशोभन ने हताश होकर कहा, "यह सागर कौन है ?"

"बाबूजी, तुम तो जानते हो कि सागर कौन है। तुम उसे कितना प्यार करते थे। उससे कितनी बातें करते थे। बातें और बहस करते-करते दिन चढ़ आता था, तब तुम कहते थे, "सागर यहीं भोजन करके जाना। अब तुम इतनी चीजें याद रख पा रहे हो और सागर को ही भूल रहे हो ? सोचो, जरा ध्यान से सोचो।"

सुचिन्ता नजदीक आकर बोलीं, "मैं बताती हूँ सुशोभन ! सागर वही है जिसके साथ—"

सुशोभन ने हाथ के इशारे से उन्हें खामोश कर दिया बोले, "रुको सुचिन्ता अब मुझे याद पड़ रहा है। वही जो लड़का नीता के साथ-साथ बाजार जाता था। वहाँ उसने सूटकेस खरीदा, और भी चीजें खरीदीं, वही लड़का सागर है।"

"हाँ पिताजी। वह बहुत अस्वस्थ है—"

सुशोभन ने विह्वल होकर कहा, "लेकिन वह तो जाने कहाँ चला गया था न नीता ? वह तो अब लौटकर नहीं आयेगा।"

"आयेगा पिताजी। मैं उसे अपने साथ लेकर आऊँगी, इसीलिए तो जाने के लिए कह रही हूँ।"

सुशोभन उसी तरह बोले, "लेकिन नीता मैं तो उतनी दूर नहीं जा पाऊँगा।"

"तुम । तुम नहीं जाओगे । तुम जाओगे भी कैसे ? तुम यहीं रहोगे । यहीं, सुचिन्ता बुआ के पास ।"

"सुचिन्ता के पास । ठीक-ठीक, सुचिन्ता तो है हीं । लेकिन नीता, सुचिन्ता अकेले कैसे सम्हालेगी ?"

सुचिन्ता बोली, "सम्हाल लूंगी सुशोभन । अकेले ही संभाल लूंगी । लेकिन नीता—"

"अब और नही बुआ । मैंने बिल्कुल पक्का इरादा कर लिया है ।"

थोड़ा खामोश रहकर सुचिन्ता बोलीं, "हालांकि तुम्हारे जाने का ऐसा इरादा मुझे एक विचित्र किस्म का पागलपन ही लग रहा है । झूठ नहीं कहूँगी, कुछ अतिरिक्त ही जिद लग रही है, लेकिन इससे भी इन्कार नहीं करती कि तुम लोग इस युग की लड़कियाँ हर क्षण असंभव को संभव बना दे रही हो । और तुम लोगों की इस तेज गति के कारण ही पुराने रथ भी कीचड़-दलदल मे फँसे अपने पहियों को बाहर निकालने की कोशिश करने लगे हैं ।"

"बुआ, सिर्फ इसी युग मे ही क्यों, अतीत में भी सावित्री ने तो यमलोक तक धावा किया था, यह तो आप ही लोगों ने कहा है ।"

"सावित्री ।"

सुचिन्ता बोली, "लेकिन नीता, समाज ने सावित्री को सत्यवान के लिए दौड़ने का अधिकार दिया था ।"

नीता दृढ़ स्वर मे बोली, "हर बात मे क्या समाज का मुँह जोहने से काम चलता है बुआ, कुछ अधिकार सीधे भगवान के पास से खुद भी हासिल करने पड़ते हैं ।"

"अपने अधिकार भगवान के पास से हासिल करने पड़ते हैं ।" सुचिन्ता ने इतने दिनों बाद यह बात सुनी ।

लेकिन भले ही इसे उन्होंने पहले नहीं सुना था, लेकिन इसे समझने से सुचिता को रोका किसने था ? इस बात को खुद सुचिन्ता ने पहले क्यों नहीं महसूस किया था ?

यह बात समझ में क्यों नहीं आयी थी कि एक असहाय व्यक्ति को एक दूसरे सरल व्यक्ति से बाँध देने जैसे हास्यास्पद नाटक के लिए इतना मूल्य चुकाना, मन बुद्धि, आत्मा, चैतन्य सभी को ठोक-पीटकर नियन्त्रित करने की जी-जान से कोशिश करना कहीं अधिक हस्यास्पद था ।

सुचिन्ता का सारा जीवन एक अपराध बोध की ग्लानि से बोझिल होकर बीतता रहा । उस बोझिल आत्मा को ओर देख-देखकर सुचिन्ता का मन हाहाकार कर उठा ।

वे अचानक ही नीता के प्रति ईर्ष्यालु हो उठीं ।

सी ईर्ष्या के वशीभूत होकर सोचने लगीं, पिता के पास काफी पैसे रहने
ोई भी इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु आदि सभी लोकों में जा सकता है।
वैंक में अगर हजारों रुपये मौजूद न होते, तब कहाँ से इतना साहस आता?
जोर से असम्भव संभव होता ?"

इसके वाद अचानक उन्हें खुद पर ताज्जुव हुआ कि वे नीता से ईर्ष्या कर
ी थीं।

उसी नीता से जो सुशोभन की वेटी थी।

सुचिन्ता ने अपनी आँखों से दुनिया को वहुत कम देखा था, इसीलिए
चकित हो रही थीं। इस दुनिया की उन्हें जानकारी होती तो वे पातीं कि ईर्ष्या
आश्चर्यजनक रूप से अपने घर के अंतःपुर से ही जन्म लेती है। अगर वह सुशो-
भन की लड़की न होकर सुचिन्ता की वेटी होती तो भी क्या वे इस समय ईर्ष्या
से वच सकती थीं ?"

नीता उड़कर अपने प्रेमी की रोगशैया के वगल में जाकर खड़ी हो जाये,
और सुचिन्ता को उससे ईर्ष्या न हो, क्या यह संभव था ?

हाँ नीता असम्भव को संभव वनाने वाली ही लड़की थी।

लेकिन इसके लिए काफी खर्च भी करना पड़ता है। तीन दिनों तक तो वह
सिर्फ वाहर भाग-दौड़ करती रही कभी नीलांजन के साथ तो कभी-निरुपम के
साथ और लगातार पैसा पानी की तरह वहाती रही।

ईर्ष्या की वात न होने पर भी यह वात सही थी। रुपये न रहने पर सि
प्रचंड जिद से क्या कोई काम वन सकता था ? रुपये रहने चाहिए। रुपये कि
से माँगे हुए नहीं, न भीख के रुपये, धन अपने अधिकार का हो।

आर्थिक मुक्ति न होने से हार्दिक मुक्ति की वात व्यर्थ है।

नीता यात्रा की तैयारी में पागलों की तरह जुटी हुई थी और नील
चतुराई से पता मालूम करके रोगी की हालत के वारे में पता लगाने के
ट्रंककाल पर ट्रंककाल करने लगा। यह मालूम करने के लिए कि वह ज
से उड़कर वहाँ घायल को देखने के लिए जाना चाहती है, क्या वह वहाँ
उसे जीवित देख पाएगी ?

लेकिन नीलांजन की छटपटाहट का क्या कारण था ?

वह क्या मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि उसे यह समाचार
'यहाँ देखने को कोई जरूरत नहीं। सारी जरूरत मिट गयी है।"

या वह नीता के कष्ट से दुखी होकर ढेर सारे रुपये खर्च करके
इन्तजार करने के वाद वहाँ के हाल-चाल की जानकारी ले रहा थ
उसने नीता को तो कुछ भी नहीं वताया।

भाइयों में आपस में न मन का मेल था और न कोई विरोध ही। असल में अन्तर्मन जैसी किसी चीज से उन्हें कोई मतलब ही नहीं था। एक मकान में एक साथ रहने के बावजूद सुचिन्ता के बेटों में आपस में पड़ोसियों से अपेक्षाकृत कम निकटता थी।

सारा जीवन अपने मन पर अंकुश लगाते-लगाते ही सुचिन्ता की सारी शक्ति खर्च हो गयी, अपने परिवार को वे नहीं बाँध पायीं। जिस एकात्मबोध से भाई-भाई आपस में झगड़ते हैं, तर्क करते हैं, नियन्त्रण कायम कराते हैं, वह बोध ही इन तीनों भाइयों में पनप नहीं पाया।

इन्द्रनील अपने महिला मित्र के साथ मस्ती में इधर-उधर घूमता फिरता है, रास्ते में जाते हुए निरुपम की नजर पड़ती तो वह सिर झुकाकर दूसरी तरफ के फुटपाथ पर चढ़ जाता, नीलांजन की नजर पड़ती तो वह भृकुटियों में बल डाल कर रूखी नज़रों से देखता हुआ आगे बढ़ जाता। कभी किसी ने घर में आकर अपने छोटे भाई से यह नहीं पूछा कि, "तुम्हारे साथ वाली लड़की कौन थी ?" न कभी किसी ने यह कहकर तिरस्कृत ही किया कि "उस तरह से क्यों घूमते रहते हो ?"

जरूरत पड़ने पर वे तीनों आपस में नाप-जोखकर विशुद्ध बँगला में बातें करते। फिर भी आज अपने बड़े भाई को बुलाकर नीलांजन ने बात की। 'दादा' कहने की आदत न होने के कारण उसने बिना किसी सम्बोधन के ही कहा, "बेकार में पागलों की तरह क्या भाग दौड़ कर रहे हो ? नीता को विलायत में भेजने से कोई लाभ होगा ?"

निरुपम ऐसी किसी बात के लिए तैयार नहीं था, फिर भी उसने बड़े ही ठंडे लहजे में कहा, "किसके लाभ की बातें कह रहे हो ?"

"सभी की ओर से विचार करके ही कह रहा है · मान लो तुम्हारे—"

"मेरी बात रहने दो।"

"ठीक है। लेकिन नीता का भी क्या लाभ होगा ? उसके वहाँ जाकर पहुँचने तक तो उसके प्रेमी की मौत हो जाएगी।"

"जाहिलों की तरह बातें मत करो।"

"ठीक है सभ्यों की भाषा में कह रहा हूँ—तुम्हें लगता है कि वहाँ जाकर वह अपने मित्र को जीवित देख पाएगी ?"

"उस विश्वास के भरोसे ही तो जाने की तैयारी हो रही है।"

"मेरी राय में तो कोई लाभ नहीं होगा।"

"नकारात्मक ढंग से सोचने की जरूरत ही क्या है ? फिर वह जर्मनी देश की तरह नहीं है, वहाँ चिकित्सा-पद्धति बहुत अच्छी है, इसके अलावा

उसी ईर्ष्या के वशीभूत होकर सोचने लगीं, पिता के पास काफी पैसे रहने पर कोई भी इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु आदि सभी लोकों में जा सकता है।

वैंक में अगर हजारों रुपये मौजूद न होते, तब कहाँ से इतना साहस आता? किस जोर से असम्भव संभव होता ?''

इसके वाद अचानक उन्हें खुद पर ताज्जुब हुआ कि वे नीता से ईर्ष्या कर रही थीं।

उसी नीता से जो सुशोभन की बेटी थी।

सुचिन्ता ने अपनी आँखों से दुनिया को बहुत कम देखा था, इसीलिए वे चकित हो रही थीं। इस दुनिया की उन्हें जानकारी होती तो वे पातीं कि ईर्ष्या आश्चर्यजनक रूप से अपने घर के अंतःपुर से ही जन्म लेती है। अगर वह सुशोभन की लड़की न होकर सुचिन्ता की बेटी होती तो भी क्या वे इस समय ईर्ष्या से बच सकती थीं ?''

नीता उड़कर अपने प्रेमी की रोगशैया के वगल में जाकर खड़ी हो जाये, और सुचिन्ता को उससे ईर्ष्या न हो, क्या यह संभव था ?

हाँ नीता असम्भव को संभव बनाने वाली ही लड़की थी।

लेकिन इसके लिए काफी खर्च भी करना पड़ता है। तीन दिनों तक तो वह सिर्फ बाहर भाग-दौड़ करती रही कभी नीलांजन के साथ तो कभी-निरुपम के साथ और लगातार पैसा पानी की तरह वहाती रही।

ईर्ष्या की बात न होने पर भी यह बात सही थी। रुपये न रहने पर सिर्फ प्रचंड जिद से क्या कोई काम बन सकता था ? रुपये रहने चाहिए। रुपये किसी से माँगे हुए नहीं, न भीख के रुपये, धन अपने अधिकार का हो।

आर्थिक मुक्ति न होने से हार्दिक मुक्ति की बात व्यर्थ है।

नीता यात्रा की तैयारी में पागलों की तरह जुटी हुई थी और नीलांजन चतुराई से पता मालूम करके रोगी की हालत के बारे में पता लगाने के लिए ट्रंककाल पर ट्रंककाल करने लगा। यह मालूम करने के लिए कि वह जो यहाँ से उड़कर वहाँ घायल को देखने के लिए जाना चाहती है, क्या वह वहाँ जाकर उसे जीवित देख पाएगी ?

लेकिन नीलांजन की छटपटाहट का क्या कारण था ?

वह क्या मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि उसे यह समाचार मिले कि, 'यहाँ देखने की कोई जरूरत नहीं। सारी जरूरत मिट गयी है।''

या वह नीता के कष्ट से दुखी होकर ढेर सारे रुपये खर्च करके और काफी इन्तजार करने के बाद वहाँ के हाल-चाल की जानकारी ले रहा था। लेकिन उसने नीता को तो कुछ भी नहीं बताया।

भाइयों में आपस में न मन का मेल था और न कोई विरोध ही। असल में अन्तर्मन जैसी किसी चीज से उन्हें कोई मतलब ही नहीं था। एक मकान में एक साथ रहने के बावजूद सुचिन्ता के बेटों में आपस में पड़ोसियों से अपेक्षाकृत कम निकटता थी।

सारा जीवन अपने मन पर अंकुश लगाते-लगाते ही सुचिन्ता की सारी शक्ति खर्च हो गयी, अपने परिवार को वे नहीं बाँध पायी। जिस एकात्मबोध से भाई-भाई आपस में झगड़ते हैं, तर्क करते हैं, नियन्त्रण कायम कराते हैं, वह बोध ही इन तीनों भाइयों में पनप नहीं पाया।

इन्द्रनील अपने महिला मित्र के साथ मस्ती में इधर-उधर घूमता फिरता है, रास्ते में जाते हुए निरुपम की नजर पड़ती तो वह सिर झुकाकर दूसरी तरफ के फुटपाथ पर चढ़ जाता, नीलांजन की नजर पड़ती तो वह भृकुटियों में बल डाल कर रूखी नज़रों से देखता हुआ आगे बढ़ जाता। कभी किसी ने घर में आकर अपने छोटे भाई से यह नहीं पूछा कि, "तुम्हारे साथ वाली लड़की कौन थी ?" न कभी किसी ने यह कहकर तिरस्कृत ही किया कि "उस तरह से क्यों घूमते रहते हो ?"

जरूरत पड़ने पर वे तीनों आपस में नाप-जोखकर विशुद्ध बँगला में बातें करते। फिर भी आज अपने बड़े भाई को बुलाकर नीलांजन ने बात की। 'दादा' कहने की आदत न होने के कारण उसने बिना किसी सम्बोधन के ही कहा, "बेकार में पागलों की तरह क्या भाग दौड़ कर रहे हो ? नीता को विलायत में भेजने से कोई लाभ होगा ?"

निरुपम ऐसी किसी बात के लिए तैयार नहीं था, फिर भी उसने बड़े ही ठंडे लहजे में कहा, "किसके लाभ की बातें कह रहे हो ?"

"सभी की ओर से विचार करके ही कह रहा है। मान लो तुम्हारे—"

"मेरी बात रहने दो।"

"ठीक है। लेकिन नीता का भी क्या लाभ होगा ? उसके वहाँ जाकर पहुँचने तक तो उसके प्रेमी की मौत हो जाएगी।"

"जाहिलों की तरह बातें मत करो।"

"ठीक है सभ्यों की भाषा में कह रहा हूँ—तुम्हें लगता है कि वहाँ जाकर वह अपने मित्र को जीवित देख पाएगी ?"

"इस विश्वास के भरोसे ही तो जाने की तैयारी हो रही है।"

"मेरी राय में तो कोई लाभ नहीं होगा।"

"नकारात्मक ढंग से सोचने की जरूरत ही क्या है ? फिर वह जगह इस देश की तरह नहीं है, वहाँ चिकित्सा-पद्धति बहुत अच्छी है, इसके अलावा सुबह

ट्रंककाल करके उसकी हालत के बारे में जानकारी मिल पायी है कि उसमें कुछ सुधार हुआ है।"

"हालत में उन्नति हुई है इसकी जानकारी नीलांजन को भी थी। उसे पिछले दिन शाम को ही यह सूचना मिल गयी थी। और इसीलिए उसमें इतनी अधिक छटपटाहट थी।

आश्चर्य ! कहानी के नायक की तरह ही वह मृत्यु के दरवाजे तक जाकर लौट आया। अभागे को मौत भी नहीं आयी। सागरमय की उपस्थिति की सूचना नीलांजन को अचानक ही मिली थी इसलिए उसे अधिक परेशानी थी। उसने जैसे नींद से उठने के बाद खिड़की खोलकर देखा कि ऐन सामने प्रकाश रोककर एक विराट पहाड़ खड़ा हुआ है।

इन्द्रनील की तरह अपने को उतना सस्ता बनाकर प्रेम करने का माद्दा निलांजन में नहीं था, लेकिन उस पहली मुलाकात से ही वह मन ही मन नीता के प्रति तीव्र आकर्षण का दंश अनुभव करता रहा था। इस बात को लेकर वह अच्छी खासी यंत्रणा का भी शिकार हुआ था।

लेकिन सहज रूप से इसे व्यक्त करने में उसकी मर्यादा को चोट पहुँचती थी। इसीलिए वह क्रमशः सारी दुनिया पर, यहाँ तक कि नीता पर भी नाराज हो रहा था। इन्द्रनील के प्रति उसे ईर्ष्या हो रही थी। यही ईर्ष्या उसे सुचिन्ता के प्रति भी हुई थी। उसके मन में हर क्षण यही बात रहती थी कि वैसे वह नीता से सहज ढंग से पेश आए।

लेकिन अचानक सब उलट-पुलट हो गया।

नीलांजन की समस्त इच्छाओं पर, भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं पर तुषारापात हो गया।

नीता वाग्दत्ता थी !

पहले झटके को किसी तरह संभालने के बाद से ही उसके मन में एक हिंस्र आशा पनपने लगी थी कि चलो आखिरकार वह मरकर लाइन क्लीयर किये दे रहा है। इसीलिए वह बार-बार ट्रंककाल करके पता लगाना चाहता था कि "वास्तविक समाचार क्या है ? मतलब अभी वह मरा कि नहीं। कल सुबह तक यह आशा थी कि नीलांजन का भाग्य सारी परिस्थितियों को नीलांजन के अनुकूल बना रहा है। लेकिन शाम होते न होते गंगा उल्टी बहने लगी।

हालत में सुधार होने का समाचार मिला।

इसकी जानकारी नीता को भी थी या उसे हो सकती थी एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की वासनांध दृष्टि ने इस पर गौर ही नहीं किया था। उनके मन में था कि निरुपम को उकसाकर अगर किसी तरह से नीता का विदेशगमन रुकवाया जा सकता तो ठीक होता।

"इस सुधार से कोई फायदा नहीं होगा।" नीलांजन ने कहा।

"किससे फायदा होगा और किससे नहीं, यह फैसला करना हम लोगों का काम नहीं है।" निरुपम ने जवाब दिया।

"नीता के ढेरों रुपये बरबाद हो रहे हैं, इस पर गौर किया है?"

"रुपया नीता का है, इसलिए इस विषय पर हम लोगों के सोचने, न सोचने का सवाल ही नहीं उठता।"

"तुम्हारे सहयोग के बिना उसका इस तरह से जाना मुमकिन नहीं था।"

"यह सोचना गलत है। जैसे भी होता वह रास्ता निकाल ही लेती।"

"जरा सोचो, उसके जाने के बाद उसका प्रेमी—"

"मित्र कहो।"

"मित्र ही सही। उसके जाने के बाद अगर उसके मित्र की मृत्यु हो जाए तो उसकी हालत क्या होगी, क्या इसकी तुम कल्पना कर सकते हो? तुम तो खूब हितैषी बनकर—"

"तुम्हें कुछ और कहना है?"

"नहीं।" कहकर लौटते-लौटते फिर से मुड़कर नीलांजन ने कटु व्यंग्य के स्वर में कहा, "ऐसा हितैषीपन दिखाकर शायद भविष्य के लिए अपना ग्राउन्ड बना रहे हो।"

निरुपम गुस्से से लाल होकर बोला, "तुम्हें फिर से एक बार सभ्यतापूर्वक बात करने की याद दिलाये दे रहा हूँ।"

"याद दिला सकते हो। लेकिन याद रखो, तुम्हारे मन की बात समझने में मुझे कोई गलतफहमी नहीं हुई है।"

"सुनकर सुखी हुआ।"

कहकर निरुपम खुद ही अपना कमरा छोड़कर बाहर निकल गया।

नीलांजन उन्हीं तेज नजरों से कुछ देर तक उसी ओर देखता रहा। कमरे से बाहर निकलने जा ही रहा था कि उसे पर्दे की दूसरी ओर से एक धक्का लगा।

"बड़े भैया, आप जरा डॉक्टर पालित के साथ—" बात पूरी होने के पहले ही नीता बोल उठी, "आप यहाँ? बड़े भैया कहाँ हैं?"

"मालूम नहीं।"

"आप अकेले ही यहाँ खड़े हुए थे?"

"अगर था तो क्या इसमें आपको आपत्ति है? अगर कहूँ कि आपकी प्रतीक्षा में ही यहाँ खड़ा था तो?"

"यह कहना गलत होगा। क्योंकि मैं ठीक इसी समय यहाँ आऊँगी यह आप पहले से नहीं जानते थे।"

"नहीं जानता था लेकिन यह बात मेरी जानकारी में है ।" नीलांजन ने
लतापूर्वक देखते हुए कहा, "इसमें सन्देह नहीं कि आप काफी चालाक हैं ।"

"यह जानकर खुशी हुई," कहते हुए नीता ने दरवाजे की ओर कदम बढ़ाया
था कि निरंजन ने अचानक उसके पीछे से उसके कन्धे पर अपने हाथ का
ाव डालते हुए दबे गले से गुर्राते हुए कहा, "रुकिये ।"

"इसका मतलब ? आप चाहते क्या हैं ?"

"मतलब समझने की क्षमता तुम जैसी बुद्धिमान लड़कियों के पास जरूर
होगी । एक सीधे-सादे आदमी की दुर्बलता का फायदा उठाकर उससे अपना काम
निकाले ले रही हो और यह जरा सी बात नहीं समझ पा रही हो कि आखिर मैं
चाहता क्या हूं ।"

पिछले दो दिनों से नीता के चेहरे पर हँसी नाम की कोई चीज नहीं थी ।
इन दो दिनों में ही उसका चेहरा सूख कर, मुरझाकर काला हो गया था । लेकिन
अचानक इस समय उसके चेहरे पर एक विद्रूप भरी मुस्कान फूट पड़ी । उसके
चेहरे पर न क्रोध के लक्षण थे, न विरक्ति ही, न वह चीखी या चिल्लायी, वरन्
शान्त और संयत स्वर में बोली, "आप क्या मुझसे प्रेम निवेदन करना चाहते
हैं ?"

नीलांजन के चेहरे पर जोरदार थप्पड़ खाने जैसी कालिमा पुत गयी । वह
बोला, "अगर ऐसा ही करूं तो ?"

"आप तो सभी कुछ नफा-नुकसान का हिसाब लगाकर करते हैं, अगर उस
दृष्टि से मैं भी कहूं, मुझे इसमें क्या लाभ होगा तब ?"

नीलांजन वैसे ही दबे स्वर में गुर्राते हुए बोला, "तुम्हारे भगवान से प्रार्थ
करूंगा कि रास्ते के कांटे को दूर कर दें । तब तो लाभ मेरी मुट्ठी में होगा न

"हम लोगों के भगवान शायद आपकी बातों पर ध्यान नहीं देंगे ।
हटिये, मुझे जाने दीजिए ।"

"नहीं, पहले मेरी बात सुन लीजिए । सिर्फ एक सवाल है । अगर त
होने वाले पति की मौत हो जाए तो, आशा करता हूं, इसके बाद मुझे ही
मिलेगा ।"

"आप इतने बड़े शैतान होंगे, पहले नहीं जानती थी । हटिये—"

"नहीं नीता देवी—ऐसे नहीं हटूंगा । बिना जवाब पाये मैं हटनेवाल
मुझे जवाब चाहिए ।"

नीता के चेहरे पर फिर वही मुस्कान फूट पड़ी ।

"चाहने से ही क्या चीजें मिल जाती हैं ?"

"मिलती हैं । मैं ऐसा मानता हूं ।"

"अच्छी बात है। विश्वास की दृढ़ता अच्छी बात है। लेकिन सोच रही हूँ, आपकी ऐसी असहाय अवस्था कब से हुई ?"

अचानक नीलांजन की दृष्टि एकदम बदल गयी। तेज दृष्टि कातर निवेदन में ढल गयी।

"ऐसा कब से हुआ, क्या तुम सचमुच नहीं जानती नीता ? जिस दिन पहले पहल तुम यहाँ आकर खड़ी हुई, उसी दिन से मैं—लेकिन खराब लड़कियों की तरह तुमने मुझसे खिलवाड़ क्यों किया ?—तुमने पहले ही क्यों नहीं बता दिया कि तुम्हारी सगाई हो चुकी है।"

'खराब लड़की'—इस शब्द से नीता के कान लाल हो गये फिर भी वह संयत होकर बोली, "इसकी घोषणा चीख-चीखकर करनी चाहिए थी, यह नहीं समझ पायी थी।"

"ऐसा नहीं कि समझ नहीं पायी थी, बल्कि जान-बूझकर ही समझना नहीं चाहती थी। इस अघोषित खबर की अचानक घोषणा से शायद किसी के दिल पर चोट भी लग सकती है, तुमने ऐसा नहीं सोचा था, यही कहना चाहती हो न ?"

नीता गम्भीर होकर बोली, "बिल्कुल। इस दुनिया के सारे दिल मेरे लिए ही जगह खाली किये हुए बैठे हैं। इस हद तक मुझे पता ही नहीं था।"

"बातों के जाल में फँसाकर असलियत को दूसरे रंग में रँगा जा सकता है। मैं यही कहूँगा कि तुमने जान-बूझकर ही इस बात को छिपा रखा था।"

"शायद यह किसी दुरभिसन्धि के कारण ही हुआ होगा ?"

"इसे सच्ची अभिसन्धि भी नहीं कह सकता।" नीलांजन का चेहरा विद्रूप और कड़वाहट से विकृत हो गया। "असल में विरही मन को बहलाने वाले मौज-मजे के उद्देश्य से प्रेम का खेल खेलने की सुविधा के लिए ही यह गोपनता बरती गयी थी। निःसंदेह तुम्हें इसमें सफलता भी मिली। इसलिए भी कि तुमने एक की बजाय सभी के साथ मजा लूटा। निरुपम मित्र को तो तुम अपनी इच्छानुसार कठपुतली की तरह नचा रही हो, लगता है इन्द्रनील बाबू ने हताश होकर दूसरी जगह आश्रय ढूँढ़ लिया है, और—"

"और आपने लगता है तय कर लिया है कि प्रेम को जबर्दस्ती प्राप्त करके रहेंगे। *अच्छा ही है। बलानां बलः बाहुबलः। लेकिन मुझे अब अधिक रुकने की* फुर्सत नहीं है। उम्मीद है आपको सब कुछ कह लिया होगा।"

"लेकिन मुझे जवाब नहीं मिला।"

"जवाब ! हाँ-हाँ, ठीक यहाँ तो कहा था न कि अगर शैतान आपकी सहायता के लिए हालत को आपके अनुकूल बना देगा तो आपका हक सबसे पहले होगा, इसी इकरारनामे पर दस्तखत कर दूँ। क्यों यही न ?"

"व्यंग्य कर लो। लेकिन जरा सोचो, अपने अधीन किसी शैतान को तुम्हारे सागर के पास मोटर एकसीडेण्ट में घायल करने के लिए मैंने नहीं भेजा था।"

"आपको जो कुछ कहना था, कह चुके ?"

"कह चुका। लेकिन नीता देवी तुमने खेल खूब दिखाया।"

नीता ने अपनी उत्तेजना को दबा कर शांत सहज स्वर में बोली, "असल बात क्या है, जानते हैं ? इसमें न आपका दोष है न मेरा, दोष हमारे देश की मानसिकता का है। कोई भी लड़की किसी भी लड़के से अगर हँसकर दो-चार बातें कर ले तो उसे प्रेम का संकेत समझ लिया जाएगा और उसे खेल समझते हुए भी अभागे लड़के उसमें डूबेंगे-उतराएँगे। यह अनिवार्य है। हमेशा यही होता है। इसीलिए आपने यह धारणा बना ली है कि आपके बड़े भाई और छोटे भाई दोनों एक ही देवी की उपासना कर रहे हैं। आपकी बात तो प्रत्यक्ष ही है। लेकिन ऐसा क्यों होता है ? क्या लड़कियों से किसी तरह भी मित्रता का सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता ? क्या सहज होकर मेल-जोल करके उनसे सहज बर्ताव नहीं किया जा सकता ?"

"नहीं ऐसा नहीं होता।" नीलांजन शेर की तरह हो दहाड़ उठा, "उस तरह की आदर्शवादी कविता जैसी बातें रहने दो। ये बातें रक्त-मांस वाले व्यक्तियों के लिए नहीं हैं। क्या प्रकृति ने अपना स्वभाव बदल लिया है ?"

"जवाब में बहुत सारी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन आपके साथ बैठकर बहस करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। लेकिन आपके लिए मैं वाकई दुःखी हूँ। बड़े भैया की तरह सहज ढंग से अगर आपने मुझे अपनी छोटी बहन मान लिया होता तो शायद—"

"सहज ढंग से ?" नीलांजन जोर से हँस पड़ा, "छोटी बहन मान लिया होता। यह सारी अच्छी-अच्छी बातें नीता तुम अपने बड़े भैया के लिए संभाल कर रखो। वह डरपोक है, कापुरुष है, इसलिए सोचता है कि अगर बड़े भैया रूपी यहछलना भी अगर टूट जाएगी तो सभी कुछ नष्ट हो जाएगा। कम से कम उस स्थिति से इस तरह का साथ ही क्या बुरा है। इस तरह के आदमियों को पहचानने में मैं गलती नहीं करता।"

"पुरुष-स्त्रियों के बीच बस यही एक सम्पर्क संभव है, यही आपकी धारणा है न ?"

"सिर्फ मेरी ही धारणा नहीं, दुनिया के सभी बुद्धिमानों की यही राय है। वही जो घास से मछली ढँकने जैसा कुछ मुहावरा है न, इसी की तुम्हें याद दिला रहा हूँ। बड़े भैया कहने से ही अगर बहन का प्यार जाग जाता तो फिर परेशानी किस बात की थी ?

सुना है श्रीमती सुचिन्ता देवी भी कभी सुशोभन मुखर्जी की बड़े भैया पहुँची थीं।"

नीलांजन की हर बात से कड़वाहट फूटी पड़ रही थी।

नीता अब और खड़ी नहीं रह सकी। "फिर से एक बार कह रही हूँ कि आपके लिए दुःख हो रहा है—" कहकर वह कमरे से बाहर चली गयी।

नीता के विदेश जाने की खबर श्यामापुकुर लेन में भी जा पहुँची। खबर और आग दोनों ही हवा की गति से फैलती हैं।

मायालता झटपट सुमोहन के पास जाकर बोली, "हाँ देवरजी, नीता के जाने-आने में क्या दस-बारह हजार रुपये खर्च नहीं हो जाएँगे?"

"वह तो होगा ही। अधिक भी हो सकता है।"

"एक बात पूछती हूँ, यह माना कि उसका बाप पागल है, लेकिन क्या लड़की का भी दिमाग खराब हो गया है?"

"असंभव नहीं है।" सुमोहन ने अपनी टाँगें हिलाते हुए तटस्थता से कहा।

"और तुम लोगों का? ताऊ-चाचा-भाई लोग? तुम लोगों का भी दिमाग गड़बड़ हो गया है क्या जो लड़की का उद्धार करने की कोशिश नहीं कर रहे हो।"

"तुम लोगों के पास अपने जाने की सूचना देने आयी तो थी, तब तुमने कोशिश क्यों नहीं की?"

मायालता अपनी मुख्य बात को भूलकर बोली, "मैं क्या तुम्हारे [illegible] का इन्तजार कर रही थी? सोचते हो क्या मैंने कोशिश नहीं की।"

"बस-बस। जहाँ तुम बेकार हो गयी हो वहाँ हमारी [illegible] लोग तो कीड़े-मकोड़े हैं।"

"तुम लोग क्यों होगे, वह तो मैं हूँ। नहीं तो [illegible] मैं इतनी तुच्छ होती? ऐसा न होता तो नीता मेरे मुँह पर [illegible] शादी करनी होती तो क्या पिताजी के ढेरों रुपये [illegible] बड़े भैया ने इस बात का समर्थन भी किया था।

"तुम्हारे विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करने [illegible] है।"

"इसके मतलब लड़की जो भी [illegible] और कोई इसका विरोध नहीं करेगा? [illegible] पता-ठिकाना कुछ भी ठीक नहीं, [illegible] बात पर उसकी बीमारी देखने के लिए [illegible] क्या कभी किसी ने सुनी है? [illegible] से वह लाज-शरम छोड़ देगी?

"नहीं, नहीं, [illegible]

एक के होने से दूसरे का अस्तित्व नहीं रहता। रुपया होने से लाज-शर्म नहीं रहती तो लाज-शर्म रहने से रुपया नहीं।"

"अब तुम जो भी कहो देवरजी, ऐसी निर्लज्जता तो मैंने सात जनम में भी नहीं देखी। मंगेतर की बीमारी देखने के लिए कभी किसी के विलायत जाने की बात सुनी है ?"

"शादी की ऐसी-तैसी—" सुमोहन खाट के पटिये पर हाथ मारते हुए बोला, "शादी ही क्या प्रेम का पैमाना होती है ?"

मायालता मुंह बिगाड़कर बोली, "हमेशा से यही सुनती आयी हूं।"

"हमेशा से जो कुछ सुनती आ रही हो भाभी वह सब गलत है। अपनी छोटी बहू को ही ले लो। उसके साथ तो मेरा—"

अचानक बात का छोर बीच में ही तोड़कर सुमोहन हुँऽ-हुँऽ करके कोई राग अलापने लगा।

मायालता 'क्या हुआ ?' कहकर विस्मित नहीं हुईं। उन्हें क्या हुआ, यह समझते देर नहीं लगी। ऐसा हमेशा ही घटता था। इस समय भी और कुछ नहीं जरूर छोटी बहू के आंचल की झलक दीख गयी होगी।

हां, अशोका आ रही थी।

नाश्ते की प्लेट मेज पर रखकर कमरे के एक कोने में रखी हुई सुराही से अशोका पानी ढालकर ले आयी। सुमोहन का यह स्पेशल जल था जो मुहल्ले के किसी खास ट्यूबवेल से लाया जाता था।

"यह सब क्या है ?"

सुमोहन ने मुंह टेढ़ा करके पूछा।

अशोका ने जवाब नहीं दिया। जवाब मायालता ने ही दिया। मुंह बिगाड़ने की मुद्रा उन्हें भी बुरी लगी। बोलीं, "नजर नहीं आ रहा है क्या ?"

"आ क्यों नहीं रहा है ?" सुमोहन ने व्यंगात्मक मुद्रा में कहा, "अहा, क्या शोभा है। अभूतपूर्व है। बिल्कुल नयी चीज है। हलुआ और तले हुए पापड़। वाह, वाह।"

मायालता बिफर उठीं, "तो गृहस्थ के यहां कहां से हर रोज नयी चीज बनेगी ? बाजार की हालत तुम्हें मालूम नहीं है ?"

"बाजार।" सुमोहन दार्शनिक की तरह बोला, "इसी दुनिया के रहने वालों का बाजार देख-देखकर ही हलकान हुआ जा रहा हूं। अब तुम्हारे नोन-तेल-लकड़ी का बाजार देखने की फुर्सत किसे है ?"

"फुर्सत क्यों होगी ? फुर्सत व्यंग्य करने की होगी। राजशाही आमदनी करने के लिए तो किसी ने तुम्हें रोका नहीं है देवरजी। अपने मंझले भैया की तरह ही कोई तोप बन जाते।"

"वह हो सकता था लेकिन हुआ नहीं।" सुमोहन ने कहा, "कुछ न होने पर भी गृहस्थी चलायी जा सकती है कि नहीं, यही मेरे शोध का विषय है। इसी को लेकर मैं रिसर्च कर रहा हूँ।"

"हूँह! ऐसे बमभोले की तरह बड़े भैया मिले हैं, तभी—" मायालता ने मुँह बिगाड़ा, "ऐसा न होता तो सारी रिसर्च निकल गयी होती।"

"अरे वह तो मिलते ही। वह तो स्वतःसिद्ध है। दुनिया में अगर जाड़ा है तो भेड़ का ऊन भी है। यह विधि का विधान है।"

मायालता नाराज हो गयी, "एक बात हो रही थी, उसमें से एक दूसरी बात निकाल लाये। मैं छोटी बहू से पूछती हूँ, वह तो खूब विदुषी और बुद्धिमान है, वही कहे कि इतना पैसा फूँककर इस तरह से एक जवान लड़की का विदेश जाना कहाँ तक उचित है?"

अशोका कमरा बुहार रही थी। दूसरी ओर मुँह किये हुए ही बोली, "मुझसे जवाब माँग रही हैं?"

"हाँ माँग रही हूँ। माँगूँगी नहीं? तुम्हारे जेठ तो उठते-बैठते तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करते रहते हैं—तुम्हीं कहो न, क्या यह ठीक हो रहा है? लोग प्रशंसा करेंगे?"

"लोगों की बात करनी बड़ी कठिन है दीदी। लेकिन मुझे तो लग रहा है कि वह उचित ही कर रही है।"

"उचित? तुमने भी खूब कहा। उधर भगवान न करे, कहीं वह लड़का मर गया तो न जाने नीता की क्या हालत होगी? उस पर विदेश में। दूसरों की जमीन में।"

"विदेश में तो बहुतों के पतियों की भी मृत्यु हो जाती है, दीदी।"

"पति और प्रेमी दोनों क्या एक समान हुए?" मायालता खीझकर बोली।

"हाँ, दोनों की तुलना तो नहीं हो सकती।" अशोका मुस्कराते हुए कमरे से बाहर चली गयी।

मायालता ने मुँह बिगाड़ लिया।

"समझ गयी?" सुमोहन पापड़ खाते हुए बोला, "पति और प्रेमी का सम्बन्ध भी धूप और पानी जैसा होता है। समझी न!"

"तुम्हारे नखरे की ऐसी की तैसी। मैं सिर्फ रुपयों के बारे में सोच रही हूँ। बाप रे! दस बारह हजार रुपये!"

मायालता के लड़कों ने भी कहा, "बाप रे, नीता तो आसमान में उड़कर विलायत जाने के लिए तैयार हो गयी। सोचा भी नहीं जा सकता। यह सब बातें तो मुझे बेकार लगती हैं, मुझे तो इन सबके पीछे कोई षड्यन्त्र लगता है।

आखिर कब तक वह पिता के पागलपन को सहते हुए यूँ ही बैठी रहेगी। इस-लिए एक बहाना बनाकर वह यहाँ से खिसक रही है।"

मायालता ने भी समर्थन करते हुए कहा, "इसमें ताज्जुब की क्या बात है! दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं होता। इसका जो दोस्त वहाँ पर है, वही कैसा है, कौन जानता है।"

तपोधन बोला,"पिताजी मुझे भी थोड़े रुपये दो न, मैं भी एक बार घूम आऊँ और मामले की तह में भी हो आऊँ। पासपोर्ट के लिए दिक्कत नहीं होगी। कहूँगा छोटी बहन के अभिभावक के नाते जा रहा हूँ।"

"क्यों नहीं, कुछ थोड़े से रुपयों की ही तो बात है न ?" मायालता बोलीं।

तपोधन अपने छोटे चाचा की तरह मुँह बनाकर बोला, "जानती हो माँ, आजकल विलायत, अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि जगहों में जाना दाल-भात जैसा हो गया है। मेरे सारे दोस्त एक-एक बार कहीं न कहीं जरूर घूम आये हैं। हम लोगों जैसे हतभागों की इस युग में संख्या कम ही है। सभी अचरज में भर कर कहते हैं, "तुम्हारे पिताजी की तो इतनी अच्छी प्रैक्टिस है, तुम तो—"

मायालता बीच ही में बोल पड़ी, "लेकिन वे कहते हैं, आजकल के सभी लड़के विदेशों में अपनी कोशिशों से ही जाते हैं। स्कॉलरशिप की व्यवस्था—"

"वे सब बातें रहने दो।" तपोधन ने और अधिक मुँह बिगाड़ लिया, "पिता के पास रुपये न रहने से सब बेकार है।"

मायालता इधर-उधर देखकर दबे गले से बोलीं—"अब क्या कहूँ। तुम लोगों की तकदीर ही ऐसी है। अगर गृहस्थी में यह सब झंझट-झमेले न रहे होते तो क्या मैं तुम लोगों को विलायत-अमेरिका नहीं भेज देती ? मँझले देवर जी भी भूत के अवतार हो गये हैं। नहीं तो मैंने मन ही मन सोच रखा था कि तुम लोगों के स्कूल पास कर लेने के बाद तुममें से किसी एक के लिए मँझले देवर जी को पकड़ूँगी। उनसे कहती, भतीजा भी अपने बेटे जैसा होता है, तुम्हें तो कोई लड़का नहीं है, उन्हें लायक बनाने से तुम्हें ही फायदा होगा। दुर्भाग्यवश तुम लोग इधर दो-दो, तीन-तीन बार फेल होते रहे, उधर मँझले देवर जी भी—"

"अच्छा माँ, नीता तो चली जा रही है, फिर मँझले चाचा जी के रुपये-पैसों का क्या होगा ?"

"शायद सुचिन्ता को ही उन्होंने अपना वारिस बनाया है।"

तपोधन ने चिढ़ते हुए कहा, "अब क्या कहूँ, चाचीजी गुरुजन हैं। लेकिन उन्होंने खूब तमाशा दिखाया।"

"तूने तो सब सुना ही होगा, बड़े भाई को पहचानने में दिक्कत नहीं हुई, छोटी बहू को पहचान लिया, सिर्फ हमीं लोगों के वक्त में—"

"सब सुना है । सब समझती भी हूँ । मैं सिर्फ सोच रहा हूँ, नीता तो जा रही है, अब यही मौका देखकर किसी तरह से मंझले चाचाजी को यहाँ लाया जा सके तो मैं उन्हें मैनेज करके उनसे कुछ रुपये झटक लेता ।"

"यही नहीं होने वाला । सुचिन्ता बड़ी तेज औरत है ।"

"उनके लड़के आखिर कैसे हैं, यही सोचता हूँ । वे लोग महते कैसे हैं ?"

"लड़के ?" मायालता की हँसी मे विद्रूप था, लड़के भी गुण हैं । वहाँ भी आमदनी हो रही है, तू इसे नहीं समझता ?"

अपनी माँ के साथ इस तरह की चर्चा में तपोधन ही विश्वस्त व्यक्ति था । साधन इस तरह से अपनी माँ से बातचीत नहीं करता । वह सिर्फ माँ-बाप की दृष्टि-विहीनता के कारण कुछ न बन पाने का ही मुखर असन्तोष व्यक्त करता रहता है । कहता है, पैसा खर्च न करने से बच्चे लायक नहीं बनते, बस वे जानवर बन सकते हैं । सिर्फ खाना-कपड़ा दे देने से ही माँ-बाप का कर्तव्य समाप्त हो जाने वाला जमाना अब नहीं रहा ।"

बदलते हुए जमाने का बोध, शायद नीता वाली घटना के पहले, इन लोगों को इतनी तीव्रता से नहीं महसूस हुआ था । नीता के पिता आखिर उनके पिता के सगे भाई हैं, यह बात जब भी उनके दिमाग मे आती थी गुस्से के मारे उन लोगों का खून खौलने लगता था । उन्हीं के निकट का व्यक्ति उनसे दूर होता जा रहा था, यह बात उन्हे असहनीय लगती थी ।

सुविमल ने अपने बेटों के प्रति अपने कर्त्तव्य का यथोचित पालन नहीं किया था, नीता ने जैसे उनके सामने इस तथ्य को उजागर कर दिया ।

यही परिवेश सुशोभन का था ।

यही उनका घर था, यहीं उनके अपने लोग थे । यही लोग जिन्होंने कभी सुशोभन को अपना व्यक्ति कहकर अपने पास नहीं खींचा था, अब सुशोभन को हाथ से निकलता हुआ देखकर अपना सिर पीट रहे थे ।

मायालता मूर्ख होगी उसके लड़के मूर्ख हो सकते हैं, लेकिन सुविमल भी इसे महसूस कर रहे थे कि गत तीन वर्षों मे उनका एक बार भी दिल्ली न जाना कहाँ तक न्यायसगत था । अब उनका मन ही उन्हे कोंच रहा था । नीता के पत्र मे उसके पिता के अस्वस्थ होने का समाचार पाकर भी निश्चित होकर बैठे रहना बिल्कुल उचित नहीं हुआ । आना-जाना बना रहता तो सुशोभन की लड़की उनसे कभी भी इस तरह से अलग नहीं हो सकती थी ।

साथ ही सुविमल को भी इस तरह से चार व्यक्तियों के सामने सफाई नहीं देनी पड़ती । अभी कुछ ही दिन पहले फुफेरे भाइयों ने आकर उनसे इस बारे में पूछताछ की थी । बड़ी बहन ने बुला भेजा था लेकिन सुविमल नहीं गये थे । जाते तो शायद वह भी यही पूछती, "सुचिन्ता के यहाँ किसलिए ? तुम्हारे यहाँ क्यों नहीं ?"

यह सब शायद कुछ भी नहीं हुआ होता अगर सुविमल ने पहले से सोचा-विचारा होता। लेकिन जब तक कोई चीज अपनी पहुँच में रहती है, उसके मूल्य के बारे में कौन चिन्ता करता है। पहुँच से बाहर या हाथ से बाहर कोई चीज निकल जाने पर ही लोग अफसोस करते हैं कि पहले से क्यों नहीं सोच-विचार लिया। आदमियों के बारे में भी यही बात है।

सुमोहन भी भले ही सभी कुछ को हँसी और व्यंग्य में टाल देता हो, लेकिन मन ही मन वह भी यही सोच रहा था कि उसने अपनी जिंदगी के प्रारंभ में ही बहुत बड़ी गलती कर दी थी। देश के बँटवारे के बाद बड़े भैया के यहाँ अपना सिर न छिपाकर अगर उसने विधुर मँझले भैया का आश्रय ग्रहण किया होता तो अच्छा था। नीता भी तब बच्ची ही थी। अशोका जैसी चतुर कर्मठ चाची पाकर उन्हें खुशी ही हुई होती।

लेकिन सारी गड़बड़ी की जड़ अशोका ही थी।

उसने कभी भी पति से कोई सलाह नहीं ली। लेकिन लगता था जैसे वह बड़ी अनुगता थी। इससे तो वह अगर रात-दिन झगड़ती भी रहती तो बेहतर होता।

अच्छा सुचिन्ता ने अपने पति के साथ कैसे निर्वाह किया? यह तो स्पष्ट ही हो गया कि वे मन से किसी दूसरे ठिकाने से बँधी हुई थीं।

अचानक सुमोहन कुछ अवान्तर बातें सोचने लगा। उसने सोचा कि कौन जाने अशोका के मन में भी कोई चोर छिपा हुआ हो।

लड़के-बच्चों की माँ है, लेकिन उससे क्या। औरतों के मन का क्या भरोसा। सुचिन्ता ने भी कैसा नाटक दिखाया।

आश्चर्य है! उम्र हो जाने पर भी प्रेम प्यार की बातें मन में बनी रहती हैं। अब यह सब तो सामने ही नजर आ रहा है। सुमोहन अपने मँझले भैया को भी सभी भाइयों-बहनों में बुद्धू समझता था लेकिन अब मँझले भैया को देखकर उसे जलन होती। उनके पागल होने के बावजूद उनसे ईर्ष्या होती है। बुद्धू भी प्रेम कर सकते हैं, इस बात से मन को ढाढ़स देने के बावजूद मन जैसे बेकाबू हुआ जा रहा था।

जीवन में पराजित होने वाले शायद ऐसे ही होते होंगे।

वे दुनिया पर व्यंग्य करके मन की जलन यह सोचकर मिटाना चाहते हैं कि मैं उनके जैसा मूर्ख नहीं हूँ।' लेकिन ईर्ष्या के हाथ से उन्हें भी मुक्ति नहीं मिलती।

सभी कुछ ठीक-ठाक ही चल रहा था कि अचानक ऐसा लगा जैसे नीता ने एक ईंट उठाकर इन लोगों के माथे पर दे मारा हो।

खैर, इस ईंट से कइयों के सिर जख्मी हो गये थे।

नीता के जाने का कारण गौण हो गया था, वह जा रही थी, यही चर्चा का

मुख्य कारण था। मायालता की मानसिकता से कृष्णा, शिप्रा, माधुरी जैसी इस मोहल्ले की आधुनिकाएँ भी अलग नहीं थीं।

अगर नीना शादी-शुदा होती और उसके पति के बारे में दुर्घटना की ऐसी सूचना आयी होती तो नीना को निःसंदेह इन सभी की सहानुभूति मिली होती। लेकिन होने वाला पति ? आश्चर्य की बात थी।

"जो भी कहो, खूब तमाशा करके जा रही है।"

कृष्णा की इस बात पर इन्द्रनील की भौंहें सिकुड़ गयीं। बोला, "तमाशा करके ?"

"और नहीं तो क्या।"

"प्रेमी के सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा तो बड़ी कठोर है।"

"कठोर क्यों होगी। वह देश कौन-सा है, यह तो देखना पड़ेगा। जहाँ हाथ पैर खत्म हो जाने पर नकली हाथ-पैर लगाकर काम लायक बना देते हैं, लंग्स खराब हो जाने पर प्लास्टिक के लग्स लगाकर प्राण-रक्षा करते हैं सिर का ऊपरी हिस्सा उड़ जाने पर किसी दूसरे का खोल उतार कर फिट कर देते हैं। ऐसे देश में क्या सोचना।"

"यह तो सही कहा।"

"आओ चलो, उससे मिल आएँ।"

"क्या जरूरत है। वह अभी बेहद व्यस्त है।"

"अपने पिता के बारे में नीता दी ने क्या व्यवस्था की है ?"

"क्या करेगी ?"

"कोई नर्स-वर्स—"

"नहीं।"

"तुम्हारी माँ को ही सब कुछ सँभालना पड़ेगा ?"

"और क्या हो सकता है।" इन्द्रनील ने मुस्कराकर कहा, "नीता का मामला देखकर लगता है कि सब कुछ झटपट कर लेना ही उचित होगा, मनुष्य का जीवन कमल के पत्ते पर पड़ी हुई बूंद है। न जाने कब खत्म हो जाए।"

"दो-दो घोड़ों को लाँघ कर घास खाने का इरादा है ?"

"लगता है यही करना पड़ेगा। बहुत दिनों तक धैर्यपूर्वक इन्तजार किया जा सकता है, ऐसा नहीं लगता।"

"इतना भी धैर्य नहीं है।"

"धैर्य का कोई मतलब नहीं है इसीलिए इतना अधैर्य है। जब भूख लगी हुई हो और सामने सुस्वादु भोजन हो, तब धैर्य रखने का मतलब ही बेमानी होगा न ?"

"तुम्हारी यह तुलना अत्यंत आपत्तिजनक है। भूख, सुस्वादु भोजन छीः।"

"यह सब कुछ मैं नहीं समझता। जो सच है, वही कह रहा हूँ।"

"सोचती हूँ, तुम कितना बदल गये हो। तुम कैसे थे।"

"रिएक्शन! प्रतिक्रिया। अब समझ रहा हूँ कि मुझमें अपने पिता का स्वभाव समा गया है। पिताजी अत्यंत विलासी प्रकृति के थे।"

"तुम्हारी माँ जिस तरह से मुझे देखती हैं, उससे तो मुझे डर लगता है।"

"मुझे भी तुम्हारी माँ से डर लगता है। वे भी जाने कैसी नजरों से देखती हैं। लगता है अभी भस्म कर देंगी।"

कृष्णा हँसते हुए बोली, "इस पर भी हम लोग एक दूसरे की ओर नजरें उठाने से नहीं चूकते। यही आश्चर्य है।"

"परम आश्चर्य!"

नीता को विदा देने के लिए दमदम हवाई अड्डे पर काफी लोग गये थे। निरुपम, इन्द्रनील, कृष्णा, अड़ोस-पड़ोस के लड़के-लड़कियाँ सभी थे। एक बहाना चाहिए था उन्हें हो-हुल्लड़ मचाने का। एक खास उम्र के लड़के-लड़कियों इकट्ठे होने का कोई भी मौका वे हाथ से नहीं जाने देना चाहते हैं। गोल बांधकर सिनेमा या गुरु दर्शन के लिए जाने मेंउ न्हें समान रूप से मजा आता है। उनके आनंद में रंचमात्र भी कमी नहीं होती।

नीता के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए इन्द्रनील ने कहा, "कब लौटोगी? तुम्हारे न लौटने तक हमारी शादी रुकी रहेगी।"

"लौटना तो मेरी इच्छा से नहीं होगा।"

"वहाँ जाकर रहोगी कहाँ?"

"इसकी व्यवस्था शिशिर राय करेंगे। लेकिन मेरे लौटने के इन्तजार में तुम क्यों रुके रहोगे?"

इन्द्रनील कुछ देर की खामोशी के बाद बोला, "चांद को हाथों में न पाने के बावजूद चांद के तरफ वाली खिड़की खुली रखने की इच्छा होती है। तुम्हारी बातों के जवाब में मैं यही कह सकता हूँ।"

"बड़े भैया, पिताजी को छोड़े जा रही हूँ।"

टपटप करके आंखों से आंसू टपक पड़े, पहले गालों पर फिर हाथों पर। हां, निरुपम के उन्हीं हाथों पर जिन्हें नीता बड़ी व्याकुलता के पकड़े हुई थी।

"बड़े भैया, मुझे पिताजी की सूचना मिलती रहे।"

"नहीं मिलेगी ऐसी बात क्यों सोच रही हो?"

"नहीं, कोई आशंका नहीं है। सोचती हूँ, आप सभी पर—खैर, यह सब

नहीं कहूँगी, सिर्फ कहूँगी बुआजी पर काफी बोझ पड़ गया। उनकी भी आप देख-भाल कीजिएगा।"

'बुआजी' के बारे में निरुपम की कोई खास सहानुभूति नहीं थी, इसीलिए वह बड़े ठंडे लहजे में बोला, "तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है।"

"डॉक्टर पालित ने तो कल खूब भरोसा दिलाया था।"

"हाँ, दिलाया तो था।"

"क्या यह संभव नहीं है कि जब मैं लौटूँ, पिताजी को पूरी तरह से स्वस्थ देखूँ।"

"ऐसा भी हो सकता है।"

समय हो गया था। यात्रियों में हलचल मच गयी थी। लोग हर तरफ सिसकने-रोने लगे थे। अपने देश और अपने लोगों को छोड जाते वक्त ऐसा कौन है जिसकी आँखें गीली न हो जाती हों।"

और नीता?

उसके तो आगे-पीछे दोनों तरफ आंसुओं का सागर लहरा रहा था।

वहाँ जाकर वह सागर को किस हाल में पाएगी? सागर क्या उसे पहचान पाएगा? क्या सागर फिर से पहले जैसा ही हो जाएगा? क्या नीता दुबारा सागर को लौटा ला सकेगी?

वह लौटकर अपने पिता को तो न देख पाएगी?

अचानक नीता को न पाकर कहीं मामला कुछ उलट-पुलट तो नहीं जाएगा?

पिताजी क्या स्वस्थ हो जाएँगे? सागर बचेगा कि नहीं?

आकाश और पृथ्वी दोनों अपनी करुण दृष्टि से उसके चेहरे की ओर टक-टकी बाँधे हुए थे।

नीता तुम किसके लिए सोचोगी?

आहिस्ते-आहिस्ते जमीन छोड़कर आसमान का रथ ऊपर उठने लगा। जमीन धीरे-धीरे नीचे छूट गयी। दूरियाँ बहुत बढ गयीं। आसमान तेजी से सबको अपनी ओर खींचे लिए जा रहा था।

नीता के मन में सुशोभन की चिंता क्रमशः मंद हो रही थी, "वे लोग तो हैं ही, सुचिन्ता बुआ भी हैं। इन दिनों मैं कर ही क्या रही थी।" अपने मन को सांत्वना देने वाले विचार भी अब खत्म हो रहे थे।

आसमान असीम वेग-तरंगित होने लगा था।

सागर, सागर, तुम्हे कितने दिनों से नहीं देखा?

सागर, क्या जाकर तुम्हें देख पाऊँगी? सागर, क्या तुम मुझ पर नाराज होगे? क्या तुम सोचोगे कि मैंने तुम्हारे पास आकर अन्याय किया है, दुःसाहस किया है?

सागर तुम मुझे पहचान तो न पाओगे ?

जाने तुम कैसे हो गये हो सागर ?

ये व्याकुल प्रश्न ही दुःसाहसिक अकेलेपन से भरी उस यात्रा के साथी थे।

पिता और पति ये दोनों लड़कियों के जीवन के दो प्रिय आराध्य होते हैं, दोनों में ही जबर्दस्त आकर्षण रहता है, इनमें से किसी एक को छोड़े बिना दूसरे को प्राप्त करना संभव नहीं होता। नारी जीवन की यही सबसे बड़ी ट्रेजेडी होती है। एक को तो छोड़ना होगा ही।

बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा।

छोड़कर जाना होगा अपना स्नेह-नीड़, छोड़ना होगा अपना वंश-परिचय, छोड़ना होगा बचपन से सीखे हुए संस्कार, पद्धति और रुचि को।

यह त्यागना ही सुन्दर है, शोभाजनक है।

न छोड़ने के दुराग्रह से जीवन नष्ट हो जाता है।

ऐसा क्या सिर्फ हमारे देश में ही है ? हर देश की नारियों के जीवन में त्याग की ऐसी ही परीक्षाएँ आती हैं। त्याग के बिना प्राप्ति का सुख भी तो नहीं होता।

अगर सागर जीवन्मृत होकर बचा रहे तो वह क्या करेगी ? अगर वह हमेशा के लिए पंगु हो जाये तो ? नीता किसको छोड़ेगी ? असहाय पागल बाप को या पंगु असहाय प्रेमी को ?

दोनों की एक साथ देख-भाल करने की क्या उसमें क्षमता होगी ?

सागर तुम स्वस्थ हो जाओ, पहले जैसी आत्मा का संचार मेरे जीवन में कर दो। सागर तुम मुझे तोड़ कर, चूर चूरकर धूल में मिलाकर न चले जाना।

आदमी का शरीर भी जाने किस धातु से बना होता है। अन्दर का उत्ताल तरंगे बाहर आकर बिखरने नहीं पातीं। उन्हें शरीर अन्दर ही अन्दर जज्ब किये रहता है।

ऐसा न होता तो निरुपम बाहर से इतना शान्त और स्तिमित कैसे बना रहता ?

बड़े भैया ! बड़े भैया !

इस सम्बोधन की गरिमा को वहन करना ही पड़ेगा।

निरुपम कितना निरुपाय है।

हाथ की चमड़ी में तभी से जलन हो रही थी। क्या नारी के आँसुओं में कोई दाहिका शक्ति होती है ? लग रहा था जैसे चमड़ी झुलस गयी हो। रूमाल से आँसुओं को पोंछने के बाद भी कोई आराम नहीं हुआ। निरुपम को जल की धार के नीचे अपना हाथ रखना पड़ा।

नीता ने कहा था कि वह नहीं जानती थी, 'दुनिया के सभी हृदय उसके प्रेम के लिए व्याकुल हैं।' लेकिन ऐसा ही होता है। जिसमें आकर्षण शक्ति होती है,

क्या वह एक को ही आकर्षित करके चुप बैठती है ? उज्ज्वल दीप-शिखा से लौ लगाकर लाखों पतंगों को अपने प्राणों की आहुति देने की जरूरत क्या थी ?

"इतनी देर तक हाथ थामे हुए आखिर क्या बातें हो रही थीं ?" कृष्णा ने रूखे स्वर में कहा ।

"अगर कहूँ वह अपने पिता के लिए बुरी तरह से चिन्तित थी, उसे ढाढ़स बँधा रहा था ।"

"मुझे यकीन नहीं आता ।"

"तब फिर नहीं कहूँगा ।"

"मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था ।"

"थोड़ा गुस्सा आना अच्छा है ।" इन्द्रनील बोला, "इससे प्रेम बढ़ता है ।"

"यह पुरानी और सड़ी हुई बात है । नीता दी से क्या बातें कर रहे थे, वही बताओ न ।"

"यह नहीं बताऊँगा ।"

"नहीं बताओगे ?"

"नहीं, जिससे मेरी जो भी बातें होंगी, सब तुम्हारे सामने पेश करना होगा, ऐसी किसी शर्त के अधीन मैं नहीं हूँ ।"

"हर व्यक्ति की हर बातें नहीं, लड़कियों के साथ जो भी बातें होंगी—"

"वह भी नहीं । कृष्णा, तुम एक बात जान लो, हर व्यक्ति के मन में एक निर्जन कोना होता है, जहाँ किसी को भी झांकने की हिमाकत नहीं करनी चाहिए ।"

"यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता ।" कृष्णा ने रूखे गले से कहा ।

इन्द्रनील मुस्कराते हुए बोला, "अगर मेरी हर बात तुम्हें अच्छी लगने लगे तो जल्दी ही मैं तुम्हारी नजरों में पुराना पड़ जाऊँगा ।"

"इसका मतलब ?"

"मतलब कठिन नहीं है । घर जाकर सोचना । समझ जाओगी ।"

कृष्णा खीझकर बोली, "वह सब मैं नहीं जानती, मेरे अलावा तुम किसी और को और नहीं देखोगे, मेरे अलावा तुम किसी से बातें नहीं करोगे, मेरे अलावा तुम किसी और के बारे में नहीं सोचोगे, यही मेरी शर्त है ।"

"कहा तो, मैं किसी शर्त को नहीं मानूंगा ।"

कृष्णा छलछलायी आँखों से बोली, "यह जानते हो न कि तुम्हारे सिवा मैं किसी और से—इसीलिए तुम्हें इतना अहंकार हो गया है ।"

इन्द्रनील ने कहा, "अगर व्यक्ति में थोड़ा-सा अहंकार न रहे तो उसमें रह ही क्या जायेगा ? व्यक्ति तो अहंकार से ही बनता है।"

वही तो बात है।

अहंकार से ही तो व्यक्ति बनता है।

सभ्यता का अहंकार, संयम का अहंकार, रुचि का अहंकार, उदासीनता का अहंकार, इतने सारे अहंकारों के सहारे व्यक्ति अपने को टिकाये रखता है।

इस अहंकार को खत्म नहीं कर पाने के कारण ही निरुपम रात भर जागकर पत्र लिखता है—'कल्याणेषु नीता'। पत्र के अन्त में उसने लिखा—'इति शुभेच्छुक बड़े भैया।'

नहीं वह इस पत्र को नहीं भेजेगा। आज ही चिट्ठी भेज दे, ऐसा पागल निरुपम नहीं है।

निरुपम रात भर जागकर सिर्फ पत्र का मजमून बना रहा था। उसे पत्र लिखने का अभ्यास नहीं था। असल में बँगला में पत्र लिखने का उसे बिल्कुल अभ्यास नहीं था। इधर नीता कह गयी थी, "मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा करती रहूँगी, बड़े भैया। पिताजी का विस्तार से समाचार देते रहियेगा। आप पर ही सारे भार डाले जा रही हूँ। लेकिन पत्र बँगला में ही लिखियेगा।"

निरुपम सुशोभन के बारे में ही विस्तार से लिखने की कोशिश कर रहा था। लेकिन लिखने में बात बन नहीं रही थी।"

उसने फिर से दूसरे कागज पर नये सिरे से लिखना शुरू किया, 'कल्याणेषु नीता—'

लेकिन पत्र की भाषा मनलायक होगी कैसे ?

लिखने की बात ही क्या थी ?

आज ही तो नीता गयी थी।

ताज्जुब है।

लग रहा था, जाने कितने दिन हो गये उसे गये हुए।

"लग रहा है—जाने कितने दिनों के लिए मैं कहीं चला गया था। फिर से लौटा हूँ। बता सकती हो सुचिन्ता, मुझे ऐसा क्यों महसूस हो रहा है।" सुशोभन ने कहा, "मैं क्या कहीं गया हुआ था ?"

सुचिन्ता ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं तो।"

"अच्छा, तब क्यों ऐसा लग रहा है कि जाने कितने लोगों से मुलाकात हुई थी, लोगों ने जाने क्या-क्या कहा था, जाने कितनी गड़बड़ी की थी। वे सब कौन थे, बता सकती हो ?"

सुचिन्ता ने मुर्झाये हुए कहा, "कहाँ, कहीं तो नहीं। तुम तो कहीं नही गये थे।"

"नही गया था ? कहीं नहीं गया था ?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "नही गया था कहने से ही मान लूँगा। तुम जरूर मुझे कही से गयी थी सुचिन्ता।"

सुचिन्ता ने म्लान उत्सुकता से कहा, "मुझे तो याद नहीं पड़ रहा है। तुम्हीं बता दो कि तुम्हें किसने क्या कहा था ?"

सुशोभन खीझते हुए बोले, "यही बात तो पूछ रहा हूँ। दिमाग मे बहुत सारी बातें हैं। लेकिन वह सारी बातें गड्ड-मड्ड हुई जा रही हैं। अच्छा जरा बताना वे लोग कहाँ चले गये ?"

सुचिन्ता के मन मे भी अथाह सागर लहरा रहा था, मन में दुर्भावनाओं का पहाड़ खड़ा था।

इसके बाद क्या ? इसके बाद क्या होगा ?

नीता थी तो जैसे पैरों के नीचे जमीन होने का अहसास होना था।

लेकिन पैरों के नीचे जमीन होने से क्या साहस और सत्य की परीक्षा संभव होती है ?

सुशोभन खोझते हुए बोले, "आखिर इतना सोच क्या रही हो सुचिन्ता ? वे लोग कहाँ चले गये, बता क्यों नही रही हो ?"

सुचिन्ता ने थके स्वर मे पूछा, "वे कौन ?"

"ताज्जुब है ! और कौन ? जो लोग यहाँ रहते हैं।"

"जहाँ गये हैं, तुम्हें बता के गये हैं।"

सुचिन्ता ने और भी थकान महसूस की, "नीता विलायत चली गयी, मेरे बड़े और छोटे बेटे उसे पहुँचाने हवाई अड्डे पर गये हुए हैं।"

"नीता चली गयी ?" सुशोभन ने व्याकुल होकर कहा, "सुचिन्ता, वह क्यों गयी ? वह क्या नाराज होकर चली गयी ?"

"नाराज क्यों होगी ?" सुचिन्ता कुछ रुक-रुककर बोली, "तुम्हें तो उसने सभी कुछ बताया था। जिस लड़के से नीता की शादी होने वाली है, उसकी तबियत खराब हो गयी है। उसे देखने नीता गयी हुई है।"

सुशोभन थोड़ी देर मौन रहे। बोले, "ओह, अब समझ गया हूँ।"

"क्या समझ गये हो ?"

"नीता मुझसे नाराज होकर गयी है।"

सुशोभन करुण और उदास चेहरा बनाकर बैठे रहे।

सुचिन्ता ने आहिस्ते से सुशोभन के पुष्ट हाथो के एक भारी-भरकम पंजे पर अपना हाथ रखकर शान्त चित्त से कहा, "आखिर नीता यूँ ही नाराज होकर क्यों जायेगी ? तुमने कुछ कहा था ?"

आज सुशोभन उस स्पर्श के प्रभाव से विचलित नहीं हुए, उनका मन कहीं और था इसी तरह से वे बोले, "क्या मालूम ? ऐसा लग रहा है जैसे मैंने बहुत अपराध किया है। सुचिन्ता, मुझे जोर-जोर से रोने की इच्छा कर रही है।"

"छिः वैसी बातें नहीं करते।" सुचिन्ता बोलीं, "नीता तो कुछ ही दिनों बाद लौट आयेगी ?"

सुशोभन ने आहिस्ते-आहिस्ते सिर हिलाकर कहा, "अब वह नहीं आयेगी।"

"मैं कहती हूँ न वह आयेगी।"

सुचिन्ता ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा।

सुशोभन चकित होकर देखते रहे, "तुम कह रही हो कि वह लौट आयेगी ? तुम सब कुछ समझ सकती हो सुचिन्ता ?"

"हाँ, मैं सब कुछ समझ सकती हूँ।" सुचिन्ता ने बात पलटी, "यही देख लो। मैं समझ गयी हूँ कि तुम्हें भूख लगी है।"

"कहाँ, नहीं तो ?"

"वाह, तुम क्या अपने आप ही समझ जाते हो ?"

सुशोभन ने सिर हिलाया, "मैं नहीं समझ पाता लेकिन नीता समझ जाती है। अब मैं भी समझ रहा हूँ। मुझे भूख नहीं लगी है।"

"तुम्हें कुछ पढ़कर सुनाऊँ, सुशोभन ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ? पढ़कर सुनाऊँ न ?"

"ओह सुचिन्ता, तुम बहुत दबाव डालती हो।"

"ठीक है, अब दबाव नहीं डालूंगी।"

"तुम नाराज हो गयी हो सुचिन्ता ?"

"बिल्कुल हुई हूँ। तुम मेरी बात क्यों नहीं सुन रहे हो ?"

सुशोभन थोड़ा-सा विचलित होकर बोले, "सुनूंगा क्यों नहीं। जरूर सुनूंगा। लेकिन—"

"क्या ? कहो क्या कहना चाहते हो ?"

"यही कि तुम्हारी बातें मुझे क्यों सुननी चाहिए ?"

इस बात से सुचिन्ता भी विचलित हुईं।

सुशोभन में क्या कोई बदलाव लग रहा है ?

नीता के सामने क्या सुचिन्ता हार जायेगी ?

"लेकिन सुचिन्ता ने तो प्रतिज्ञा की थी कि वह हारेगी नहीं ! हार नहीं मानेगी।"

'हाँ सुनोगे। मेरी बात तुम्हें सुननी होगी। कल से सुबह हम दोनों घूमने जाएँगे।"

"घूमने ?"

अचानक सुशोभन खुश हो गये। "अभी चलो न सुचिन्ता। चलो, जरा देख आयें, जिन लोगों के मकान तोड़ दिये गये थे, वे लोग कहाँ गये हैं। आओ चलो, चलें।"

"अब घर किसके टूटे हैं ? घर-वर तो कहीं नहीं टूटे।"

"टूटे नहीं ? कहने से ही मान लूँगा ? रंभा मार-मारकर नहीं तोड़ रहे थे। नीता ने बताया कि इन लोगों के मकान फिर से बनेंगे। झूठ कह रही थी। मैं कह रहा था नहीं बनेगा। मकान टूट जाने से क्या दुबारा मकान बनता है ?"

अचानक सुचिन्ता ने सुशोभन के कंधे पर अपना एक हाथ रखते हुए रुँधे हुए गले से कहा, "दुबारा क्यों नहीं बनता सुशोभन ?"

अचानक पागल सुशोभन एक अशोभनीय काम कर बैठे। टेबल पर उनके पास एक काँच का गिलास रखा हुआ था। उसे लेकर उन्होंने जमीन पर जोर से पटक दिया। एक तेज झनझनाहट चारों ओर बिखर गयी।

"क्यों नहीं बनता, अब तुम बताओ ?" सुशोभन अद्भुत एक आत्मतृप्ति का अट्टहास करते हुए बोले, "बता सकी ? सब पागलों जैसी बातें। तुम्हारी बातें सुन-सुनकर बीच-बीच में, जानती हो सुचिन्ता, मुझे क्या महसूस होता है, कि जैसे तुम धीरे-धीरे पागल होती जा रही हो।"

"तुम्हें ऐसा लगता है ?" सुचिन्ता बोली।

"बिल्कुल—" सुशोभन ने अपनी बातों पर जोर देते हुए कहा, "बीच-बीच में तुम ऐसी ही फालतू बातें करती हो। नीता विलायत गयी है। और तुम [illegible] कह रही हो कि नीता मुझसे नाराज होकर चली गयी है।"

अपनी बातों का खुद ही सुशोभन जवाब दे रहे थे।

"मुझे बाहर एक नौकरी मिली है।"

नीलांजन ने आकर अकारण ही रूखे स्वर में कहा [illegible]

सुचिन्ता सब्जी काट रही थीं। वे चनाका [illegible] रखकर खड़ी हो गईं। उन्होंने अपने बेटे को ही [illegible] एक नौकरी मिली है।"

"हाँ।"

"कहाँ।" प्रश्न नहीं था, सिर्फ कह [illegible]

"है एक जगह।" [illegible]

कहने की जरूरत नहीं। जगह का नाम बताने की जरूरत क्या है। 'जगह' बस, यह कहना ही पर्याप्त है।

सुचिन्ता क्या कहें। वह क्या व्याकुल होकर पूछें, "तुम अचानक बाहर जा रहे हो ?" या वे पूछें, "कैसी नौकरी है, क्या यहाँ से अच्छी है ? तनख्वाह अधिक है ? रहने की सुविधा है ?"

पर यह सब मातृ-हृदय सुलभ सवालों को पूछने का अधिकार सुचिन्ता को था ।

क्योंकि सुचिन्ता ने अपने बेटों को सामान्य, सुलभ नहीं बनाया था। इसलिए थोड़ी देर की खामोशी के बाद वे बोलीं, "सब कुछ तय कर लिया ?"

"हाँ।"

"निरू को बताया है ?"

"कहने की कोई जरूरत है ?"

"नहीं जरूरत क्यों होगी ?" सुचिन्ता ने सप्रयास गहरी साँस जता कर ली।

"अनुमति लेने के लिए कह रही हो ?" नीलांजन के चेहरे पर विद्रूप भरा हास्य झलक गया।

"अनुमति।" सुचिन्ता चकित हुईं।

"क्या मालूम। बड़े भाई हैं। गुरुजन हैं।"

सुचिन्ता खामोश रहीं।

"रात नौ की ट्रेन से जाऊँगा।" कहकर नीलांजन पीछे घूम गया, लेकिन शायद सुचिन्ता अनुपम कुटीर का सयत्न सहेजा धैर्य अब सहेज न सकीं, इसलिए लगभग आर्तनाद करते हुए वह बोल पड़ी, "क्या आज ही जाओगे ?"

"हाँ आज ही। परसों ज्वाइन करना होगा।"

"बाहर जाने की कोई बहुत जरूरत आ पड़ी थी ? सुचिन्ता ने कुछ रुक कर हुए कहा, "यहाँ की नौकरी भी कोई बुरी तो नहीं थी।"

सहसा नीलांजन ने रूखे गले से व्यंग्यपूर्वक कहा, "नहीं, यहाँ की नौकरी शायद बुरी नहीं थी, लेकिन माँ, अब यहाँ रहना असहनीय होता जा रहा इस असहनीय स्थिति से मुक्ति पाने के लिए ही मुझे यहाँ से आधी तनख्वाह दूसरी जगह चले जाना पड़ रहा है।"

नीलांजन अपने कमरे में चला गया।

सुचिन्ता बरामदे की रेलिंग पर हाथ धरे हुए चुपचाप खड़ी रहीं। आ में बादलों का आना-जाना लगा था। अनुभवी लोगों ने जीवन की तुलना

से की है जहाँ सुख और दुःख के बादलों का आना-जाना लगा रहता है, जहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है।

सफेद बादल को सफेद और काले को काला समझकर व्यग्र होने की कोई बात नहीं है, ये सब वाष्पीकृत हैं, यही असल बात है। इनका आना-जाना लगा ही रहेगा।

उनमे आकाश को नुकसान पहुँचाने की क्षमता नहीं है।

सुचिन्ता क्या इसी आकाश की तरह होगी ?

जाने कब सुशोभन अपने कमरे से बाहर निकलकर सुचिन्ता के पास आकर खड़े हो गये थे। उनकी बात से सुचिन्ता चौंक गयीं।

"सुचिन्ता, तुम्हारे लड़के ने तुम्हें डाँटा क्यों ?"

सुचिन्ता झटपट बोली, "कहाँ, डाँटा तो नही।"

"नहीं डाँटा ? तब तुम मन खराब करके यहाँ खड़ी क्यों हो ?"

"नही मन खराब क्यों होगा ? मन तो नहीं खराब हुआ है।"

सुशोभन ने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाकर कहा, "कहने से सुनोगी क्यों ? मैं देख रहा हूँ कि तुम उदास हो। मुझे मालूम है कि वे लोग तुम्हें डाँटते हैं। आओ सुचिन्ता, हम लोग यहाँ से कहीं चले जाएँ।"

सुचिन्ता ने गर्दन मोड़कर कहा, "चले जाएँ। कहाँ चले जाएँ।"

सुशोभन ने गुपचुप कहा, "वहाँ, जहाँ तुम्हारे बेटे मौजूद न हों। सिर्फ हम दोनों मिलकर बातें करेंगे। वहाँ उनकी तीखी नजरों से परेशानी नहीं होगी।"

सुचिन्ता सुशोभन की आँखों मे टकटकी बाँधे हुए कई पलों तक देखती रह गयी। इसके बाद भरे गले से बोली, "वे लोग जिन नजरों से देखते हैं, उसे तुम समझ लेते हो ?"

"क्यों नहीं समझूँगा !" सुशोभन अधीर होकर बोले, "सुचिन्ता, मुझे क्या अंधा समझ रखा है ? मैं सभी कुछ देखता रहता हूँ।"

"तुम सब कुछ देखते हो ? तुम सब समझते हो ?" सुचिन्ता ने सब कुछ एकबारगी भूल-भालकर सुशोभन की बाँहों मे अपना सिर रख दिया और आवेग भरे गले से बोली, "मेरे दाह को कितना समझ पाते हो ? जानते हो मुझे कितना तकलीफ है ?"

"गाड़ी के लिए खाना बनाने की परेशानी की—"

परेशानी की कोई जरूरत नहीं है—यह बात कहने के लिए ही शायद नीलांजन आ रहा था। अचानक वह रुककर अस्फुट रूप से कुछ कहते हुए विद्युत गति से फिर अपने कमरे मे घुस गया।

उसने क्या कहा था ?

"असहनीय ?"

"रविश ?"

"कुत्सित ?"

सुचिन्ता को कुछ सुनाई जरूर पड़ा था, लेकिन वे पूरी तौर से समझ नहीं पायीं।

सुशोभन ने अपने कंधे पर टिके हुए सुचिन्ता के सिर को अपने हाथों से दबाया नहीं बल्कि उसे आहिस्ते से हटा दिया। फिर सतर्क होकर बोले, "सुचिन्ता, देख लिया ? मैं कह नहीं रहा था कि तुम्हारे लड़के बड़ी विचित्र नजरों से हमें घूरते रहते हैं ?"

"देखें। जिसकी जैसी तबियत हो घूर कर देखें।" सुचिन्ता तीव्र आवेश भरे स्वर में बोलीं, "हम लोग भी उनकी ओर नहीं देखेंगे। हम लोग भी इसकी परवाह नहीं करेंगे कि वे क्या सोचते हैं। चलो, सचमुच हम लोग कहीं दूसरी जगह चले जाएँ।"

यह बात सुशोभन ने भी थोड़ी देर पहले कही थी, "चलो सुचिन्ता, हम लोग कहीं दूसरी जगह चले चलें।" लेकिन इस समय उन्होंने इस बात का समर्थन नहीं किया, न वे इस बात पर खुश ही हुए। एक विचित्र स्वर में बोले, "धैर्य रखो सुचिन्ता, पहले सोचने दो। दिमाग में सब कुछ कैसा गड्डमड्ड हुआ जा रहा है। मुझे जरा सोचने दो।"

जरा सोचने दो !

पागल भी क्या सोचते होंगे ?

या वे सोच-सोचकर ही पागल होते होंगे ?

क्या सुचिन्ता भी धीरे-धीरे पागल हुई जा रही हैं ?

"डॉक्टर पालित ने कल उन्हें एक बार देखना चाहा है।"

निरुपम ने नजदीक आकर अत्यन्त निर्वैयक्तिक रूप से कहा। उसने कोई सम्बोधन भी नहीं किया। उन्हें मतलब किसको, इस बारे में उसने किसी का नाम नहीं लिया।

फिर भी सुचिन्ता को जवाब देना ही पड़ा।

और चारा ही क्या था।

"ठीक है, ले जाना। कब ले आने के लिए कहा है ?"

"यही, जैसे जाते हैं, करीब ग्यारह बजे।"

"कल तुम्हारा कालेज नहीं है ?" सुचिन्ता ने बड़ी सावधानी से पूछ लिया।

"हो भी तो क्या किया जा सकता है।" निरुपम ने जवाब दिया, "जाना तो पड़ेगा ही।"

सुचिन्ता थोड़ा रुककर बोलीं, "पता बता देने से क्या मैं सुबल को लेकर वहाँ नहीं जा सकती ?"

"तुम ?"

"कोशिश करने में हर्ज क्या है।"

"ऐसी जरूरत पड़ने पर कोशिश करना", निरुपम ने कोमल स्वर में कहा, "यह सारा बोझ नीता मुझ पर डाल गयी है। मतलब मुझसे आग्रह कर गयी है—"

"ठीक है। तब सुनो, जरा डॉक्टर को यह भी बता देना कि पहले से इनकी भूख काफी कम हो गयी है।"

"कहूँगा। लेकिन डॉक्टर को तो इस बारे में तो कोई सोच-विचार करते नही देखा।"

"ऐसा नही देखा ?"

"नही। कहने पर भी ध्यान नही देते। कहते हैं, उससे कुछ आता-जाता नही।"

"डॉक्टर से एक बार मेरी भी मिलने की इच्छा होती है।" सुचिन्ता ने गहरी साँस ली।

"उसमें क्या असुविधा है।" निरुपम ने कहा। लेकिन उसने यह नहीं कहा, "ठीक है माँ कल ही मेरे साथ चलो।"

सुचिन्ता कुछ क्षणों तक मौन रहने के बाद बोली, "नीलांजन ने तुम्हें कुछ बताया है ?"

"नीलांजन ! मुझे !—किस बारे में ?"

"वह आज जा रहा है।"

"जा रहा है।"

"कहीं नयी नौकरी पर।"

"आज जा रहा है। कहीं नयी नौकरी पर।" निरुपम भी चकित हुए बिना नही रह सका। सुचिन्ता ने किसी तरह कहा, "हाँ, अभी-अभी उसने खबर दी है। यहाँ से आधी तनख्वाह पर वह जा रहा है। यहाँ रहना उसके लिए असहनीय हो गया है।"

निरुपम बिना कुछ बोले अपनी माँ की ओर देखता रहा।

सुचिन्ता बोली, "शायद कभी तुम्हें भी यहाँ रहना असहनीय लगे, असहनीय लगे इन्द्र को भी।—उस दिन तुम लोग भी क्या घर छोड़कर चले जाना चाहोगे ?"

"क्या तुम नीलांजन को दोष दे रही हो ?"

निरुपम ने निर्लिप्त होकर पूछा।

"नहीं, दोष क्यों दूँगी ? दोष देने को है ही क्या ? असहनीय होना ही शायद स्वाभाविक है। लेकिन बता सकते हो, ऐसी स्थिति में मुझे और क्या करना चाहिए था ? दूसरा कोई होता तो क्या करता ?"

"मैंने तो तुमसे कैफियत नहीं माँगी, माँ।"

अचानक उत्तेजित उद्वेलित होकर सुचिन्ता बोली, "क्यों नहीं माँगते ? यही तो उचित होता। तुम लोग बड़े हो गये हो, क्या तुम लोग मेरे अन्याय के लिए जवाब तलब नहीं कर सकते ? मेरी मूर्खता पर अपनी सलाह नहीं दे सकते ? मेरी—"

"मैं किसी की किसी बात को गलत नहीं समझता। लोग अपनी राय से चलेंगे, यही तो स्वाभाविक है। और मूर्खता ? ऐसा सोचूंगा ही क्यों, फिर उसके बारे में जो वाकई मूर्ख नहीं है।"

सुचिन्ता क्षुब्ध होकर बोलीं, "नीलांजन जा रहा, तुम लोगों में से कोई उसे रोकेगा नहीं ?"

"इसमें रोकने की क्या बात है ? लोग क्या बाहर नौकरी करने नहीं जाते ?"

"इसी तरह जाते हैं ?"

निरुपम थोड़ा हँसा, "माँ, किसी के जाने के ढंग से क्या आता-जाता है। जाना ही सार है।" सुचिन्ता वैसी ही व्यग्रता से बोलीं, "नीता ने तो अपने मन का किया। दायित्व मुक्त होकर सिर्फ अपनी बात सोचकर चली गयी। मैं सुशोभन को लेकर क्या करूँगी, यह कहो।"

"अब नये सिरे से तो कुछ भी करना रहा नहीं माँ। और तुम क्या करोगी इस सवाल का भी अब समय नहीं रहा। यह सवाल पहले दिन ही करना चाहिए था।"

सुचिन्ता बुझकर खामोश हो गयी। थके हुए स्वर में बोलीं, "अच्छा, यह सब बातें रहने दो। लेकिन इसे कहना जरूरी समझती हूँ कि सुशोभन आजकल थोड़ा बहुत समझने-बूझने लगे हैं। अवहेलना, असम्मान, विरूपता आदि बातें उनकी पकड़ में आने लगी है।"

निरुपम थोड़ी चुप्पी के बाद बोला, "अवहेलना, असम्मान। कम से कम मेरी ओर से ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। होगा भी नहीं। लेकिन दूसरों के लिए मैं क्या कह सकता हूँ।"

सुचिन्ता ने आज क्या अपने लड़के के साथ लड़ना ही तय कर लिया था ? जैसा एक बार सोने के कमरे के बँटवारे को लेकर किया था ?

उनकी सभी लड़कों से तटस्थता थी। सिर्फ निरुपम से ही थोड़ी-बहुत बातचीत हो जाती थी। लेकिन बातें होती थी क्या इसलिए सुचिन्ता झगड़ा करना चाहेंगी ? —"अवहेलना, असम्मान भले ही नहीं करते होंगे, लेकिन उनके प्रति तुम लोगों का दृष्टिकोण संतोषप्रद नहीं है। इसलिए वे इस बात को कहते हैं।"

सुचिन्ता की बातों में शिकायत थी।

"संतोषप्रद !"

निरुपम ने कहा, "सन्तोष-असंतोष का सवाल अब इतने दिनों के बाद क्यों उठ रहा है, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। हम लोगों के संतुष्ट-असंतुष्ट होने से क्या आता-जाता है ? क्या तुम्हें नये सिरे से किसी बात को लेकर असुविधा हो रही है ?"

"मुझे असुविधा ? असुविधा ? क्या मैं अपनी असुविधा की बातें कर रही हूँ ?" सुचिन्ता तमतमाये चेहरे से बोली, "मेरे कहने का मतलब है कि बीच-बीच में मृगोभन की चेतना लौटने लगी है, अगर उस समय वह अपने प्रति दुराग्रह, अवहेलना की बात महसूस करके वह आहत हों और फिर से—"

"मुझे क्या करने के लिए कह रही हो, यह नहीं समझ पा रहा हूँ।"

सुचिन्ता बोली, "किसी कड़े परिश्रम की बात नहीं कह रही हूँ, थोड़ा सहृदयता पूर्ण व्यवहार करने के लिए ही कह रही हूँ। उनसे थोड़ा आत्मीय व्यवहार, बस यही—"

निरुपम ने शांत गले से कहा, "कोशिश करूँगा। भरसक कोशिश करूँगा। लेकिन अगर कुछ अधिक की ही मुझसे आशा करती हो तो यह तुम्हारी भूल होगी।"

"आशा करूँगी ? तुम लोगों से कुछ अधिक की ही आशा करूँगी ? नहीं नीरू, मैं इस दुनिया में कहीं भी किसी से कोई आशा नहीं करती, सिर्फ एक बीमार व्यक्ति के लिए—थोड़ी सहानुभूति की भीख माँग रही हूँ।"

निरुपम के चेहरे पर एक बारीक मुस्कान फूट पड़ी, "बीमार आदमी की बात सोच-सोचकर अगर स्वस्थ व्यक्ति भी बीमार होने लगे तब बताओ किसके प्रति यह करुणा और सहानुभूति प्रकट की जाएगी ? अंत में यह करुणा सहानुभूति की धारा ही सूख जाएगी।"

सुचिन्ता ने इस व्यंग्य का कोई परिहार नहीं किया ? नहीं; उन्होंने ऐसा नहीं किया। शायद वे कर ही नहीं पायीं। तीखे गले से बोलीं, "सहज ही सूख जाती है नीरू ? ऐसा नहीं होता। किन्हीं विशेष स्थितियों में पुनः करुणा की धारा फूट पड़ती है। सिर्फ गुरुजनों को अपदस्थ करने में ही इस युग में तुम लोगों की वीरता रह गई है। इसीलिए नीलांजन कहाँ जा रहा है, इसे बिना बताये घर छोड़कर चला गया, इन्द्र एक लड़की के साथ खूब घूमता-फिरता रहता है, और तुम—"

"मेरी बात रहने दो माँ। मैं पहले जैसा था, वैसा ही हूँ और वैसा ही रहूँगा।" यह कहकर निरुपम चला गया।

सुचिन्ता स्तब्ध होकर खड़ी रहीं।

लेकिन सुचिन्ता कब तक यूँ ही खड़ी रहती। घड़ी देखकर उन्हें मृगोभन के

नहाने का वक्त याद आ गया। इस बात को भूलकर वे विद्रोह करके बैठी रहतीं, सुचिन्ता के लिए यह संभव नहीं था।

मकड़ी की तरह सुचिन्ता खुद अपना ही भरम-जाल बुन रही थीं।

नीलांजन के जाने के कारण घर में स्तब्धता छा गयी थी।

यहाँ तक कि सुबल नौकर तक, जो बेडिंग-सूटकेस नीचे ले जाने के लिए खड़ा था, स्तब्ध था। नीलांजन का इस तरह से चले जाने का निर्णय सहज रूप से बाहर नौकरी के लिए जाने का निर्णय नहीं था, सब लोगों के मन में रह-रहकर यही खटक रहा था।

इन्द्रनील कृष्णा के परिवार के साथ पिकनिक पर जाने के लिए भोर ही में निकला था, अब जाकर लौटा और लौटते ही इस तरह से नीलांजन को बाहर जाते हुए देखकर चौंक गया।

इन दिनों बातें करते रहने के कारण इन्द्रनील के मन में जो एक जड़ता और संकोच घर कर गया था वह मिट चुका था। इसलिए वह तुरन्त बोल पड़ा, "बात क्या है मँझले भैया ? इसके मतलब ?"

नीलांजन ने कहा, "व्यवस्था करने लायक कोई मतलब नहीं है। बाहर एक नौकरी मिली है, वहीं जा रहा हूँ।

"बाहर ? कहाँ पर ?"

"बँगलोर में।"

अपने कमरे में सुचिन्ता ने इस संवाद से जाना कि उनका लड़का कहाँ जा रहा है।

इन्द्रनील ने कहा, 'यह तो बड़ा अच्छा हुआ। बड़े मजे से सरके जा रहे हो। जान छूट गयी।"

सुचिन्ता अपने सबसे छोटे सुपुत्र की बातें सुन रही थीं। घर छोड़कर चले जाने से मँझले भैया की जान परेशानी से छूट रही थी, अपने भाई के प्रति वह यही अभिनन्दन व्यक्त कर रहा था।

इस बात के जवाब में जो नीलांजन ने कहा उसे सुचिन्ता सुन नहीं पायी। नीलांजन की आवाज बहुत धीमी थी। उधर इन्द्रनील मुखर होकर कह रहा था, "मेरे लिए भी कोई नौकरी जुटाने की कोशिश करना। फिर मैं भी किनारा कर लूँ।"

सुचिन्ता के बेटे किनारा कसने की तैयारी में लगे थे। बाहर कोई भी नौकरी जुट जाने से ही उनके लिए रास्ता साफ हो जाएगा। यहाँ से उनकी जान छूट जायेगी।

"तुम तो मजे में हो।" नीलांजन ने अपने छोटे भाई से कहा।

"कह सकते हो। घर से जितनी देर तक बाहर रह पाने के लिए जो भी

साधना संभव है, वही करता फिर रहा हूँ। सिर्फ खाने और सोने के कारण ही यहाँ बँधा हुआ हूँ, इसकी चिन्ता से मुक्त होते ही यहाँ एक घंटा रहना भी गवारा नहीं करूँगा।"

इस बार नीलांजन ने तीखे विद्रूप भरे लहजे में कहा, "लेकिन तुम्हें क्यों इतना असहनीय लग रहा है। तुम तो अपने आचरण से सिद्धान्तवादी नहीं लगते।"

"सिद्धान्त-विद्धान्त मैं नहीं जानता मँझले भैया! जो अच्छा नहीं लगता, उसे सहन नहीं कर पाता, यही साफ बात है। खैर, जाने दो। चलो, तुम्हें गाड़ी पर चढ़ा आऊँ। भोजन कर लिया है तुमने?"

"स्टेशन में कर लूँगा।"

"स्टेशन में खा लोगे! क्यों अभी तो आठ बज रहे हैं, बिना किसी परेशानी के—"

"नहीं, वहीं सुविधाजनक होगा! सुबल इन्हें नीचे ले चलो।"

सुविनय ने निवेदन करते हुए कहा, "पहले एक टैक्सी बुला लेना उचित न होगा?

नीलांजन बोला, 'नहीं, बाहर निकलकर कोई टैक्सी पकड़ लेंगे। इन्द्र तुम चलना चाहते हो तो चलो, हालाँकि इसकी कोई जरूरत नहीं थी।"

"जरूरत तुम्हें भले न हो, मुझे है। तुम्हारा पता-ठिकाना मालूम कर लेना जरूरी है। कौन जानता है किसी दिन मुझे भी कलकत्ता छोड़कर तुम्हारे यहाँ आकर ही आश्रय लेना पड़े। मुझे तो तुमसे बेहद ईर्ष्या हो रही है।"

नीलांजन की नौकरी कैसी है, उसका भविष्य कैसा है, इन्द्रनील को इसकी परवाह नहीं थी। नीलांजन घर छोड़कर जा रहा था, उसके मतलब की यही बात थी। इतनी ही बात लेकर नीलांजन से ईर्ष्या की जा सकती थी।

"मेरी ट्रेन का वक्त हो गया है।" नीलांजन ने इतना ही कहा।

माँ के कमरे के पास पहुँचकर उसने यह सूचना दी।

इतना ही पर्याप्त था।

कोई निरपेक्ष व्यक्ति वहाँ होता तो वह नीलांजन की ही प्रशंसा करता। लड़के के बाहर जाते वक्त जो माँ अपने अहं को लेकर अपने कमरे में ही बैठी रहती है, उतावली होकर बेटे के नजदीक नहीं आती, उस माँ के प्रति किसकी सहानुभूति होगी? सभी उसे धिक्कारेंगे ही।

शास्त्रों में भी कहा है, "स्नेह निम्नगामी होता है।"

बोलचाल में भी कहा जाता है, "भले ही पुत्र कुपुत्र हो—"

नीलांजन ने इतना कहकर अपनी ओर से बहुत कुछ किया है।

लेकिन छोः छोः सुचिन्ता ने यह क्या किया?

वे अपने कमरे में ही बैठी रहीं।

बाहर निकलकर नहीं आयीं। विदा होते समय बेटे को उन्होंने आशीर्वाद भी नहीं दिया। इस छोटे से कमरे में वह कर क्या रही थीं ?

जो बाहर निकलकर आये, वे सुशोभन थे।

वे दूसरी तरफ वाले कमरे से भारी-भारी कदम रखते हुए बाहर निकल आये।

सारी चीजों पर एक बार अपनी नजरें फेरकर वे अचानक डाँटते हुए बोले, "तुम लोगों ने समझ क्या लिया है, जो सब लोग यहाँ से चले जा रहे हो ?"

उनकी बात का इन लोगों ने कोई जवाब नहीं दिया। बल्कि अवहेलना भरी नजरों से देखकर नजरें घुमा लीं। लेकिन हमेशा से खामोश रहने वाला सुबल अचानक बोल पड़ा। उसकी बातों में श्लेष था इसमें कोई संदेह नहीं था। उसने कहा—

"आप तो यहाँ हैं ही बाबू, यही पर्याप्त है।"

अचानक सुशोभन चीख पड़े, "तुम खामोश रहो। अपनी औकात न भूलो। मैं इन लड़कों से बातें कर रहा हूँ।"

"सयाना पागल बोचका आगल।' इसे बुदबुदाकर सुबल ने छोटे बेडिंग को कंधे पर रखा और चमड़े के भारी सूटकेस को हाथ में लेकर नीचे उतर गया।

सुशोभन नजदीक चले आये।

बोले, "क्या तुम लोग नीता के पास जा रहे हो ?"

इन्द्रनील ने जरा मजा लेने के लिए कहा, "नीता के पास क्यों जाऊँगा ? वहाँ जाने की हम लोगों को जरूरत क्या है ?"

"जरूरत नहीं है। नीता से मिलने की जरूरत नहीं है ? तब तुम लोगों को जाने की जरूरत ही क्या है ?"

इन्द्रनील ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा, "क्यों, जाने से तो अच्छा ही होगा। घर में इतने सारे लड़के हैं। इतने लड़के तो आपको अच्छे नहीं लगते हैं न ?"

सुशोभन ने तुरंत सहमति में सिर हिलाया, "सच कहते हो। बात सही है। लेकिन सबके चले जाने से सुचिन्ता रोने लगेगी।"

"नहीं, रोयेंगी क्यों ?" पागल को सम्मान देने की जरूरत नहीं थी, उसके सामने शिष्ट होने की भी कोई जरूरत नही थी, इसलिए इन्द्रनील तीखे स्वर में बोला, "आप तो हैं ही।"

"हाँ, मैं तो हूँ ही।" अचानक सुशोभन गंभीर होकर खीझते हुए बोले, "तुम लोगों की बातें अच्छी नहीं हैं, समझे ? बहुत खराब। आगे से अच्छी तरह से बातें करना सीखो। नीता से सीख लेना। नीता तो तुम लोगों की तरह नहीं देखती है। तुम लोगों की तरह ऐसी बातें नहीं करती है।"

भगवान जाने इन्द्रनील कुछ और कहता कि नहीं लेकिन [illegible]

दूसरी तरफ के छोटे अँधेरे कमरे के दरवाजे पर एक छायामूर्ति आकर खड़ी हो गयी। एक बेपहचानी आवाज सुनाई दी, "सुशोभन तुम अपने कमरे में जाओ। तुम्हें बाहर आने की जरूरत नहीं है।"

वह छाया फिर कमरे के अँधेरे में विलीन हो गई।

सुशोभन भी तेजी से अपने कमरे में घुसकर बिस्तरे पर बैठकर बड़बड़ाने लगे, "जरूरत नहीं है! जरूरत नहीं है! जरूरत नहीं है मतलब? उनके जाने के बाद तुम अकेली बैठकर रोओगी, क्या मैं इस बात को नहीं जानता हूँ? वे तुम्हें प्यार नहीं करते, हमेशा डाँटते रहते हैं, फिर भी तुम उनके लिए आँसू बहाओगी। सुचिन्ता, अब अधिक बेवकूफ मत बनो।"

उस खामोश मकान से नीलांजन और इन्द्रनील खामोशी से निकल गये।

नीता इस परिवार की लड़की नहीं थी। लेकिन नीता के चले जाने के साथ-साथ जैसे बहुत बड़ा शून्य महसूस होने लगा था। ऐसी स्थिति में नीलांजन का घर से चला जाना किसी को महसूस ही नहीं हुआ।

नीलांजन कल रात में चला गया था। दिनचर्या में सुबह से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नीलांजन के कमरे के दरवाजे पर बादामी रंग का भारी पर्दा जैसे लटकता था, वैसे ही लटकता रहा। उसके दूसरी ओर एक भयंकर खालीपन विराजमान था, उसे बाहर से देखकर बिल्कुल नहीं महसूस किया जा सकता था।

नीलांजन के घर में न होने को सिर्फ सुबल ने ही महसूस किया, खासकर सुबह चाय के वक्त और भात पकाने के वक्त।

लेकिन शायद सुचिन्ता भी नीलांजन के जाने को, उसके चले जाने को महसूस करना चाहती थी इसलिए नीलांजन के कमरे का पर्दा हटाकर वह भीतर चली गयी।

नहीं सुचिन्ता की इस दुर्बलता पर किसी की नजर नहीं थी।

थोड़ी देर पहले ही निरुपम सुशोभन को डॉक्टर के पास ले गया था। इन्द्रनील किसी को कुछ बताए बिना कहीं गया था। नौकरानी काम करके चली गयी थी और सुबल को सुचिन्ता ने अभी-अभी फल लाने के लिए बाजार भेजा था।

फिर भी सुचिन्ता को जाने कैसा डर लग रहा था।

जैसे सुचिन्ता की इस कमजोरी को कहीं से कोई देखकर हँस पड़ेगा। असाधारण होना कितना कष्टकर होता है! साधारण होने में बड़ा सुख रहता है।

साधारण होती सुचिन्ता तो अभी वे लड़के की चारपाई की पटिया पर अपना सिर रखकर रो सकती, जिस चारपाई से तोशक, तकिया और चादर वह ले गया था। सिर्फ दरी बिछी हुई थी।

नीलांजन की कठोरता बिल्कुल आँखों के सामने थी। —नंगी चारपाई के प्रतीक रूप में।

सुचिन्ता इस पर बैठ न सकीं।

कुर्सी पर भी नहीं। कहीं पर भी बैठ नहीं सकीं। वे सिर्फ सारी चीजों को स्तब्ध होकर देखती रहीं। नीलांजन की मेज-कुर्सी, छोटी आलमारी, कपड़े का रेक, बुककेस, तिपाई, टेबल लैम्प—मतलब सारी चीजें पड़ी हुई थीं।

यहाँ तक कि चारपाई के नीचे उसकी मन पसंद पैर पोछने वाली मैट भी खामोश पड़ी हुई थी। सामानों का जरा-सा भी इधर-उधर होना नीलांजन को पसंद नहीं था। अब इन सबके बिना उसका काम कैसे चलेगा?

क्या वह सारी चीजें फिर से जुटा लेगा?

पुरानी चीजों को मिट्टी के ढेले की तरह फेंककर क्या वह फिर से नया संग्रह करने के नशे में डूब जाएगा?

फिर भी कोई उसकी निन्दा नहीं करेगा! यह कोई नहीं कहेगा कि नीलांजन यह तुम क्या कर रहे हो?"

नीलांजन कहेगा 'मेरे लिए असहनीय हो गया था'—चार जने समर्थन में कहेंगे—

"ठीक ही किया। क्या उस हालत में रहा जा सकता था?"

सुचिन्ता सोचने लगीं, वह फिर से सारी चीजें इकट्ठी कर लेगा। इसके साथ ही सोचने लगीं कि नीलांजन के चले जाने के पीछे क्या वाकई वे ही जिम्मेदार थीं?"

नीता की तरफ बहुत बार कई तरह की नजरों से सुचिन्ता के लड़के ने दृष्टिपात किया था। क्या उस पर सुचिन्ता ने गौर नहीं किया था?

क्या सुचिन्ता नीता को अभिशाप देंगी?

क्या नीलांजन लौटकर नहीं आएगा?

नीलांजन की किताबें तो यहीं पड़ी हुई थीं।

कभी न कभी वह किसी अवकाश में इन किताबों के लिए घर जरूर आयेगा उस दिन क्या सुचिन्ता सहज सामान्य हो पाएँगी? अपने लड़के का हाथ पकड़ कर कहेंगी, "अब तुम नहीं जाओगे। तुम्हारे जाने से मुझे तकलीफ होगी।"

लेकिन सुचिन्ता ऐसा कह नहीं पायेंगी।

फिर भी सुचिन्ता चारपाई के पटिये पर हाथ रखकर स्तब्ध होकर सामने रखे कपड़े के रैक की ओर एकटक देखे जा रही थीं रैक बिल्कुल खाली था बल्कि उसके खालीपन को बढ़ाने के लिए ही जैसे उसके निचले रॉड पर एक फटा हुआ तौलिया और अधमैली बनियान झूल रही थी। इनको बेकार समझकर नीलांजन फेंक गया था।

ठीक उस समय शायद सुचिन्ता के गालों की चमड़ी की सम्वेदना खत्म हो गयी रही होगी, फिर सामने कोई शीशा भी नहीं था इसलिए सुचिन्ता को महसूस नहीं हो रहा था कि उनके गालों से होती हुई आँसुओं की अविरल धारा बह रही था।

"माँ !"

सुचिन्ता चौंक गयीं।

घर में कोई नहीं था, इस तरह से उन्हें किसने बुलाया ? और 'माँ' कह-कर ही क्यों बुलाया ? सुचिन्ता के लड़के तो कभी इस तरह से 'माँ' कहकर बात नहीं करते !

क्या यह आवाज सुचिन्ता के मन की व्याकुलता और उनकी कामना की आवाज थी ? उनका हृदय बुरी तरह धड़कने लगा।

सुचिन्ता झटपट उस कमरे से बाहर चली आयी। उन्होंने देखा सामने ही निरुपम और सुशोभन खड़े हुए थे। वे लोग लौट आये थे। सुचिन्ता बहुत देर तक अन्यमनस्क रही थीं ? लेकिन क्या निरुपम ने ही सुचिन्ता को इस तरह से बुलाया था ?

वे समझ नहीं पायीं। सुशोभन आगे बढ़ आये, "तुम कैसी अन्यमनस्क थीं सुचिन्ता ? सारा मकान खुला पड़ा है। हम लोग आकर तुम्हें ढूँढ रहे थे और तुम्हें पता ही नहीं चला। अगर कोई चोर आकर तुम्हारा सब कुछ चुरा ले जाता, तब ?"

"चोर मेरा क्या ले जाता ?"

निरुपम चुपचाप अपने कमरे में चला गया। उस ओर सुचिन्ता ने देखा, फिर नजरें घुमाते हुए बोलीं, "चलो, तुम्हारे भोजन का समय हो गया है।" गालों की संवेदना शायद लौट आयी थी, इसलिए वे उसे दूसरों की नजरों से छिपाने की कोशिश कर रही थीं।

"हो जाएगा, हो जाएगा।" सुशोभन ने कहा, "तुम्हें तो सिर्फ भोजन की चिंता पड़ी रहती है। जरा बैठो न, थोड़ी देर।"

"अच्छा बैठ गयी। अब कहो तुम क्या कहना चाहते थे ?" सुचिन्ता बोलीं।

सुशोभन गंभीर होकर बोले, "इस तरह से क्या कहा जा सकता है ? सब गड़बड़ा जाता है। लेकिन अभी तो तुम रो रही थीं सुचिन्ता। फिर भी—"

"बड़ी आफत है सुशोभन। मैं रोऊँगी क्यों ? हर समय तुम मुझे रोते हुए ही देखते हो।"

"नहीं रो रही थी ? तब ठीक है। लेकिन तुम्हारा चेहरा काफी बदला हुआ लग रहा है। पहले तो लगता था—दिनाजपुर में तुम हरदम हँसमुख बनी

रहती थीं और इस समय हरदम लगता है तुम रो रही हो। लेकिन सुचिन्ता तुम्हारा यह बड़ा लड़का बिल्कुल गुस्सैल नहीं है। उसने मेरा काफी ख्याल रखा था। मेरा सम्मान भी किया था।"

"तुम्हारा ख्याल रखा था! सम्मान किया था!"

"हाँ, वह मेरी नीता को भी प्यार करता है।"

सहसा मन के सारे बोझ को फेंककर सुचिन्ता खिलखिला पड़ीं। बोली, "अच्छा यह बात है? लेकिन यह बात तुम्हें मालूम कैसे हुई? क्या उसने तुम्हें बताया था?"

सुशोभन असंतुष्ट लहजे में बोले, "मुझे क्यों कहेगा? न कहने से क्या समझा ही नहीं जा सकता? यूँ ही नहीं कहता कि तुम मुझे पागल समझती हो सुचिन्ता।"

लेकिन अब तो लग रहा था कि सुचिन्ता ही पागलपन कर रही थीं। इसीलिए अचानक सुशोभन के एकदम नजदीक जाकर बोलीं, "पागल क्यों समझूँगी? बिना बताये हुए तुम समझ कैसे लेते हो, जरा यही जानना चाहती हूँ। मुझी को लो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ कि नहीं, क्या तुम इसे समझ पाते हो?"

सुशोभन कुछ और गंभीर हो गये। धीरे से उन्होंने सुचिन्ता को हटाया और थोड़ी दूरी बनाकर बोले, "बिल्कुल समझता हूँ। लेकिन मेरे इतने नजदीक तुम्हें नहीं आना चाहिए सुचिन्ता, नहीं तो तुम्हारे बेटे तुमसे नाराज होकर यहाँ से चले जाएँगे।"

अचानक सुचिन्ता झल्लाकर चीख पड़ीं, "जाएँ, सभी चले जाएँ। मैं अब किसी की नाराजगी की परवाह नहीं करूँगी। आखिर करूँ भी क्यों? वे सब प्रेम कर सकते हैं, जिससे चाहें अपनी इच्छानुसार प्रेम कर सकते है, सिर्फ मेरे वक्त ही यह अपराध हो जाता है?"

सुशोभन थोड़ा डर गये।

भयभीत होकर बोले, "सुचिन्ता तुम भी नाराज होने लगी हो? किसी को नाराज देखकर मेरे दिमाग में रेलगाड़ी चलने की-सी घड़घड़ाहट होने लगती है। तुम्हें नहीं लगती?"

लेकिन रेलगाड़ी की घड़घड़ाहट क्या सिर्फ दिमाग में ही होती है? सिर्फ सुशोभन के दिमाग में? क्या यह घड़घड़ाहट सुचिन्ता के दिल में नहीं होती? कभी रेलगाड़ी चलने की तरह होती है तो कभी हथौड़ी के आघात की तरह।

लेकिन सुचिन्ता का दिमाग खराब नहीं है, इसलिए तो इनको अपने दिल में दबाकर उन्हें निरुपम के पास जाकर खड़ा होना पड़ता है, "डॉक्टर पालित ने क्या कहा? इस बार तो उन्होंने काफी दिनों के बाद देखा था।"

निरुपम ने हाथ की पुस्तक मोड़कर सिर उठाकर कहा, "उनके अनुसार तो आशाजनक सुधार हुआ है।"

"आशाजनक सुधार देखा।"

"यही तो कहा। और यह एक नयी दवा भी दी है—" सामने टेबल से एक पैक की हुई शीशी लेकर निरुपम ने सुचिन्ता की ओर बढ़ा दी। बोला, "कैप्सूल टैबलेट। रोज सोने से पहले एक।"

सुचिन्ता जैसे कुछ और सुनना चाहती थीं, कुछ विस्तार से, यही कि डॉक्टर ने किस सूत्र से यह जाना कि रोगी की आशाजनक उन्नति हो रही है।

माँ को चुपचाप खड़े देखकर जाने क्या सोचकर वह थोड़ा घरेलू अंदाज में बोला, "दवा नयी निकली है। डॉक्टरों के सर्किल में इस दवा को लेकर काफी हलचल है।"

विशेषकर कमजोर स्नायु वालों को इससे काफी फायदा हुआ है, मतलब हताश और अवसादग्रस्त रोगी भी—"

"डॉक्टर ने उनको किस वर्ग मे डाला है?" सुचिन्ता बीच मे ही बोल पड़ीं।

निरुपम ने कोमल लहजे में कहा, "उन लोगों के ढेरों वर्गीकरण हैं। ठीक इस तरह से तो मैंने उनसे नही पूछा लेकिन जैसा उन्होंने मुझे समझाया कि जिस तरह से धूप प्रखर होते रहने से कुहासा कट जाता है ठीक उसी तरह से बुद्धि पर जो विस्मृति का कुहासा छा जाता है उसको काटकर किसी प्रक्रिया से फिर से चेतना विकसित होती है। इस दवा से गहरी नींद आती है जिस कारण स्नायुओं को गहरे विश्राम का अवसर मिलता है। इससे उनकी ताक़त धीरे-धीरे लौट आती है।"

क्या माँ के प्रति निरुपम के मन में करुणा उमड़ पड़ी थी?

सुचिन्ता के गाल से आँसुओं का दाग क्या अभी तक नहीं मिट पाया था? क्या इसीलिए निरुपम अपनी माँ से इतने घरेलू लहजे मे बातचीत कर रहा था?

"नीता की चिट्ठी आने का अभी समय नही हुआ क्या?"

"हुआ तो है। अगर उसने चिट्ठी भेजी हो तो।"

"बस वही टेलिग्राम आया था।" कहकर सुचिन्ता एकटक देखती रही। क्या सुचिन्ता यह देख रही थी कि एक पागल ने कैसे यह महसूस कर लिया था कि उनका बड़ा लड़का उनकी लड़की के प्रेम में पड़ गया है।

लेकिन निरुपम के चेहरे से सुचिन्ता को कोई भी आभास नहीं मिला।

उसने अपने हाथ की पुस्तक पर फिर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए कहा, "हूँ।"

कृष्णा के माँ-बाप इन्द्रनील पर दबाव डालने लगे थे।

अगर शादी करनी है तो चटपट कर डालो। हम लोगों की लड़की के साथ हरदम घूमते रहोगे और शादी की बात दर-किनार रखोगे, ऐसा नही होगा। पिकनिक के दिन ही यह बात बिल्कुल साफ़-साफ़ कह दी गयी थी।

लेकिन इन्द्रनील ने उस दिन की अपनी बात के विपरीत बात कही, "इस समय कैसे शादी की जा सकती है?"

कृष्णा की माँ गंभीर होकर बोलीं, "कैसे मतलब? अग्नि नारायण को साक्षी करके और कैसे। तुम लोग हमारी बिरादरी के ही हो, यही हम लोगों का पुण्यफल है?"

"अभी तो मेरे बड़े भाइयों की शादी नहीं हुई।"

कृष्णा की माँ लीला कुछ और गंभीर होकर बोलीं, "बड़े भाइयों की शादी नहीं हुई तो क्या हुआ, तुम भी तो बड़े हो गये हो।"

"शादी कुछ दिन और बाद करने से आप लोगों को क्या आपत्ति हो सकती है?"

"बहुत आपत्ति है। शत-प्रतिशत आपत्ति है। मूल बात है, अचानक किसी दिन शादी की अनिवार्यता के कारण तुम दोनों रजिस्ट्री मैरेज करके चले जाओगे, ऐसा हमें पसंद नहीं है। तुम लोगों की किसी तरह की स्वाधीनता में कभी हम लोगों ने हस्तक्षेप नहीं किया, किसी बात में बाधा नहीं दी, इसलिए हम लोगों की भी यह बात तुम्हें माननी चाहिए।"

इस पर भी इन्द्रनील ने कहा था, "इस समय क्या देखकर आप अपनी लड़की मुझे देना चाहती हैं?"

इस बार कृष्णा के पिता बोले थे। कृष्णा की माँ से भी कहीं अधिक गंभीर होकर। "लड़की देने का प्रश्न अब इस स्थिति में हास्यास्पद लगता है। सिर्फ सामाजिकता की रक्षा के लिए। कन्यादान का दिखावा करना होगा। क्योंकि सभी सब कुछ जानते हैं, सब समझते हैं फिर भी इस नाटक से ही समाज में अपना मुँह दिखलाने लायक रखा जा सकता है।"

"लेकिन विवाह के बाद पत्नी का दायित्व वहन करना भी मेरा कर्त्तव्य होना चाहिए।"

"कर्त्तव्य का निर्वाह बहुत अच्छी बात है", कृष्णा के पिता बोले, "लेकिन उसके निर्वाह के बिना इस तरह से प्रेम करते रहना मेरी राय में सबसे अनुचित काम है, मूर्खता की चरम परिणति। ठीक है, सोच लो अगर मेरी लड़की से शादी करने की क्षमता अभी तुममें नहीं है तो फिर मेरी लड़की से मिलना-जुलना बंद कर दो।"

यह सुनकर कृष्णा अपनी आँखों पर रूमाल रखकर सिसकने लगी थी।

यह देखकर कन्यावत्सला माँ को तुरंत कहना पड़ा था, "मतलब यह कि उन्होंने कहा था, "पत्नी को खिलाने की चिंता तुम्हें अभी से करने की जरूरत नहीं है बेटा। कृष्णा हम लोगों की इकलौती लड़की है, हम लोगों का जो भी है, वह सब कृष्णा का ही है—इसे तो तुम जानते ही हो।"

"लेकिन एकदम से स्टूडेंट लाइफ में शादी कर लेना, यह कैसे संभव हो सकता है, मैं यही सोच रहा हूँ"—इन्द्रनील ने कहा था।

यह सुनकर कृष्णा के पिता बेहद नाराज होकर बोले, "अगर स्टूडेंट लाइफ में प्रेम करके घूमना-फिरना चल सकता है तो फिर शादी में ही कौन-सी बाधा है, मैं यही नहीं समझ पा रहा हूँ। शादी करने लायक साहस नहीं है मगर भले घर की लड़की के साथ मिलने-जुलने का शौक काफी है—क्या यह हास्यास्पद नहीं है ?"

इन्द्रनील ने आरक्त चेहरे से कहा, "वाग्दत्त होकर क्या कोई दो-चार साल इन्तजार नहीं कर सकता ?"

"वह जहाँ होता होगा और जो उसका अनुसरण करते होंगे, मैं उनमें से नहीं हूँ। मैं जो तुमसे अपनी लड़की की शादी की बात चला रहा हूँ, इसे मैं बहुत मजबूर होकर ही कह रहा हूँ। तुमसे कहीं अधिक अच्छे लड़के के हाथ में मैं अपनी लड़की का हाथ दे सकता था।"

इन्द्रनील मुस्कराकर बोला, " 'देने' शब्द पर ही तो आपको आपत्ति थी।"

कृष्णा के पिता ने जलती हुई आँखों से ताकते हुए कहा, "हाँ, जिसे तुम लोग जान गये हो। तुम लोग, इस युग की संतानें, हम लोगों की मजबूरी का फायदा उठा रहे हो। इस समय के माँ-बाप की मजबूरी को सिर्फ कानून का डर ही मत समझना। माता-पिता मजबूर होते हैं अपनी ममता के कारण। लड़की के भले-बुरे की बातें सोचते रहने के कारण ही ऐसी मजबूरी होती है। पुराने दिन होते तो ऐसी लड़की को ताले में बन्द कर दिया गया होता। या हाथ-पैर बाँधकर जहाँ चाहते वहीं इसकी शादी कर देते।" यह कहकर अपनी जलती हुई नजरों से लड़की की ओर कटाक्ष करके वे वहाँ से हट गये।

कृष्णा बैठी हुई रूमाल से अपनी आँखें पोंछ रही थी। कृष्णा की माँ ने बेटी को सांत्वना देकर समझा दिया था। इसके बाद पिकनिक के शोरगुल में सभी व्यस्त हो गये।

उनमें से कोई लड़का ताश का जादू दिखलाने लगा। कोई दूसरा हाथ देखने लगा था। हाथ दिखलाने के लिए सभी आग्रही थे। उसने कृष्णा का हाथ देखकर कहा कि कृष्णा का विवाह शीघ्र ही होने वाला है और इन्द्रनील के बारे में बताया कि इसके हाथ में विवाह की रेखा ही नहीं थी। इस बात को लेकर बड़ा मजा हुआ। इन्द्रनील ने दृढ़ होकर कहा था कि वह भविष्य में इसे साबित कर दिखाएगा कि इन रेखाओं की बात गलत है। भविष्य बाँचने वाला कृष्णा का मौसेरा भाई था। वह मौका निकालकर झटपट कृष्णा की माँ तक यह सूचना पहुँचा पाया कि, "मँझली-मौसी, तुम्हारी लड़की की शादी के मसले को मैंने गति दे दी है।"

सारा दिन खूब शोर-गुल, हँसी-मजाक में बीत गया। कृष्णा के पिता भी किसी के साथ शतरंज खेलने में जुट गये थे।

उस दिन इन्द्रनील खूब खुश होकर घर लौटा था। लेकिन घर आकर उसने पाया कि वहाँ की फिजा ही एकदम बदली हुई थी।

हालांकि इधर काफी दिनों से आबहवा अनुकूल नहीं थी। लेकिन नीलांजन के अचानक चले जाने जैसी आबहवा भी नहीं थी।

तब उस समय किससे कृष्णा के पिताजी के प्रस्ताव की चर्चा करता ?

इन्द्रनील का घर भी विचित्र था।

बंगाल के हजारों घरों से तुलना करने पर भी ऐसा घर नहीं मिलेगा।

एकदम अतुलनीय था।

नीता अगर ऐसे समय इस तरह से विदेश न चली गयी होती।

नीता इन लोगों की कोई नहीं थी, लेकिन इन थोड़े से ही दिनों में नीता जैसे इनके घर-परिवार की सदस्य बन गयी थी।

इन्द्रनील ने कई दिनों तक इस पर विचार किया।

सोच-सोचकर वह जाकर एक दिन उस घर में जाकर कह भी आया, "आ
लोगों की जैसी खुशी हो वैसी व्यवस्था कीजिए। लेकिन मेरे घर से आप लोग
को न कोई सहायता मिलेगी। और न कोई सहयोगिता ही अगर इसमें आप
न हो तो परंपरागत हिन्दू विवाह में मुझे कोई दिक्कत नहीं है। सिर्फ कृपा कर
शादी के मुकुट-वुकुट को अलग ही रख दीजिएगा।"

कृष्णा की माँ भौंहें सिकोड़कर बोलीं, "चीज कोई भी नहीं छोड़ी जाए
तुम लोगों की तरह दुनिया में अकेला घर मेरा तो नहीं है। ठीक है मेरे
मकान से ही शुद्धि श्राद्ध आभ्युदयिक वगैरह सभी हो जाएँगे।"

इन्द्रनील चौंकता हुआ बोला, "श्राद्ध मतलब ? श्राद्ध क्या है ?"

कृष्णा की माँ ने क्षण भर भावी जामाता की ओर देखा फिर बोलीं, "
नहीं जानते ? शादी के समय लड़की की माँ को श्राद्ध करना पड़ता है। पहले
नहीं सुना ?"

होने वाली सास के इस श्राद्ध-कौतुक को अच्छी तरह न समझने के
इन्द्रनील कृष्णा के पास जाकर बोला, "ऐसे अर्थहीन बेमतलब के अ
अनुष्ठान की भला क्या जरूरत है, बता सकती हो ?"

"बिल्कुल जरूरत है।" कृष्णा ने तर्क करते हुए कहा, "क्यों न
दुनिया में हर जगह, हर सभ्य या पिछड़ी जातियों में शादी के वक्त त
के अनुष्ठान होते हैं।"

"लेकिन यह नाई, पंडित, श्राद्ध, पिंड—"

"इससे कुछ मतलब नहीं, विवाह के उपलक्ष्य में समाज के सभी वर्गों के लोगों की थोड़ी-बहुत आमदनी हो जाए बस यही बात है।"

"इसका मतलब सारी जनता को घूस देकर शादी की अनुमति ले के लिए प्रार्थना करनी होगी।"

"घूस क्यों ? उन्हें 'प्रसन्न किया' कह सकते हो। सभी को प्रसन्न करके और सभी की शुभ कामनाएँ लेकर जीवन में आगे बढ़ने की कामना की जाती है। यही असली बात है।"

"उस युग में इसकी जरूरत रही होगी, लेकिन अब यह बिल्कुल बेकार है।"

"होने दो—" कृष्णा ने नखरे से कहा, "कांट्रेक्ट पर दस्तखत करके शादी कर लेना मुझे अच्छा नहीं लगता है। शादी भी भला कोई व्यवसाय या दुकानदारी है ?"

इन्द्रनील मुस्कराकर बोला, "नहीं है मतलब ? बिल्कुल ऐसा ही है।"

"ऐसा ही है ?"

"क्यों नहीं ! तुम लोगों की शादियों के मंत्र क्या हैं ? 'मेरा हृदय तुम्हारा हो' कहकर दान-पत्र लिखने के साथ ही साथ क्लेम भी किया जाता है, खैर यह तो ठीक है, लेकिन इसके बदले 'तुम्हारा हृदय भी मेरा हो।' क्या "बिल्कुल एकतरफा नहीं है, और जो एकतरफा नहीं है। वही व्यवसाय है।"

"बहुत खूब ! तर्क जोरदार है।"

"खंडन कर सकती हो ?"

"कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम्हें देखकर लगता है कि तुम पर ज्यादती की जा रही है। मैं इससे खुद को अपमानित महसूस कर रही हूँ, यह जानते हो न ?"

"लड़कियाँ तो जाने किन-किन बातों से अपने को अपमानित महसूस करती रहती हैं। समझ लो, अगर मैं कह बैठूँ कि तुम्हारे चेहरे का सौंदर्य तुम्हारा नहीं है, नकल किया हुआ है, भौंहें नकली हैं, आँखें कटावदार बनायी गयी हैं, ओंठ रंगीन हैं, गालों पर पुताई हुई है, यह सब सुनकर तो तुम्हारे अपमान की पराकाष्ठा ही हो जायेगी।"

कृष्णा ने तीखे गले से कहा, "बिल्कुल नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारा अभियोग आधारहीन है।"

"आधारहीन है। तुम कहना चाहती हो तुम्हारे चेहरे पर जो भी है सब वास्तविक है।"

"चाहने का क्या मतलब ?" कृष्णा रुआंसी होकर रूमाल से अपनी भौंहें घिसने लगी। देखो, नकली भौंहों को मिटा पाते हो कि नहीं। देखो, आँखों पर भी कोई कारीगरी की गई है या—"

"बस, बस, बहुत हुआ।" इन्द्रनील हँस पड़ा—"अगर ये सब तुम्हारी अपनी चीजें हैं तो अब एक दिन के लिए भी तुम्हें दूसरे बर्बर पुरुषों की नजरों के सामने अकेला नहीं छोड़ा जा सकता। इन दिनों बाजार में ऐसी खालिस चीजें मिलनी दुर्लभ है।"

झूठमूठ के झगड़े से उबर कर फिर से दोनों हँसी-खुशी भरे मूड में आ गये। कृष्णा सोचने लगी कि इस बेपरवाह स्वभाव के कारण ही मैं इस पर मुग्ध हूँ। अगर वह गद्‌गद होकर हर समय प्रेम के डायलॉग बोलता रहता तो शायद मैं बर्दाश्त नहीं कर पाती। उधर इन्द्रनील सोच रहा था, मारो गोली सब को, जो होता है होने दो। घर की आबहवा अब बर्दाश्त नहीं होती।"

इन्द्रनील घर में कम ही रहता। जितनी भी देर रहता वह मुँह बनाए रहता मानो उसे जबरन नीम का काढ़ा पिला दिया गया हो।

सुचिन्ता सुशोभन के सामने बैठकर अखबार पढ़ रही थीं। वह सुशोभन के सान्निध्य में बिल्कुल डूबी हुई थीं। इस दृश्य को हजारों तर्क देकर भी प्रसन्नचित होकर सहा नहीं जा सकता था।

नीता के पिता होने के नाते सुशोभन के प्रति जो भी सहानुभूति उत्पन्न होती वह सब माँ का प्रेमी होने के नाते क्षण भर में खत्म हो जाती थी।

इधर सुचिन्ता भी जैसे पहले से अधिक साहसी हो गयी थीं। कहीं अधिक लापरवाह हो गयी थीं। लड़कों की पसंद-नापसंद की वह अब अधिक परवाह नहीं करती थीं।

"नीता की चिट्ठी।"

चिट्ठी सामने की मेज पर रखकर निरुपम चला गया। उसी मेज के आमने-सामने सुशोभन और सुचिन्ता बैठे हुए थे। सुचिन्ता की आँखों के सामने एक पुस्तक खुली हुई थी। शायद वे उसे सुशोभन को पढ़कर सुना रही थीं। जिसे देखकर सुचिन्ता के बड़े लड़के की शांत दृष्टि शायद कुछ तीखी हो गयी थी।

नीता की चिट्ठी!

सुचिन्ता खिल उठीं। उन्होंने उसे झपट कर उठा लिया। लेकिन तब तक सुशोभन ने झुककर चिट्ठी ले ली थी।—"नीता की चिट्ठी। क्या उसने मेरी बात लिखी है?"

सुशोभन का चिट्ठी वाला हाथ काँपने लगा। उन्होंने कई बार सरसरी नजर से चिट्ठी पर आँखें फेरने के बाद हताश होकर कहा, "नीता ने इतना ढेर सारा क्या लिखा है। कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

वे समझ जाएँगे इसकी आशा किसी ने भी नहीं की थी।

सुबह अखबार आते ही वे सबसे पहले उसे उठाकर उस पर अपनी नजरें गड़ा देते लेकिन थोड़ी देर बाद ही उसे फेंककर अपने माथे पर हाथ फेरते हुए कहते, "इतनी ढेर सारी बातें लिखने की क्या जरूरत है जिनका मतलब ही समझ में न आये।"

सुचिन्ता मुस्कराकर कहती, "क्यों तुम्हें क्या ये सब बेकार बातें लिखी हुई लगती हैं?"

"बेकार नहीं हैं?" सुशोभन तैश में आकर कहते, "पढ़ते समय दिमाग में जाने कैसा गड्डमड्ड हो जाता है। यह बात तुम्हें नजर नहीं आती?"

सुचिन्ता ने नजरें उठायी, फिर बोली,' 'दिमाग में जो कुछ होता है, क्या वह नजर आता है?"

"नजर नहीं आता? वाह खूब कहा कि नजर नहीं आता।"

"मुझे तो नजर नहीं आता। तुम देख सकते हो? मेरे दिमाग में क्या हो रहा है इसे क्या तुम देख पा रहे हो?"

सुशोभन अचानक खिलखिला पड़े। हँसते-हँसते उनका चेहरा लाल हो गया। बोले, "सुचिन्ता तुम्हारी बातें ठीक पागलों जैसी लगती हैं।"

कमरे के अंदर बैठे हुए बड़े लड़के का चेहरा भी यह सोचकर लाल हो उठता है कि इस तरह से ठठाकर हँसने लायक कौन-सी बातें अखबार में लिखी होती हैं। निरुपम ने आज भी अपने कमरे में बैठे-बैठे हँसने की आवाज सुनी। सोचा नीता की चिट्ठी में इस तरह से हँसने की क्या बात लिखी हुई है?

कई बार पढ़ी हुई चिट्ठी को निरुपम ने फिर ध्यान से देखा।

नीता ने लिखा था कि सागरमय को होश जरूर आ गया है और मृत्यु की आशंका भी अब शायद नहीं है। लेकिन डॉक्टरों ने आशंका व्यक्त की है कि अब वह दुनिया को अपनी आँखों से देख नहीं पायेगा। आधुनिक विज्ञान ने भी सागरमय की आँखें वापस दिलाने के बारे में संदेह व्यक्त किया है। सबसे अधिक चोट आँखों को ही लगी थी।

नीता ने यह भी सूचना दी थी कि सागरमय की हालत जरा-सा भी सुधरते ही वे लोग उसे सागर मार्ग से वापस ले आयेंगे। वे लोगों से मतलब नीता और सागर के दोस्त शिशिर से था। शिशिर इस दुर्घटना के दौरान बहुत ही अन्तरग हो गया था। सागरमय की ऐसी हालत देखकर अपना कांटिनेंटल टूर का प्रोग्राम कैंसिल करके सागर को देश पहुँचाने के लिए उसने नीता की मदद करना तय कर लिया था। शिशिर के अध्ययन की मियाद भी पूरी हो गई थी, यही तकदीर की बात थी।

इसके बाद नीता सुशोभन के बारे में जानने के लिए उतावली और व्यग्र हो

उठी थीं। डॉक्टर ने क्या कहा, हालत अब कैसी है, नीता के न रहने के कारण कोई नया उपसर्ग तो नजर नहीं आया ? आदि-आदि।

नीता के न रहने पर।

निरुपम ने सोचा अगर लक्षण बदले भी हैं तो इस पागल आदमी के नहीं बल्कि स्वस्थ व्यक्तियों के ही बदले हैं। अब सुचिन्ता ही बेपरवाह हो गयी थीं। नहीं तो क्या रोगी के कमरे में रात बारह बजे तक नीली बत्ती जलाकर वे उसे सुलाने की कोशिश करतीं। कमरे में किसी के न होने पर क्या सुशोभन को नींद नहीं आती थी ?

बल्कि आगे खराब लगने वाली किसी भी बात पर सुचिन्ता कैफियत देने की कोशिश करती थीं। लड़कों के ध्यान न देने के बावजूद वे कोशिश करती थीं। लेकिन अब ?···सोचने-विचारने के वक्त जैसे फिर एक हथौड़ी की चोट की गयी हो।

सुशोभन इस बार पुनः अट्टहास कर उठे थे। वही आवाज हथौड़ी की चोट जैसी महसूस हुई थी। इसके साथ ही साथ दिमाग के रेशे-रेशे में पिन चुभोने जैसी एक और मधुर तीखी हँसी की ध्वनि सुनाई पड़ी।

नीता ने जो पत्र सुचिन्ता को दिया था उसमें क्या वाकई कोई ऐसा उल्लास-जनक समाचार था ? न होता तो इतना हँसने की क्या बात थी ?

लेकिन नीता ने ऐसा कुछ भी नहीं लिखा था। उसमें भी वही था जो निरुपम के पत्र में था। सिर्फ सुचिन्ता को लिखा था, एक अलग चिट्ठी में बड़े भैया को डॉक्टर पालित के बारे में पत्र लिख रही हूँ। सुचिन्ता के पत्र में भी वही सागरमय के दुर्भाग्य की बात लिखी हुई थी।

लेकिन वह चिट्ठी सुचिन्ता पढ़ पाये तब न ?

एक पंक्ति पढ़ते न पढ़ते सुशोभन असहिष्णु होकर सुचिन्ता के चिट्ठी वाले हाथ को हिलाते हुए बोले, "यह क्या सुचिन्ता ? तुम मन-ही-मन में क्यों पढ़ रही हो ? जोर-जोर से नहीं पढ़ सकती ? नीता की चिट्ठी तुम मन-ही-मन पढ़ोगी ?"

सुचिन्ता ने चिट्ठी से नजरें हटाकर कहा, "जरा रुको, पहले मैं पढ़ तो लूं, फिर जोर-जोर से भी पढ़ूंगी।"

सुशोभन ने धैर्यपूर्वक बैठे रहने की भंगिमा बनायी। इन्तजार करने की मुद्रा में दो-चार कदम चहलकदमी भी की, लेकिन यह सब क्षण भर के ही लिए था। इसके बाद दुबारा जल्दी मचाने लगे। बोले, "क्या हुआ सुचिन्ता ? तुम चोरी-चोरी नीता की चिट्ठी पढ़ रही हो ? तुम्हारा मतलब क्या है ?"

थोड़ा अनुनय करके सुचिन्ता ने फिर से दो-एक पंक्तियां पढ़ी ही थीं कि

अचानक सुशोभन ने उसके हाथ से चिट्ठी खींच ली और उसे लेकर मुट्ठियों में भींचने लगे।

"अरे, यह क्या कर रहे हो ?"

सुचिन्ता ने हड़बड़ाकर चिट्ठी छीनने की कोशिश की लेकिन पागल से भी भला कोई छीना-झपटी में जीत सका है ?

अचानक सुशोभन कुर्सी लाँघते हुए मेज पर चढ़कर चिट्ठी वाला हाथ ऊँचा उठाकर बोले, अट्टहास करते हुए बोले, "क्यों ? मेरे साथ जोर-आजमाइश करके जीत सकती हो ?"

"दुहाई है सुशोभन चिट्ठी को मसलकर मत फेंको। उसे मुझे दे दो। मुझे पढ़ने दो। उसका हाल जानने के लिए मैं उतावली हूँ। अच्छा मैं जोर से पढ़ूँगी। उसे मुझे दे दो।"

सुचिन्ता नजरें ऊपर उठाए हुए खड़ी-खड़ी अनुनय करती रही। शायद पागल के लिए यह घटना बहुत मजेदार रही हो इसलिए मजे से प्रफुल्लित होकर उन्होंने अपने हाथ को और ऊँचा उठा दिया, बल्कि वे अपने पंजों पर और उठ गये। सुचिन्ता चिट्ठी की बात भूलकर सुशोभन कहीं गिर न पड़े, यही सोचकर वे परेशान होने लगी। "सुशोभन तुम गिर जाओगे। अब तुम उतर आओ। दुहाई है। सुशोभन मैं तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ।" वे मेज के दोनों कोनों को दबाकर अपना चेहरा उठाये हुए कातर वाणी में कहती रहीं—और इन बातों से सुशोभन को और मजा आने लगा।

"क्यों, अब और नीता की चिट्ठी लेकर मन ही मन पढ़ोगी ?"

अचानक सुचिन्ता को एक तरकीब सूझी। वह उदास होकर बोली, "ठीक है चिट्ठी मत देना। मुझे नीता की चिट्ठी से क्या मतलब। नहीं पढ़ूँगी।"

तरकीब काम कर गयी।

"नहीं पढ़ूँगी" कहने के साथ-साथ सुशोभन ने अपने हाथ की चिट्ठी सुचिन्ता की ओर फेंककर हँसते हुए बोले, "इस्स, मुझे चिट्ठी से क्या मतलब। तब इतनी देर से क्यों चीख रही थीं ? सुचिन्ता उस समय तुम कैसी लग रही थी, जानती हो ? उस कथामाला के शृगाल की तरह। मुँह ऊपर किए हुए बैठे रहने के बाद आखिर में हुआ क्या कि अंगूर खट्टे निकल गये।" कहते हुए सुशोभन उतर आये।

सुचिन्ता के हाथों में तब तक चिट्ठी आ गयी थी। इसलिए शायद वे यह उपमा सुनकर हँस पड़ीं। बोलीं, "कथामाला के कथा-चित्रों की याद तुम्हें अभी तक है ?"

"क्यों नहीं रहेगी भला ? कथामाला की कहानियाँ भी कोई भूल सकता

है ? एक बार एक शेर के गले में हड्डी फँस गयी थी—यह कहानी तुम्हें याद नहीं है ?"

सुचिन्ता ने अनमनी दृष्टि से आसमान की ओर देखते हुए कहा, "बिल्कुल याद है।" इसके बाद गहरी सांस लेकर बोलीं, "अच्छा सुशोभन जरा इस चिट्ठी को मुझे पढ़ लेने दो। इसके बाद तुम्हें बताऊँगी कि नीता ने लिखा क्या है। नीता के लिए तुम चिन्ता कर रहे होगे न ?"

"चिन्ता नहीं होगी ? बिल्कुल हो रही है। तुम नहीं जानती, मैं नीता से कितना प्यार करता हूँ।"

सुशोभन कुछ देर चहलकदमी करते रहे, फिर सुचिन्ता के पास आकर बोले, "सुचिन्ता, सारी बातें मुझे सुनानी पड़ेंगी। बातें दबाने से काम नहीं चलेगा।"

सुचिन्ता के चेहरे पर जाने कैसी हँसी थी। बोलीं, "क्या मैं तुम्हें गलत बताती हूँ ?"

सुशोभन ने बलपूर्वक कहा, "बिल्कुल। अखबार पढ़ते समय तुम बहुत कुछ बातें दबा जाती हो। क्या मैं इसे नहीं समझता ?"

"कैसे समझते हो ?"

"कैसे समझने का क्या मतलब ? पढ़ते समय मेरी ये नजरें तुम्हारे चेहरे की ओर ही लगी रहती हैं। तुम्हारी दृष्टि कहाँ रहती है क्या मैं नहीं समझता ?"

सुचिन्ता जैसे हर पल आग से खेल रही थीं। इसीलिए बोलीं, "अगर ऐसी बात है तो तुम मुझे डांटते क्यों नहीं ?"

"मैं तुम्हें डांटूंगा सुचिन्ता ? तुम भी कैसी बातें करती हो। लेकिन अब तुम फिर बेवकूफ बना रही हो। नीता की चिट्ठी क्यों नहीं पढ़ रही हो ? पढ़कर मुझे झटपट बताओ उसमें क्या लिखा है ?"

लेकिन नीता सारी बातें बतायेंगी कैसे ?

चिट्ठी जब पूरी पढ़ पायेंगी तभी तो ?

पढ़ना संभव था ? अगर एक लम्बे-चौड़े डील-डौल वाला व्यक्ति कुर्सी के ठीक पीछे उसकी पुश्त पर हाथ रखकर कुछ आगे को झुककर खुद भी चिट्ठी पढ़ के लिए उतावला हो जाये और सारे समय गाल, गर्दन, कानों पर उसकी ग सांस महसूस होती रहे तो ऐसी हालत में चिट्ठी पढ़ी भी कैसे जा सकती थी ?

पागल की सांसें भी भला इतनी गर्म होती होंगी ? जिसके उत्ताप से गाल औ गले की त्वचा जलने और कानों में सनसनाहट होने लगती हो ?

ऐसी बातों से सुचिन्ता के ठण्डे खून में क्या अभी भी उत्तेजना की लहर न उठ सकती थी ?

पीछे थोड़ी दूर पर चुपचाप कब आकर इन्द्रनील खड़ा हो गया था, सुचि

को मालूम नहीं पड़ा। उन्हें तब पता चला जब वह घूमकर सामने आकर खड़ा हो गया।

इस परिवेश से जान-बूझकर अपनी आँखें हटाकर इन्द्रनील ने कपड़े की कतरनों की तरह बात का एक टुकड़ा फेंक दिया, "मुझे एक बात कहनी थी।"

सुचिन्ता ने चेहरा ऊपर उठाया। आँखों में शंका थी।

जाने क्या बात होगी।

शंका के कारण ही उन्होंने बात को महत्त्व नहीं दिया। जल्दी से कह उठीं, "नीता की चिट्ठी आयी है।"

चिट्ठी नीता की थी, इसे इन्द्रनील ने देखते ही समझ लिया था। लेकिन 'नीता ने क्या लिखा है। चिट्ठी कब आयी? उसके होने वाले पति का क्या हाल है?' ये बातें वह कब पूछता? और पूछने का मन भी कैसे होता? अपनी आँखों से यहाँ की हालत देखकर—"

इसलिए इन्द्रनील नीता के समाचार जैसी महत्त्व की बात को भी बिना महत्त्व दिये ही बोला, "यह तो देख ही रहा हूँ।"

"वहाँ एक दूसरी परेशानी खड़ी हो गयी। उसने लिखा है, जान का डर नहीं है लेकिन—"

"सुचिन्ता!" सुशोभन खीझकर बोले, "चिट्ठी की बात मुझे न कहकर उसे क्यों बता रही हो?"

"वाह क्या वह नीता की खबर नहीं सुनेगा?"

"नहीं!" सुशोभन अचानक इन्द्रनील के एकदम पास आकर खड़े हो गये। बोले, "यगमैन! सुचिन्ता के छोटे बेटे। नीता के बारे में जानने की तुम्हें क्या जरूरत है?"

"मुझे कोई जरूरत नहीं है?" इन्द्रनील कुछ उद्धत होकर बोला।

"बिल्कुल जरूरत नहीं है। तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।" सुशोभन लगभग डाँटते हुए बोले, "नीता क्या कोई ऐसी-वैसी लड़की है? कि तुम उसके बारे में जानना चाहोगे? जानते हो यह नीता का अपमान करना होगा।"

इन्द्रनील तुरन्त बोला, "थोड़ा अपमान होने ही दीजिये न।"

"होने दूँ? सुचिन्ता तुम्हारे लड़कों की बुद्धि तो बिल्कुल अच्छी नहीं है। तुम—"

सुचिन्ता अचानक बोलीं, "सुशोभन आओ कमरे में चलें।"

"कमरे में चलूँ?"

"हाँ। चलो, तुम्हें नीता की चिट्ठी पढ़कर सुनाऊँ।"

सुशोभन की पीठ पर हल्के से अपना हाथ रखकर इन्द्रनील के सामने से होते हुए सुचिन्ता कमरे के अन्दर चली गयीं।

अपने ओंठों को दांतों से दबाकर कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़े रहने के बाद इन्द्रनील वहाँ से हट गया।

वह कृष्णा के पिता के प्रस्ताव की बावत बताने आया था। कहने आया था कि आज शाम को कृष्णा के माता-पिता सुचिन्ता से मिलना चाहते हैं। लेकिन कह नहीं पाया।

उसने सोचा, अब वह जाकर कृष्णा के पिता से क्या कहेगा ?

उसने पहले ही काफी बाधा डाली थी। कहा था, माँ के पास जाकर उसके लड़के की शादी के लिए निवेदन करने जाना बेकार ही होगा। इन्द्रनील की माँ इतनी उदार स्वभाव की हैं कि लड़के की शादी हो जाने की बातें सुनकर भी बिल्कुल नहीं चौंकेंगी, नाराज नहीं होंगी।"

लेकिन कृष्णा के पिता ने गम्भीर होकर कहा था, "यहाँ पर सवाल निवेदन का नहीं है। सामान्य व्यावहारिकता और सौजन्य भी कोई चीज होती है।"

"मेरी माँ सामान्य नियमानुसार सौजन्य-सामाजिकता की बातों को कोई महत्त्व नहीं देतीं।"

कृष्णा भी बोल पड़ीं, "भले ही तुम्हारी माँ असाधारण हों लेकिन हम लोग तो वैसे नहीं हैं। हम लोगों के लिए लोक-लाज नाम की भी कोई चीज है। बस हम लोग जाकर अपना कर्त्तव्य-मात्र निभाएँगे।"

इन्द्रनील के लिए अब और कहने को क्या था ?

इसलिए मां से ही उनके आने की अग्रिम सूचना देने आया था। उसने सोचा था माँ को पहले से जानकारी दे देगा।

लेकिन डोर ही टूट गयी।

सुचिन्ता के इस तरह से चले जाने की भंगिमा में जैसे कोई दुःसाहसिक संकल्प निहित रहा हो।

इन्द्रनील क्या अपने होने वाले श्वसुर को जाकर कह दे कि अगर माँ को बिना बताये ही शादी करना चाहें, तभी वह संभव होगी।

लेकिन वे अभिमानी स्वभाव के थे। शायद वे कह ही बैठें, "जहाँ ऐसी विचित्र शर्त हो वहाँ शादी नहीं हो सकती। तब रहने ही दो।"

अगर ये बातें कृष्णा सुन लेगी तो वह रूमाल से अपनी आँखें पोंछने लगेगी और मौका पाते ही इन्द्रनील के कन्धे पर अपना चेहरा रगड़ने लगेगी।

अचानक इन्द्रनील को लगा कि कृष्णा से उसकी जान-पहचान न ही हुई होती तो भी अच्छा रहता।

परिचय के प्रारम्भ से ही कृष्णा की जाने कैसे यह धारणा बन गयी थी कि इन्द्रनील उसके प्रेम में दीवाना हो गया है। लड़कियों की ऐसी बेवकूफी युवा

पुरुषों के लिए कौतुकप्रद होती है। पहले-पहले तो इन्द्रनील भी मजा लेता रहा इसके बाद जाने कैसे वह भी इस पर यकीन करने लगा।

यह कब से हुआ ?

कैसे हुआ ?

ऐसी बातें किसे याद रहती हैं। किसी सुन्दरी लड़की के निरन्तर प्रेम निवेदन के आकर्षण से कोई भी तरुण विचलित हो सकता है और इस हालत में तो और भी होता क्योंकि इन्द्रनील का व्याकुल मन उस समय किसी आश्रय की ही तलाश कर रहा था।

यह सच है कि उसने नीता से प्रेम करने की बात नहीं सोची थी। सिर्फ मुग्ध मन से वह उसे निहार रहा था, लेकिन तभी उसे यह बात मालूम हुई कि नीता का मन काफी पहले से ही कहीं बंधक रखा हुआ है। मित्र भाव से नीता ने इन्द्रनील से इस बात की चर्चा की थी। सिर्फ इन्द्रनील ही जानता था कि नीता के पास सागर पार से किसी की चिट्ठियाँ आती हैं।

उसके मन में लड़कियों के प्रति आकर्षण का भाव जागा जरूर, लेकिन मन-ही-मन उसने समझ लिया था कि नीता को ओर आकर्षित होना अब कोई मायने नहीं रखता। इसी समय उसकी जिन्दगी में कृष्णा का आविर्भाव हुआ। इन्द्रनील ने महसूस किया कि नीता दूर आकाश के नक्षत्र की तरह है जिसे पाना संभव नहीं है। आपकी हँसी, बातें, भाव-प्रकाश आदि बातों से वह सम्पूर्णत: जानी नहीं जा सकती। यह तो उसका बाह्य आचरण मात्र है। शायद उसे ठीक से किसी भी दिन समझा नहीं जा सकेगा। इन्द्रनील के लिए यह कतई संभव नहीं था कि वह एक ऐसी रहस्यमयी नारी का भार जिन्दगी भर ढोता रहे। उसके लिए शायद कृष्णा जैसी लड़की ही ठीक थी। जिसे एक साँस में पढ़ा जा सकता था जिसे किसी मुश्किल किताब की तरह बार-बार पढ़कर समझने की जरूरत नहीं पड़ती थी। सीधी-सादी कृष्णा में ही इन्द्रनील की सद्य जाग्रत आकांक्षा ने आश्रय ढूँढ लिया।

लेकिन आज ?

आज इन्द्रनील सोच रहा था कि अगर कृष्णा से मुलाकात न हुई होती तो क्या बुरा था। अगर वह भी मँझले भैया की तरह भाग गया होता तो बेहतर होता।

शायद इस हालत में ऐसा ही महसूस होना होगा।

जो लड़की खुद ही किसी के पास आत्म-समर्पण करके अपना रहस्य खोल देती है वह बाद में उस व्यक्ति के लिए बोझ बन जाती होगी।

"हर जगह है भिक्षा वृत्ति
अगर लक्ष्मी भिखारिणी हो जाएँ

तब लोग कहाँ जाएँगे ?"

पुरुष लक्ष्मी की वन्दना की कामना तो करता है, किंतु भिखारिणी की दयनीयता को अधिक दिन सह नहीं पाता ।

वह निराश होकर सोचता "तुम्हारे पास मैं इस आशा में गया कि तुम मेरी कामना पूरी करोगे और तुम हो कि खुद मेरे दरवाजे पर भिखारी होकर बैठे हुए हो ।"

सहज-प्राप्ति का सुख पहले-पहले व्यक्ति को उन्मादग्रस्त कर देता है । उससे पौरुष की परितृप्ति होती है । अपने को विजयी समझने के अहं में पुरुष फूला नहीं समाता । लेकिन सहज-प्राप्ति को भी असहनीय बनने में ज्यादा दिन नहीं लगते । लेकिन इससे बचने का कोई उपाय भी नहीं होता । अगर यह भी पता चल जाये कि कब्जा की हुई वस्तु धान न होकर सिर्फ भूसी है तो भी उसे विवश होकर लादे ही रहना पड़ेगा नहीं तो अपनी कमी दूसरों की नजरों में आ जायेगी । शायद प्रेम विवाह का अधिकांशतः हश्र यही होता होगा ।

विवाह पूर्व प्रेम मधुर और उत्तेजक होता है, क्योंकि तब वह दायित्वहीन होता है । ऐसा प्रेम विभ्रांतिकर भी होता है क्योंकि वहाँ की एक दूसरे वे निगाहों में खूबसूरत दिखते रहने के लिए चौकन्ने रहते हैं ।

लेकिन फिर इस माधुर्य का जादू विवाह-बंधन में बँधते ही खत्म होने लगता है । सिर्फ यहाँ ही नहीं विदेशों में भी सामाजिक कुलीनता और आर्थिक कुलीनता के अलग-अलग चेहरे विद्यमान हैं, इसलिए इस कुलीनता पर जहाँ भी चोट पड़ती है वहीं अभिभावक ऐसे प्रेम के मामलों में असहानुभूतिपूर्ण रवैया अपना लेते हैं । इस हालत में विवाह के बाद की सारी जिम्मेदारी पूरी तौर से अपने ही कंधों पर उठानी पड़ जाती है ।

इस भार को फूलों की तरह हल्का बनाने वाली जीवनसंगिनी कितने लोगों के भाग्य में जुटती होगी ? कृष्णा जैसी लड़कियाँ की संख्या ही तो अधिक है । इसीलिए अधिकतर ऐसी-विवाह शैली की परिणति प्रेम-विच्छेद में ही घटती है ।

अगर कृष्णा से इन्द्रनील की भेंट न हुई होती तो इन्द्रनील अभी से इस तरह की बातें शायद न सोचता । अगर वह घर में सबसे छोटा बेटा होने की सुविधाएँ पाता तो भी शायद ऐसा न करता । माँ की आकांक्षा और बड़े भाइयों के संरक्षण सुख में अगर उसे एक राजा बेटे की तरह सिर्फ सिर पर मौर धारण करके ही विवाह के लिए निकलना पड़ता तो शायद कृष्णा को प्राप्त करने का सुख ही उसके लिए सबसे बड़ा सुख होता ।

लेकिन यह सुख इन्द्रनील को कहाँ बदा था ? जो भी उसे मिल रहा था, उसकी उसे ढेर सारी कीमत चुकानी पड़ रही थी इसलिए वह क्षण-क्षण में नाराज हो उठता था । अब उसे लग रहा था कि कृष्णा के पिताजी व्यक्ति के तौर पर

बहुत सुविधाजनक नहीं हैं, कृष्णा की माँ भी सिर्फ अपने मतलब की ही सोच रही है और खुद कृष्णा भी इन्द्रनील के लिए तकलीफदेह होगी।

लेकिन अब तो लौटना भी मुश्किल लग रहा था।

फिर लौटेगा भी कहाँ ? उस श्मशान में जहाँ मृत, विवर्ण शव की साधना की जा रही थी ? अनुपम कुटीर में जीवन की ऊष्मा कहाँ थी ? स्वाभाविक जीवन-यात्रा का ललित राग वहाँ कहाँ था ? ऐसे रागहीन, जड़ जीवन से मुक्ति पाने की कोशिश में ही इन्द्रनील इतनी सहजता से कृष्णा को पकड़ने में लग गया था।

लेकिन अंदर ही अंदर उसका मन उसे कचोट रहा था, "काश, कृष्णा से उसकी भेंट न हुई होती ?""काश, मँझले भैया की तरह वह भी यहाँ से कहीं भाग पाता।"

बहुत दिनों के बाद आज इन्द्रनील को अपने पिता की याद आयी। शायद अनुपम मित्तर के जीवित रहने से उसे जीवन में इतनी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता। या वे खुद ही उसके लिए समस्या बन गये होते ? कौन जानता है। लेकिन इस समय उसे एक ही चिन्ता रह-रहकर घेर रही थी। इस समस्या से बचने का उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। कृष्णा के माता-पिता का सुचिन्ता से मिलने आना बिल्कुल तय था।

और आने के बाद ही यह सवाल भी उठेगा कि सुशोभन कौन हैं। वह यहाँ क्यों हैं ?

किस तरह से उनको इस घर में आने से रोका जाए, यह सोचते-सोचते ही वे लोग इन्द्रनील के यहाँ पहुँच भी गये और कुछ तय न कर पाने से हड़बड़ी में 'आप लोग बैठिये' मुझे एक जरूरी काम से जाना है कहकर इन्द्रनील तुरन्त वहाँ से खिसक गया। उसने अपनी माँ की ओर भी नहीं देखा। सुचिन्ता उसके जाने वाले रास्ते की ओर देखती ही रह गयीं।

वे लोग बोले, "हम लोगों का आपके पास और पहले आना ही उचित था। खैर, एकदम न होने से देर में होना भी बुरा नहीं है। आपकी क्या राय है ? बात यह है कि हम लोग आपके सबसे छोटे बेटे को अपना दामाद बना रहे हैं।"

सुनकर सुचिन्ता चौंक गयी ?

इस अप्रत्याशित आघात से वे जड़ हो गयीं ?

कुछ ठीक-ठीक समझा नहीं जा सका। सुचिन्ता की सारी बातें समझी नहीं जा सकतीं। प्रकट रूप में सुचिन्ता बिल्कुल नहीं चौंकीं बल्कि मुस्कराते हुए बोलीं, "अगर तय ही कर लिया है तब तो बात ही खत्म हो जाती है।"

शायद कृष्णा के पिताजी को ऐसे जवाब की आशा नहीं थी। इन्द्रनील ने जैसा भी उनके बारे में बताया था, लेकिन उन्होंने सोचा था, कि सुचिन्ता यह सोचकर नाराज़ हो जाएंगी, भड़क उठेंगी या आघात पाकर [illegible]

यही परिस्थिति पैदा करने के लिए ही उन्होंने 'दामाद बनाना चाहता हूँ' न कहकर 'दामाद बना रहा हूँ' कहा था।

मनुष्य के मन की बातों को समझना बड़ा कठिन है।

सुचिन्ता को आहत करके खुश होने की उन्हें क्या जरूरत थी ? सुचिन्ता ने उनका क्या बिगाड़ा था ?

शायद जिस अपमान की आग में वे मन ही मन जल रहे थे, उसी को शायद वे कहीं कसर निकालना चाहते थे। सुचिन्ता की माँ को ही उन्होंने उपयुक्त पात्र समझा होगा। इन्द्रनील की वही अभिभावक थीं। इन्द्रनील जैसे एक बेकार छोकरे के हाथ में उन्हें अपनी मूल्यवान सम्पत्ति विवशता में सौंपनी पड़ रही थी। यह कोई कम छटपटाहट पैदा करने वाली बात नहीं थी।

इस विवशता की जननी तो उनके घर में ही मौजूद थी, लेकिन उस ओर उनका ध्यान नहीं था। वे इसके लिए एकमात्र दोषी अभागे लड़के को ही मानते थे। इसीलिए उसकी माँ को समान रूप से दोषी समझते थे।

सुचिन्ता की बात सुनकर वे सज्जन गंभीर हो गये।

उसी गंभीरता से बोले, बात खत्म जरूर हो गयी है लेकिन शिष्टाचार के नाते हम लोगों को एक बार आपको बतला देना जरूरी लगा, इसलिए....."

सुचिन्ता दुबारा हँसी, "यह सुनकर खुशी हुई।"

सुन्दरी कन्या के गर्व से गर्वान्वित महिला बोल उठीं, "मेरी लड़की को आप ने जरूर देखा होगा। आपके यहाँ वह भी आ चुकी है।"

सुचिन्ता बोलीं, "दो-तीन लड़कियाँ तो बीच-बीच में आती-जाती रहती थीं लेकिन उन्हें कभी गौर से नहीं देखा, इस समय ठीक से ख्याल नहीं आ रहा कि उनमें से आपकी लड़की कौन थी ?"

लीलावती ने आरक्त चेहरे से कहा, "आपके घर में अगर कोई आए तो आप उसकी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखतीं ?"

सुचिन्ता चकित होकर बोलीं, "क्या मुश्किल है। देखूंगी क्यों नहीं, अ मेरे पास आती तो जरूर देखती। बच्चों के दोस्त-साथी कब कौन आते-जाते यह सब देखने की फुर्सत किसे है ? और इसकी जरूरत भी क्या है ?"

"किस तरह के दोस्त-साथियों से आपके लड़के जान-पहचान बढ़ा रहे क्या आप इस पर ध्यान देने की जरूरत भी महसूस नहीं करती हैं ?"

"इससे लाभ क्या है ?" सुचिन्ता बोलीं, "उसकी सारी गतिविधियों निगाहें रखे रहूँ, इतनी क्षमता मुझमें नहीं है। मेरे इस छोटे से घर के इन छोटे-छोटे कमरों में उनकी गतिविधियाँ आखिर कितनी होंगी ?"

"बहुत खूब !" कृष्णा के पिताजी मुँह बिचकाकर बोले, "आप जैसी

माँ यहाँ घर-घर में हो जाएं तो अपने देश को विलायत बनने में ज्यादा समय नहीं लगेगा।"

इस सीधे आक्रमण से शायद सुचिन्ता विमूढ़ हो गयी लेकिन यह विमूढ़ता क्षण भर के लिए ही थी। तुरंत ही वे हँसते हुए बोली, "पागल हुए हैं। ऐसा कभी होता है ? आप लोग तो हैं ? आप लोग नहीं रोकेंगे ?"

वे सज्जन कड़वाहट भरी मुद्रा मे बोले, "रोक पा कहाँ रहा हूँ ? अगर वैसी ही क्षमता होती तो क्या अपनी इकलौती लड़की को इस तरह से बहने देता ? आप नही जानती, मैं उसका विवाह जस्टिस घोष के लड़के से तय कर सकता था, लेकिन—"वे चुप हो गये। उनको चुप होते देखकर सुचिन्ता बेहद सरलता से बोली, "सच कह रहे हैं। मैं भी यह सोचकर चकित हो रही थी, फिर भी—आप क्यों मेरे इस आवारा बेकार लड़के को अपना दामाद बनाने को तुले हुए हैं।"

लीलावती तेज होकर बोली, "क्यों कर रही हूँ, इतना समझने की क्षमता आपमें जरूर होगी।"

इस बार सुचिन्ता गंभीर हो गयी।

और इसको छिपाने की उन्होंने कोशिश भी नही की। गंभीर स्वर मे ही बोली, "शायद यह क्षमता है, लेकिन यह समझने की क्षमता जरूर नहीं है कि आप लोगों की लड़की आप लोगों के काबू के बाहर है। यह खबर मेरे पास आकर इतनी धूमधाम से सुनाने की जरूरत क्या है ? यही सोचकर मैं हैरान हो रही हूँ।"

"बेवकूफी की थी।" कृष्णा के पिताजी उठ खड़े हुए, और रूखे गले से बोले, "सोचा था, शादी से पहले आपको सूचित करना सामान्य भद्रता होगी, लेकिन अब महसूस कर रहा हूँ कि यह मेरी गलती थी। अच्छा चलता हूँ।" हाथ उठाकर उन्होंने नमस्कार करने की भंगिमा बनायी।

सुचिन्ता ने भी तुरंत वैसा ही किया।

इसके बाद पति-पत्नी को चला जाना चाहिए था। लेकिन शायद लीलावती इतनी जल्दी नाटक के पर्दे नही गिराना चाहती थी। इसलिए वे खड़ी होकर भी कह बैठी, "अपने यहाँ आये अतिथियों को चाय देकर सम्मानित करने का भी अभ्यास शायद आपको नही है।"

सुचिन्ता शायद मर्माहत नही हुई थी, इसलिए इस सवाल से बिना विचलित हुए वे मुस्कराकर बोली, "मेरे यहाँ अतिथियो का आना-जाना इतना कम होता है कि उनके लिए क्या करना चाहिए, क्या नहीं, समझ नही पाती।"

"तुम चलोगी नही ?"

पत्नी की ओर देखकर वे सज्जन नाराज होकर बोले। पत्नी भी क्रोधपूर्वक

भौंहों को नचाते हुए बोलीं, "नहीं चलूंगी तो क्या यहां रहने आयी हूं ? चलती हूं···अच्छा है, सुना, आपका एक लड़का अचानक कहीं चला गया है ?"

सुचिन्ता ने इस सवाल के आघात को सहकर भी सहजता से बोलीं, "बाहर नौकरी पर जाना क्या आपके लिए बड़ा आश्चर्यजनक है ?"

"नौकरी ! मैंने तो सुना कि बिना कहे-सुने अचानक·····"

सुचिन्ता खिलखिलाते हुए बोलीं, "घर के नौकर-चाकरों से शायद आपने सुना होगा। वे लोग इसी तरह की अफवाहें फैलाते रहते हैं।"

'नौकर-चाकर' शब्द में जिस तरह की अवहेलना का भाव निहित था उसे समझकर लीलावती का गोरा चेहरा लाल हो गया। नौकरों से बातें करने की उनकी आदत नहीं है। शायद वे यही कहना चाहती थीं कि तभी वहां एक कांड घट गया।

कमरे के अंदर दरवाजे के पास खड़े हुए सुशोभन कह उठे, "इतनी देर इन बेकार के लोगों से क्या बातें कह रही हो सुचिन्ता। उनको भगा दो।"

क्षण भर के लिए जैसे उन तीनों को ही करेन्ट मार गया हो, ऐसा अहसास हुआ। इसके बाद सुचिन्ता बोलीं, "तुम नीचे क्यों चले आये सुशोभन ? ऊपर जाओ।"

सुशोभन का इस तरह से नीचे चला आना वाकई अप्रत्याशित था। नीचे की मंजिल के इस सजे-सजाये ड्राइङ्ग रूम में शायद कभी सुशोभन पहले नहीं आये थे। सदर दरवाजे के सामने ही सीढ़ी थी, वही उनके लिए पूरी तरह से परिचित थी।

लेकिन सुचिन्ता ही कितने दिनों बाद इस कमरे में आयी थीं ?

क्या सुशोभन के आने के बाद एक बार भी वे यहां आयी थीं ?

आज ही यहां आकर बैठी थीं।

जब वह नीचे आयी थीं तब सुशोभन सो रहे थे। कुछ दिनों से वे कभी-कभी दोपहर में भी सोने लगे थे। ऐसा पहले नहीं होता था। क्या जाने यह लक्षण अच्छा था या बुरा ? डॉक्टरों की राय के अनुसार यह मानसिक रोगियों के लिए शुभ लक्षण था।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि सुचिन्ता बेवक्त सुशोभन को सोते हुए देखती थीं तो शंकित हो जाती थीं। शाम को नाश्ते के समय का बहाना करके उन्हें जगा देती थीं। अगर उन्हें जगाया न जाए तो उनकी नींद सहज ही टूटती नहीं थी।

इसीलिए सुचिन्ता निश्चिन्त थीं। अतिथियों से मिलने के लिए नीचे आते समय उन्होंने सुशोभन को गहरी नींद में सोते हुए देखा था। न जाने नींद कब

ट गयी थी। शायद इधर-उधर खोजकर जब उन्हें कोई नहीं मिला होगा तब वे घबड़ाकर नीचे उतर आये होंगे।

सुचिन्ता ने पूछा, "तुम नीचे क्यों चले आये? ऊपर चले जाओ।"

सुशोभन ने जाने के लिए एक कदम आगे बढ़ाया लेकिन बिना असंतोष व्यक्त किए हुए रहा नहीं गया। वे बोले, "तुम्हीं नीचे क्या करोगी? आओ ऊपर चलें।" कहकर भारी कदमों से जीना चढ़ने लगे।

इतनी देर बाद लीलावती को बोलने का मसाला मिला। भौंहें सिकोड़कर और संदेह भरे स्वर में बोली, "वे कौन थे? आपके भाई?"

"नहीं।"

"तब कौन थे?"

सुचिन्ता ने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा, "मेरे बचपन के साथी।"

"बचपन के साथी!"

लीलावती ने जिस स्वर में इसे कहा उससे यही लगा कि इस शब्द को उन्होंने जीवन में पहली बार सुना था।

सुचिन्ता ने बिना कोई बात किए हुए सिर्फ विदा देने की चालू भंगिमा में अपना हाथ एक बार उठाकर नमस्कार किया।

इस पर भी लीलावती बिना बोले न रह सकी, "सुना था आपके घर में कोई पागल आया है। क्या यह वही हैं?"

अचानक सुचिन्ता ठठाकर हँस पड़ी। हँसते-हँसते बोली, "आपमें एक नजर में पागलों को पहचान लेने की आश्चर्यजनक क्षमता है। अच्छा, अब चलूं। नमस्कार! एक पागल को लेकर जाने कितना झमेला उठाना पड़ता है।"

कहा जरूर, लेकिन सुचिन्ता का चेहरा देखकर इन लोगों को यकीन नहीं आ सकता था कि सुचिन्ता को इतना झमेला उठाना पड़ता होगा!

"मुझे बिना बताये हुए तुम चली क्यों जाती हो सुचिन्ता?" विक्षोभ भरे असंतुष्ट स्वर में वे बोले, "मैं तुम्हें ढूंढता रहता हूँ लेकिन तुम नहीं मिलती?"

"तुम तो सो रहे थे।"

"वाह खूब रही। हमेशा मैं सोता ही रहूँगा?"

"तो क्या किसी के आने पर मैं बातें न करूँ?"

"नहीं नहीं, उन लोगों से बातें करने की जरूरत नहीं है।"—सुशोभन ने विरोध करते हुए कहा, "वे सब अच्छे लोग नहीं हैं।"

सुचिन्ता हँसते हुए बोली, "किसने कहा कि वे अच्छे लोग नहीं हैं? अच्छे तो हैं।"

"नहीं, नहीं ! देखा नहीं वे लोग तुम्हें किस तरह से घूर रहे थे ?"

"किस तरह से ?"

"नाराजगी से भरकर। तुमने गौर नहीं किया ?"

सुचिन्ता नजदीक आकर बोलीं, "तो क्या सभी लोग तुम्हारी तरह ही मुझे ताकेंगे ?"

सुशोभन ने अचानक अपने को बहुत विपन्न महसूस किया। चंचल होकर बोले, "मेरी तरह ? मैं किस तरह से ताकता हूँ सुचिन्ता ? मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आ रहा है।"

"रहने दो, तुम्हें समझने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे लोग अगर दुबारा आएँ तो तुम उन लोगों के पास मत जाना। वे लोग तुम्हें प्यार नहीं करते।"

"मुझे प्यार नहीं करते। लेकिन ऐसा क्यों सुचिन्ता। मुझे तो सभी प्यार करते हैं।"

"तुम्हीं ने तो कहा कि वे लोग अच्छे नहीं हैं।"

"ओह हैं, ठीक, ठीक। लेकिन सुचिन्ता वे लोग हैं कौन ?"

"कौन हैं ?"

सुचिन्ता ने मजा लेते हुए कहा, "वे लोग मेरे सबसे छोटे बच्चे के सास-श्वसुर थे।"

"सास-श्वसुर। सबसे छोटे बेटे के सास-श्वसुर। मेरी समझ में नहीं आया सुचिन्ता।"

"बहुत हुआ। तुम्हारी समझ में नहीं आया। उनकी लड़की के साथ मेरे सबसे छोटे लड़के की शादी होगी।"

"नहीं नहीं, किसी तरह से नहीं होगी—" पौरुष प्रदर्शन करके रोकने की भंगिमा में सुशोभन ने अपना हाथ उठाया, "वे सब अच्छे लोग नहीं हैं।"

"लेकिन उनकी लड़की के साथ तो मेरे सबसे छोटे लड़के ने प्रेम किया है," सुचिन्ता धीरे-धीरे समझाने के अंदाज में बोलीं, "मेरे छोटे बेटे को उनकी बेटी ने पसंद किया है, प्रेम किया है। शादी न होने से उनकी लड़की के मन को तकलीफ होगी।"

सुशोभन शांत हो गये। एकदम नरम हो गये। सहानुभूति भरे स्वर में बोले "मन में तकलीफ होगी ? उनकी बेटी के मन को चोट पहुँचेगी ?"

"हाँ, फिर मेरे लड़के को भी तकलीफ होगी।"

"उनकी लड़की कहीं उन्हीं की तरह तो नहीं है सुचिन्ता ?" सुशोभन के सि पर फिर एक दुश्चिंता सवार हो गयी, "तुम्हारी तरफ गुस्से में भरकर ताके तो नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं। वह बहुत अच्छी लड़की है।"

लाकर दी। अगर वह सड़क का कीचड़ खेलने के लिए मांगती तो क्या मैं उसे दे देता ?"

कृष्णा की मां और भी रुँआसी होकर बोलीं, "खैर, इस उम्र में हित-अहित सोचने की क्षमता कहां होती है ? लेकिन इन्द्रनील लड़का बुरा नहीं है। तुम उसकी तुलना कीचड़ से मत करो। मुन्नी को ये बातें मालूम पड़ेंगी तो उसे काफी धक्का लगेगा।"

"धक्का लगेगा। ओह ! लेकिन धक्का लगने पर बता सकती हो क्या होता है ? अगर कुछ होता तो तुम्हारी लड़की ने जिस दिन आत्महत्या करने की धमकी दी थी, उसी दिन मेरा भी हार्ट फेल हो गया होता। कुछ समझीं ? अपमानित होकर भी ऐसा क्यों किया, जानती हो ? लड़की के मोह से ग्रस्त होकर नहीं, बल्कि इस डर से कि अगर लड़की लेक में डूबकर मर गयी तो मेरी ही जगहँसाई होगी। अब अफसोस कर रहा हूं कि शुरू में ही इस झंझट को क्यों नहीं खत्म कर दिया।"

लीलावती आतंकित होकर बोलीं, "दुहाई है, अब चुप भी रहो। मुन्नी सुन लेगी। मुन्नी को वैसी सास के पास घर-गृहस्थी करने के लिए मुझे नहीं भेजना है। बेटी दामाद दोनों यहां ही रहेंगे।"

"अगर ऐसा कर सको तो कर लेना। बेटी-दामाद के साथ सुखपूर्वक घर-गृहस्थी चलाना।" पति गंभीर होकर बोले, "मैं अपने रहने के लिए कोई दूसरी जगह ढूंढ़ लूंगा।"

लीलावती इस धमकी की परवाह नहीं करती थीं।

उनके पति उन्हें छोड़कर अन्यत्र रह सकते हैं, ऐसी आशंका ही वह मन में नहीं लातीं।

संसार का पहिया इसी तरह से चलता रहता है। जब आदमी अपनी समस्याओं के चक्कर में फँसता है तब उससे उबरने के लिए वह जो कुछ भी करता है उसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

हालांकि सभी की समस्याओं का एकदम से निदान होना संभव नहीं है।

एक ही घटना को विभिन्न लोग विभिन्न तरीके से देखते हैं। जिस वर्षा का किसान प्रसन्न होकर अपने दोनों हाथ उठाकर अभिवादन करते हैं, उसी वर्षा से शहर के लोगों की भृकुटि टेढ़ी हो जाती है। जो कानून किरायेदारों के लिए राहत पहुंचाता है, उसी कानून से मकान-मालिक खिन्नता महसूस करते हैं।

पैसे वालों के मन में गरीबों का असंतोष कुढ़न पैदा करता है, गरीबों को पैसे वालों की विलासिता फूटी आंखों नहीं सुहाती। बड़ों की नजरों में छोटों का व्यवहार आपत्तिजनक होता है, छोटों की निगाहों में बड़े लोगों का आचरण निष्ठुरतापूर्ण होता है।

अतः दोष किसे दिया जाए ?

कृष्णा ने प्रेम किया तो क्या उसे ही दोषी माना जाए ?

कृष्णा के अभिभावक उसके गलत चयन के कारण कुपित हो गये थे। क्या यह उनके लिए असंगत था ?

सुचिन्ता ने अपने उद्धत पडोसी की अवहेलना की, यह जितना उनके लिए स्वाभाविक था, ठीक उतना ही स्वाभाविक उनके पडोसी द्वारा उनके बारे मे 'खराब' राय कायम करना भी था।

भगवान् ही जानता होगा कि सही-गलत का असली पैमाना किसके पास है।

परस्पर विरोधी सचाई ने सारे ससार को एक ऐसे विचित्र कुहासे मे जकड़ रखा है कि उसे चीरकर वास्तविक सत्य रूपी सूर्य की खोज असंभव हो गयी है। गुरु का कोई भक्त अगर अपने पुत्र की बीमारी में डॉक्टर न बुलाकर गुरु का चरणामृत उसे सेवन कराता है तो उसके इस व्यवहार की निंदा की जाएगी या उसकी गुरुभक्ति की सराहना की जाएगी। स्वामी की दुश्चरित्रता से क्षुब्ध होकर पत्नी जब अपनी गोद की संतान को बहाकर पतिगृह छोड़कर चली जाती है तो उस स्त्री के स्वाभिमान की प्रशंसा की जाएगी या उसकी कठोरता की निंदा की जाएगी ?

मनुष्य के बारे मे कुछ भी सोचना बड़ा मुश्किल है।

मनुष्य के बारे मे सोचना कठिन है लेकिन उसके कर्तव्य के बारे मे विचार करना क्या उससे अधिक सरल है ?

फिलहाल इस समय सुविमल मुखर्जी जैसे बुद्धिमान वकील ही क्या कर्त्तव्य का निर्धारण कर पा रहे थे ? मामला सुशोभन को लेकर ही था। इसके पहले उन्होंने खुद ही इन बातो को लेकर सिर खपाने के लिए मायालता को मना कर दिया था। लेकिन नीता के चले जाने के बाद से वे इस बारे मे लगातार सोच-विचार रहे थे। नीता से नाराज होकर भाई के बारे मे तटस्थ होकर बैठ जाना उन्हे न्यायसंगत नही लग रहा था।

एक अविनयी लड़की की कर्तव्यहीनता से क्या सुविमल अपना कर्त्तव्य भूल जाएँगे ? अपने बीमार भाई को वे एकबार देखने भी नही जाएँगे ? सिर्फ देखने के लिए ही क्यों जाना, देख-भाल करने की भी तो जरूरत है। सुचिन्ता उसे अपने पास रखना चाहती है, क्या इसलिए अपने भाई को हमेशा के लिए उसके पास ही छोड देंगे ?

असल में यहाँ पर लेने-देने की बात ही बेकार थी। उस दिन एक पागल को वहाँ जिस तरह से अनुशासन में बँधे देखा था उससे उन्हे आश्चर्य ही हुआ था। तभी उन्होंने स्वीकारा था कि सुविमल को लेकर अधिकार जतलाना ही सब कुछ नहीं है।

फिर सुविमल की भी तो एक सामाजिक मान-मर्यादा थी।

नाते-रिश्तेदार भी बीच-बीच में सुशोभन के बारे में पूछते रहते थे और उनको किस अधिकार से सुचिंता ने अपने पास रखा था इसे लेकर आश्चर्य चकित भी होते थे। एक बार तो सुविमल की छोटी बुआ ने ही कह दिया, "मुझे एक बार सुचिन्ता के यहाँ ले चलो। जरा देखूँ तो कैसी जबर्दस्त लड़की है। देख आऊँ उसने क्या टोना-टोटका किया है। लड़के से भी मिल आऊँगी।"

सुविमल ने 'पागल हुई हो' कहकर उनके प्रस्ताव को टाल दिया था। लेकिन तभी से वे सोच रहे थे कि एकबार उनका वहाँ जाना उचित होगा। इसके अलावा एक और कारण भी था—नीता के बारे में जानने का।

एक रविवार की सुबह उन्होंने वहाँ जाना तय किया। मन ही मन यह भी तय किया कि वे अपने साथ सुमोहन के दोनों बच्चों को भी ले जाएँगे। देखेंगे कोई प्रतिक्रिया होती है या नहीं।

इन दोनों बच्चों को सुशोभन बेहद चाहते थे।

सुविमल ने कब अशोका को दोनों लड़कों को तैयार कर देने के लिए कहा और कब अशोका ने उनके आदेश का पालन किया इसे मायालता जान ही नहीं पायीं। पति को उन दोनों को साथ लेकर बाहर जाते हुए देखकर ही उन्हें पता चला।

अक्सर रविवार की सुबह सुविमल अपने दोनों भतीजों को लेकर टहलने निकलते हैं, लेकिन मायालता ने कभी भी इसे सहजता से नहीं ग्रहण किया। हर सप्ताह ही वे दीवाल को सुनाकर कहतीं, "जरा चोंचले तो देखो। लड़कों को उकसा दिया। आदमी को और भी तो काम हो सकता है। वैसे ही रात-दिन कोर्ट मुवक्किल, मामले-मुकदमे का चक्कर, इससे थोड़ी फुर्सत मिली तो भतीजों को लेकर प्रेम-प्रदर्शित करना पड़ेगा। अपने लड़कों को लेकर तो कभी एक कदम भी घूमने नहीं गये। मैं भी समझती हूँ, पीछे मैं कोई काम की बात न कह दूँ इसलिए जान बचाने के लिए घर से भागते रहते हैं।"

कहना न होगा कि मायालता का ऐसा आरोप सुनकर भी दीवालें मौन रह जाती थीं और सुविमल भी हमेशा की तरह तुम लोग तैयार हुए कि नहीं की हाँक लगाकर उन्हें साथ लेकर झटपट बाहर निकल जाते थे।

लेकिन सुविमल ने आज जल्दबाजी नहीं की थी; सहज भाव से ही निकल रहे थे कि उन पर मायालता की निगाह पड़ गयी। हमेशा की तरह ही वे झपट कर पूछ बैठीं, "इतनी सुबह अपने भतीजों को सिर पर बिठाकर कहाँ जाने की तैयारी है?"

बच्चों में से एक की उम्र सात वर्ष की थी और दूसरा छः वर्ष का था। वे दोनों अपने ताऊ जी के दोनों ओर उनकी एक-एक उँगली पकड़कर अधिकार पूर्वक खड़े हुए थे। उनकी ओर देखते हुए सुविमल मुस्कराते हुए बोले, "सिर पर

कहाँ बैठे हैं ? बल्कि यह पूछ सकती हो कि उंगली पकड़कर कहाँ ले जा रहा हूँ।"

"ठीक है, ठीक है, मुझसे व्याकरण की गलती हो गयी। हाँ, तो इतनी तैयारी से जा कहाँ रहे हो ?"

सुविमल बोले, "समझ नहीं पा रही हो ?"

"ज्योतिषी तो मैं नहीं हूँ।"

"इन्हें इनके मँझले ताऊ से मिलवाने ले जा रहा हूँ।"

"मँझले ताऊ से मिलवाने ! ओह !" मायालता थोड़ी।कुटिलता से बोलीं, "तो इन लोगों का बहाना करने की क्या जरूरत थी। अपने मिलने जाने की बात ही कह सकते थे। जो सच है वही कहो न। खैर, प्रेम के ताजमहल को खुद देखने जा रहे हो तो जाओ, इसमे बच्चों को क्यों घसीटते हो ?"

"ताजमहल तो दिखलाने की ही चीज है।" कहकर सुविमल बाहर निकल गये। मायालता अपने लड़कों के पास जाकर बड़बड़ाने लगी, "देखा ? तुम लोगों ने देख लिया ? मुझसे एक बार कहा तक नहीं। चुपके-चुपके अपने भाई की बहू से बात कर ली, चुपके-चुपके लड़के तैयार भी हो गये और घर की इस दासी-बाँदी को कानोकान खबर तक नहीं।"

"तुम भी बेहूदा हो—" तपोधन ने अपने हाथ की सिगरेट पीठ पीछे करते हुए कहा, "तभी तुम अभी भी पिता जी से बातचीत करती हो। दूसरी कोई प्रेस्टीज वाली महिला होती तो कभी ऐसे अपमानित होने पर किसी तरह का को-आपरेशन नहीं करती।"

इस बार मायालता ने अपने लड़के को आक्रमण का निशाना बनाया। क्योंकि लड़के ने सीधे दिल पर चोट की थी। उस चोट से मायालता तिलमिला उठी। बोली, "और उपाय ही क्या है ? तुम लोग मेरा एक भी काम करते हो ? परिवार के लिए थोड़ी-सी भी मेहनत करते हो ? मुझे भी काम निकलवाने की गरज रहती है। बातें बन्द करने से काम कैसे चलेगा ?"

नजरों से दूर कहीं 'दीवाल' बैठकर चाय बना रही थी। एक बड़े काँच के गिलास मे चाय लाकर वह अपनी जेठानी के पास आकर मुस्कराते हुए बोली, "दीदी आप भी कैसी बातें करती हैं ? कहीं राजा के बिना राजपाट चल सकता है—"

"क्या ! क्या कहा तुमने छोटी बहू ?" मायालता तड़फड़ा उठीं, "तुम मेरे मरने की कामना कर रही हो ?"

"आश्चर्य है। आप भी दीदी कैसी बातें करती हैं। चाय ठंढी हो जाएगी, पहले आप इसे पी लें।" कहकर एक दूसरे बदरंग इनामेल के गिलास मे अशोका चाय ढालने लगी।

यह चाय घर की बूढ़ी महरिन के लिए थी।

अचानक अपना गुस्सा दरकिनार करके मायालता पूछ बैठीं, "यह चाय किस के लिए है ?"

"ऐसे गिलास में और किसकी चाय होगी दीदी—"

"समझ गयी मैं। लेकिन यह भी तुम्हें कहे देती हूँ छोटी वहू कि दूसरों के माल पर इतना बेरहम होना ठीक नहीं। इतनी मँहगी चाय नौकरानी को दी जा रही है और वह भी आधसेरी गिलास भरकर। यूँ ही कहा जाता है 'कम्पनी का माल दरिया में डाल।' क्या नौकरानी के लिए थोड़ी सस्ती चाय नहीं मँगा सकती थी ? क्या थोड़ा कम देने से काम नहीं चलता ?"

अशोका गर्म चाय को सावधानी से अपने आँचल से पकड़कर जाते-जाते बोली, "इन दोनों बातों में से एक भी पूरा करना मेरे लिए संभव नहीं है। बेहतर होगा कि कल से गोपाल की माँ के लिए चाय आप खुद बना दीजिएगा।"

"हुआ ?" तपोधन ने व्यंग करते हुए कहा, "गाल बढ़ाकर झापड़ खाना हुआ तो यूँ ही नहीं कहता कि तुम्हारी जगह कोई प्रेस्टीज वाली महिला होती तो इन लोगों से बातें तक नहीं करती।"

मायालता गुस्से में बोलीं, "मान मर्यादा कोई देगा, तब न रहेगी ? इस गृहस्थी में मैं हमेशा दासी बनकर ही रहती आयी हूँ। अभी क्या बिगड़ा है। इसके बाद लड़कों की बहुएँ आकर उठते-बैठते अपमानित किया करेंगी।"

क्षण-क्षण में ही मायालता के गुस्से के पात्र और कारण बदलते रहते थे।

ठीक दूसरे ही क्षण वे तेजी से बगल के कमरे में सुमोहन से लड़ने चली गयीं क्योंकि उन्हें सुनाई पड़ गया था कि सुमोहन ने शायद अपनी स्त्री को लक्ष्य करके व्यंग्य किया था, "यही है तुम लोगों के इतवार का नाश्ता ? वाह ! वाह ! सुना है, गरीब-दुखियों के घर में भी इतवार की सुबह का नाश्ता इससे जरा बढ़िया ही रहता है।"

यह बात कानों में जाते ही मायालता अब और रुक नहीं सकीं। पति-पत्नी की बातचीत के बीच जाकर टपक पड़ीं। बोलीं, "मैं कहती हूँ देवरजी, दिन और तारीख तुम्हें याद भी रहती है। धन्य है तुम्हारी स्मरण शक्ति। नहीं तो इतवार और बुधवार की बातें तो तुम्हें याद रखने लायक नहीं थीं।"

मायालता का स्वभाव ऐसा ही था।

सिर्फ वाक्-संयम के अभाव के कारण ही उन्होंने गृहिणी की मर्यादा खो दी थी। उनसे कहीं ज्यादा कंजूस, स्वार्थी और नीच मन की गृहिणियाँ भी अल्प-भाषी होने के कारण अपना काम चला लेती हैं। मायालता जितनी बक-बक करती थीं, उतनी बुरी नहीं थीं।

"सही बात" कहने के लालच ने ही मायालता का सारा सम्मान खत्म कर दिया था।

किसी से बात बन्द करके वे अपनी प्रेस्टिज बचाये रखेंगी, ऐसी सामर्थ्य मायालता में नहीं थी। उनके अन्दर बातों का अनंत खजाना था जो लगातार बाहर निकलने के लिए ठेलम ठेल किए रहता था।

देवर से थोड़ी देर वाक्युद्ध करने के बाद उत्तप्त मायालता बड़े लड़के के पास आ पहुँचीं। बोली, "तपो तो किसी काम का नहीं है, क्या तुम भी इस बारे में ध्यान नहीं दोगे ? कहती हूँ, तुम लोगों के मँझले चाचा का मामला कब तक यूँ ही चलता रहेगा ?"

"चलने दो।"

"तुम इस तरह से हाथ-पैर झाड़ दोगे, मुझे मालूम था। मैं कहती हूँ क्या पुलिस की मदद नहीं ली जा सकती ? क्या यह नहीं कहा जा सकता कि एक आदमी को पागल पाकर उसे अपने यहाँ बंद कर रखा है ? यह भी तो कहा जा सकता है कि कुछ दवा आदि खिलाकर सुचिन्ता ने एक भले-चंगे आदमी को पागल कर दिया है।"

यह सुनकर साधन हँस पड़ा। बोला, "इससे शायद सुचिन्ता को थोड़ा परेशान किया जा सकता है ! लेकिन इसमें अपना फायदा क्या है ?"

"कुछ न करना हो तो कोई फायदा नहीं। लाभ तो रात-दिन अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने में और सप्ताह में तीन दिन सिनेमा देखने में है। ठीक है, तुम लोगों को कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। मैं एक बार राधू से मिलने जाऊँगी।"

राधू या राधानाथ मायालता की बहन का दामाद है, जो लाल बाजार में नौकरी करता है। मायालता की धारणा थी कि राधू ही लाल बाजार ऑफिस का सर्वेसर्वा है। इसलिए हर किसी मुश्किल के वक्त मायालता घमंड में भरकर कह उठती थी, "ठीक है, मैं राधू से कहे देती हूँ।"

हालाँकि भरपूर नाश्ता और कई कप चाय डकारने के अलावा आज तक मायालता की बहन के दामाद ने उनका कोई काम नहीं किया।

फिर भी उनका घमंड नहीं खत्म होता और राधू को कुछ कहने जाने के उपलक्ष्य में वे बीच-बीच में संदेश से भरा हुआ एक डिब्बा लेकर अपनी भांजी से मिलने चली जाया करती थीं। राधू का घर भी मायालता के घर के नजदीक ही था। रिक्शे से अकेले जाने में कोई असुविधा नहीं होती थी। फलतः वे आज भी गयीं।

संदेश का डिब्बा थमाते हुए वे भरपूर मुस्कराते हुए बोली, "बेटा आज तुम्हें एक सलाह लेने आयी हूँ।

सलाह करने के लिए लोग जाने कहाँ-कहाँ दौड़ते हैं। हालाँकि इसके बद [illegible]

सुचिन्ता किसी से भी कोई सलाह नहीं करती थीं। उनके लड़के भी यही करते थे।

शायद किसी अनभ्यस्त काम को नये सिरे से शुरू करने में उन लोगों को शंका होती होगी। इन्द्रनील का ही उदाहरण लें। लेकिन उसके लिए भी और क्या उपाय था ?

लीलावती ने कहा था, "शादी के बाद तुम दोनों कुछ दिनों के लिए कहीं घूम आना। हनीमून भी मना लोगे और मुहल्ले के लोगों की आँखों के सामने से कुछ दिनों के लिए हट जाना भी हो जाएगा। शादी के बाद लड़की अपने ससुराल में न रह सके, यह तो शर्म की बात है।"

इन्द्रनील ने कहा, "श्वसुर के धन से 'हनीमून' के लिए जाने से अधिक लज्जा की बात और क्या होगी ?"

कृष्णा की माँ चिढ़कर बोलीं, "जब श्वसुर के पैसों से ही तुम्हें कुछ दिनों तक काम चलाना होगा तब उस पैसे को अशुचि और अपवित्र समझकर कुंठाग्रस्त होने की कोई जरूरत नहीं है। यह मूर्खता होगी। मैं तो तुमसे बार-बार यही दोहरा रही हूँ कि हम लोगों का जो कुछ भी है, वह मुन्नी का ही है।"

इस बात पर इन्द्रनील ने कहा था, "यह हो सकता, लेकिन मेरे लिए तो यह अधिकार बेमानी है।"

लीलावती नाराज होकर बोलीं, "अब तुम चुप रहो। लड़कों की तरह हँसो खेलो, खाओ-पिओ, लेकिन बड़ी-बड़ी बातें करके मेरा जी न जलाओ। वैसे ही मैं घर और बाहर दोनों जगह से परेशान हूँ। मैं पहले से दार्जिलिंग के किसी अच्छे होटल में कमरा बुक कराये देती हूँ, तुम लोग फूलशय्या के दूसरे दिन रवाना हो जाना। इसके बाद लौटने पर फिर आगे के लिए सोचा जायगा।"

इसके बाद सारी घटनाएँ बड़ी तेजी से घटने लगीं। कृष्ण के पिता ने दामाद को पहले से अपने घर में बुलाकर, कहना चाहिए घर में रोककर, खूब धूमधाम से अपनी लड़की का विवाह सम्पन्न किया। फिर फूलशय्या के दूसरे दिन अपने साथ लेकर हवाई जहाज से दार्जिलिंग भेजने के लिए, दमदम पहुँचा आये।

प्यार की ऊष्मा और घटना-चक्र तथा समारोह के तेज बहाव में असहाय होकर निरुपम बाढ़ में बह जाने की तरह बह गया। उसकी शादी में उसके माँ और भाई की कोई भूमिका ही नहीं रही।

"लेकिन वाकई कोई भूमिका नहीं थी ?

भूमिका थी श्रोता की, भूमिका थी दर्शक की। पड़ोस में लगातार तीन दिनों तक शहनाई बजती रही जिसका स्वर हवा में तैरता हुआ उन तक पहुँचता रहा। सुचिन्ता और निरुपम दोनों ने ही इसे सुना।

शादी की एक और विशेषता निरुपम को देखने को मिली। शायद सुचिन्ता ने भी देखा हो, लेकिन इसका असली हकदार तो निरुपम ही था।

कृष्णा के पिता जी अनुपम कुटीर के बड़े लड़के के नाम पड़ोसी होने के कारण एक निमंत्रण-पत्र भेज दिया था जिसे निरुपम ने मेज पर पड़े हुए देखा। मँहगे कागज पर कलात्मक ढंग से छपे उस पत्र को उठाना भूलकर निरुपम काफी देर तक निहारता रहा था।

माँ-बेटे में घर के एक और बेटे के इस आश्चर्यजनक विवाह को लेकर कोई चर्चा ही नहीं हुई। नीलांजन के बाहर जाते वक्त घर में थोड़ा-बहुत शोरगुल हुआ भी था लेकिन इन्द्रनील अनुपम कुटीर की परिधि से निकलकर बड़ी खामोशी से विलीन हो गया।

सिर्फ शहनाई की आवाज से व्याकुल होकर सुशोभन बार-बार एक ही सवाल पूछने लगे, "सुचिन्ता यह शादी की शहनाई कहाँ पर बज रही है ?"

"सुचिन्ता आहिस्ते से बोली, "पड़ोस में शादी हो रही है सुशोभन !"

"कहाँ ? किसके यहाँ ? चलो सुचिन्ता हम लोग भी चलकर दूल्हा-दूल्हन को देख आएँ।"

"वाह हम लोग कैसे जा सकते हैं ? क्या हम लोग उन्हें पहचानते हैं ?"

"नहीं पहचानती ? अपने पड़ोसियों को नहीं पहचानती हो सुचिन्ता ?"

"क्या सभी को पहचानना सभव है ?"

"लेकिन हम लोगों के बचपन के दिनों में तो ऐसी बात नहीं थी सुचिन्ता। अपने मुहल्ले के सभी लोगों को हम लोग पहचानते थे।"

"हम लोगों का बचपन बहुत दिन हुए बीत गया है सुशोभन, "एक अबोध पागल को लक्ष्य करके मानो सुचिन्ता ने खुद से ही यह बात कही, "हम लोगों का सब कुछ बीत गया है। यहाँ हम लोग अजनबी हैं। हम लोग भी यहाँ किसी को नहीं पहचानते।"

सुशोभन ने इस पर ध्यान नहीं दिया, बोले, "शादी-ब्याह की इस शहनाई से मुझे बड़ी तकलीफ होती है सुचिन्ता। लगता है जैसे कोई किसी को हमेशा के लिए छोड़कर चला जा रहा है। तुम्हे भी ऐसा नहीं लगता ? तुम्हें तकलीफ नहीं होती ?"

सुचिन्ता अचानक बलपूर्वक बोली, "क्यों, तकलीफ क्यों होगी ? शादी-ब्याह तो खुशी की बात होती है। हाँ, हाँ खूब खुशी की बात।"

दिन-रात की लुका-छिपी खेलते हुए कई दिन बीत गये। अनुपम कुटीर की हवा में खामोशी छायी हुई थी। इस घर में ही कुछ दिन पहले तक काफी गहमा-गहमी थी, इसके कण-कण में मधुर संगीत प्रवाहित होता था, जाने कितनी बातें

और हँसी की खिलखिलाहटों के आघात दीवालों पर धक्के मारते रहते थे। यह बात अब सोचने से याद नहीं पड़ती।

अनुपम कुटीर के लड़कों को चुराने की नीयत से जैसे किसी मायाविनी जादूगरनी ने आँधी की सृष्टि की थी। अब जाकर वह आँधी शांत हुई थी।

लेकिन क्या आँधी एकदम शांत हो गयी थी ?

बीच-बीच में वह अपना अस्तित्व नहीं प्रकट करती है ?

एक अबोध पागल के विचित्र सनक के रूप में शायद कभी-कभी उसका अस्तित्व प्रकट होता था। अपने आप वह शांत भी हो जाती थी।

घर का बाह्यजगत् बिल्कुल खामोश रहता था।

अचानक सुशोभन उस बात को भूल गये।

"सुचिन्ता तुम्हारे लड़के नहीं नजर आते ? वे सब कहाँ चले गये ?"

सुचिन्ता क्षण भर के लिए उस प्रश्नकामी चेहरे की ओर देखकर बोलीं, "वे लोग बाहर चले गये हैं।"

"क्यों," सुशोभन खिन्न होकर बोले, "आखिर सभी को विलायत जाने की क्या जरूरत थी ? यह नीता ही सभी को लेकर—"

"विलायत में नहीं सुशोभन, सब बाहर गये हैं। लड़के बाहर नहीं जाते ? तुम भी तो दिल्ली गये थे ?"

"हाँ मैं भी तो दिल्ली गया था। लेकिन मैं वहाँ पर गया क्यों था ?"

"गये क्यों थे ? नौकरी करने गये थे।"

"नौकरी !" सुशोभन कुछ सोचने लगे।

सुचिन्ता कहने लगीं, "हाँ, हाँ नौकरी। काफी मोटी तन्ख्वाह थी तुम्हारी। एक खूबसूरत दफ्तर में एक खूबसूरत मेज के सामने बैठकर तुम काम करते थे," सुचिन्ता सुशोभन की कल्पना को उकसावा देते हुए बोलती रहीं, "खूब सुन्दर कपड़े पहनते थे। लोग तुम्हें कहते थे मुखर्जी साहब—"

सुशोभन सिर हिलाकर बोले, "सुचिन्ता कुछ याद नहीं पड़ता। तुम मुझे यह सब दिखा दोगी ?"

"दिखा दूँगी ? क्या दिखा दूँगी ?"

"यही खूबसूरत मेज, खूबसूरत घर और मुखर्जी साहब को।"

सुचिन्ता मुस्कराकर बोलीं, "कैसे दिखला सकती हूँ ? मैं क्या दिल्ली जा सकती हूँ ?"

सुशोभन आवेग से चंचल होकर बोले, "क्यों नहीं जा सकोगी सुचिन्ता ? तुम तो जानती हो कि तुम्हारे दिल्ली जाने से मुझे कितना अच्छा लगता रहा है।"

"अच्छा लगता है। तुमने मुझे कभी यह बात नहीं बतायी थी। कभी

तुमने नहीं बुलाया था, "सुचिन्ता दिल्ली चली जाओ। तुम्हारे यहाँ आने से मुझे अच्छा लगता है।"

अचानक सुशोभन भयभीत हो गये। डरे-डरे बोले, "इस तरह से मत कहो सुचिन्ता, मुझे डर लगता है।"

"डर लगता है। क्यों डर लगता है?"

"लगता है।" अचानक अपनी पुरानी-मुद्रा में वे चीख पड़े, "समझती क्यों नहीं कि मेरे दिमाग में काले-काले बादलों की तरह जाने क्या उमड़ने-घुमड़ने लगता है।"

"अच्छा, अब नहीं कहूँगी।"

"कहोगी क्यों नहीं? दिल्ली की बातें कहोगी। दिल्ली की अच्छी-अच्छी बातें। जिस दिल्ली में कुतुब के नीचे हम लोग बैठे रहते थे।"

"हम लोग—मतलब?"

जैसे चलते-चलते सुशोभन को ठोकर लग गयी हो। चमककर रुक गये। इसके बाद कुछ खोजते हुए बोले, "कौन हम लोग? मतलब हम लोग। तुम भी सुचिन्ता बड़ी भुलक्कड़ हो गयी हो।"

सुचिन्ता बेमतलब हँस पड़ी, "कौन कहता है भुलक्कड़ हो गयी हूँ? यह भी तो देखो न मुझे याद है कि तुम्हारे दवा का वक्त हो गया है।"

"फिर वही दवा। सुचिन्ता यही तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है। दवा मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। ये सारी दवाएँ नीता अपने साथ विलायत क्यों नहीं ले गयी?"

"जब ले ही नहीं गयी है तब इन्हें खा लो।" कहकर दवा की शीशी और पानी का गिलास सुचिन्ता ले आयी।

सुशोभन ने उसे हाथ से परे करते हुए कहा, "बस दवा, दवा और दवा। सारे लड़के कहाँ गये, पहले उन्हें ढूँढने की फ़िक्र तो करो?"

सुचिन्ता बड़े ठंढे लहजे में बोली, "क्यों, खोजने की क्या जरूरत है? तुम उन्हें बिल्कुल नहीं प्यार करते हो?"

"नहीं प्यार करता? यह किसने कहा? बिल्कुल प्यार करता हूँ।" सुशोभन अचानक बिगड़ गये "क्या उन लोगों ने तुमसे शिकायत की थी?"

"वे शिकायत क्यों करेंगे? तुम्हीं तो उनसे डरते हो। वे जब नहीं रहते तब निश्चिन्त रहते हो।"

सुशोभन जैसे परेशान हो गये। बोले, "नहीं, नहीं इस तरह से मत सोचो वे लोग यहीं रहेंगे। उनके न रहने से तुम रोने लगोगी।"

"मैं भला क्यों रोऊँगी? कभी तुमने मुझे रोते हुए देखा है क्या?"

सुशोभन थोड़ी चहलकदमी करके पास आकर बोले, "कैसे देखूँगा? तुम तो

रात के अँधेरे में रोती हो। मैं क्या उस अँधेरे में भला देख सकता हूँ ?"

सुचिन्ता का धैर्य जैसे खत्म हो गया। कंपित गले से बोलीं, "जब नहीं देख पाते—तब यह कैसे समझ गये कि मैं रात में रोती रहती हूँ ?"

सुशोभन पुनः पहले जैसी चहलकदमी करते हुए बोले, "नहीं पता चलेगा ? तुम रोओगी और मुझे पता नहीं चलेगा ? वही जब जाने कहाँ तुम रहती थी और मैं दिल्ली में रहता था ! हर रोज देखता, नन्हीं नीता के सो जाने के बाद मैं खामोशी से अपने बिस्तरे से उठकर खिड़की पर आकर खड़ा हो जाता था और तब देखता कि तुम रो रही हो।"

सुचिन्ता लगभग फुसफुसाते हुए बोलीं, "मैं कहाँ बैठकर रोती थी ?"

"बैठकर ? बैठकर नहीं। खड़ी होकर। बहुत दूर जाने कहाँ की किसी खिड़की के पास तुम खड़ी रहती थीं। चंद्रमा का प्रकाश तुम्हारे चेहरे पर पड़ता रहता था और उस रोशनी में तुम्हारी आँखों से झरते हुए आँसू मुझे साफ नजर आते थे। बिल्कुल मोतियों जैसे बूँद-बूँद ढरकते आँसू। मैं सच कह रहा हूँ न ?"

सुचिन्ता बोली, "सुशोभन, वह सुचिन्ता तो जाने कब की खत्म हो गयी है।"

"नहीं, नहीं !" सुशोभन चीख उठे, "तुम नाहक मरने की बात कहकर मुझे डरा रही हो। सुचिन्ता तुम भी जाने कैसी हुई जा रही हो ?"

सुचिन्ता बोलीं, "सुशोभन मैं तो जाने कैसी हो ही गयी थी। इस दुनिया में 'हँसना' और 'रोना' भी कोई चीज हैं इसे तो मैं भूल ही गयी थी।"

वाकई ऐसा ही था।

भावावेग की छटपटाहट से मुक्त होने के लिए रोना जरूरी है, इस बात को सुचिन्ता भूल ही गयी थी। स्वस्थ मानसिकता का परिचय देने के लिए आदमी को जाने कितना भूलना पड़ता है। "मैं स्वस्थ और स्वाभाविक हूँ"—इसे जाहिर करने के लिए आदमी को जाने कितना कुछ छोड़ना पड़ता है।

लेकिन पागलों की कोई जिम्मेदारी नहीं होती।

इसलिए जिसे वह भूल जाता है, उसे एकदम से भूल जाता है। जिसे भूल नहीं पाता, उसे दबा-ढँका रखने की कोई चिन्ता भी नहीं करता। और शायद उसके दिमाग में कोई बात सवार हो जाए तो सहज ही वह ध्यान से उतरती ही नहीं, हमेशा उसे मथती ही रहती है।

इसीलिए जो सुशोभन नींद की दवा के प्रभाव से सारी रात मूर्च्छित होकर सोये रहते थे, अब वे जाने कैसे आधी रात को उठकर बिना किसी आहट के एक कमरे से दूसरे कमरे में घुस जाते हैं।

अँधेरे में अगर कोई अपनी तेज नजरों से देख पाता तो सुशोभन की कुतूहल भरी आँखें और सफलता से दीप्त हुआ चेहरा उसे जरूर नजर आता।

सुचिन्ता का कमरा भी अँधेरे में डूबा हुआ था।

इस छोटे से कमरे में कोई बेड स्विच भी नहीं था जिसे तुरंत ऑनकर बिजली जलायी जा सकती। सुचिन्ता को सहसा अँधेरे में कुछ भी नजर नहीं आया। सिर्फ अपने चेहरे पर उन्होंने एक भारी हाथ का स्पर्श महसूस किया। वह हाथ जैसे चेहरे पर फिरकर यह पता करना चाहता था कि सुचिन्ता के गालों पर मोतियों जैसे आँसुओं के कोई चिह्न हैं या नहीं।

"कौन है! क्या बात है। क्या हुआ?" झटके से उस हाथ को ठेलकर अपनी देह का कपड़ा सँभालते हुए सुचिन्ता हड़बड़ाकर उठ बैठीं। बत्ती जलाकर उन्होंने देखा कि उनके बिस्तर के पास एक विचित्र कुतूहल भरी मुस्कराहट लेकर वह पागल खड़ा हुआ था।

अचानक सुचिन्ता को महसूस हुआ कि उसके सोते हुए अगर कोई उसका खून करने आये तो उसकी मुख-मुद्रा ठीक इसी तरह होगी। उन्होंने दबी मगर तेज आवाज में पूछा, "अचानक इस तरह से यहाँ चले आये? क्या बात है?"

पागल ने फुसफुसाकर कहा, "तुम्हारी चोरी पकड़ने आया था। देखने आया था कि तुम रो रही हो कि नहीं।"

"छि: छि:! नींद टूटने पर क्या इस तरह से चले आना चाहिए? जाओ अपने कमरे में जाकर सो जाओ।"

पागल ने इसकी परवाह नहीं की।

अपने चेहरे पर भरपूर मुस्कराहट लाकर बोला, "तुम्हें कैसा पकड़ लिया, यह नहीं कह रही हो। कहती थी कि तुम बिल्कुल नहीं रोती। आँसुओं से तुम्हारे गाल अभी भी भीगे हुए हैं।"

"ठीक है, मैं इन्हें पोंछ लेती हूँ। चलो सुशोभन, तुम्हें चलकर सुला दूँ।"

सुशोभन को कहीं बैठने की जगह नजर नहीं आयी शायद इसीलिए वे परम निश्चिंतता से बिस्तर पर बैठ गये। बोले, "सुचिन्ता, मुझे अब नींद नहीं आयेगी यहाँ पर कुछ देर बैठकर तुमसे बातें करने का मन हो रहा है?"

"मेरा मन नहीं है, मुझे नींद आ रही है।" सुचिन्ता ने पागल को डाँटने के लिए थोड़े रूखे लहजे में कहा, "नींद में बाधा पड़ने से मेरी तबियत खराब हो जाती है। चलो, जाकर अपनी जगह पर सो जाओ।"

"नहीं सुचिन्ता," सुशोभन बच्चों की तरह मचलते हुए बोले, "नहीं, नहीं, तुम्हें आज सोने नहीं दूँगा। देखो न तुमसे मैं कितनी मजेदार बातें कहनेवाला हूँ।"

"सुशोभन मैं तुम्हारे पैर छूती हूँ। अब चलो यहाँ से। सुनो, रात में कभी इस तरह से न आना चाहिए, न बातें करनी चाहिए। समझ गये?"

"नहीं।"

"नहीं, नहीं, अब जल्दी उठकर अपने कमरे में जाओ। मुझे बड़ी जोर से
आ रही है।"

सुशोभन चुपचाप खड़े हो गये।

बुझे हुए स्वर में बोले, "लेकिन पहले तो तुम्हें इतनी नींद नहीं लगती थी
चिन्ता, जब खिड़की के पास खड़ी होकर रोती रहती थीं। तब तो यूं ही कितनी
त बीत जाती थी न तुम्हें पता चलता था, न नींद ही सताती थी?"

"अब मेरी तबियत ठीक नहीं रहती।"

"तबियत ठीक नहीं है।" सुशोभन चौंक गये। बोले, "तुम्हारी तबियत
खराब रहती है और सारी दवाएँ मुझे ही खिलाती रहती हो। सच, तुम बहुत
दुबली भी हो गयी हो।"

एक व्यवहारहीन पागल स्नेह में भरकर रोग की परीक्षा करने के लिए
सुचिन्ता के माथे और गालों पर हाथ फेर-फेरकर देखने लगा।

सुचिन्ता हताश होकर बोलीं, "सुशोभन, बीच-बीच में ऐसा लगता है कि
तुम बिल्कुल चंगे हो गये हो। लेकिन फिर—"

"चंगे होने से क्या मतलब है सुचिन्ता?" पागल ने खीझकर कहा, "क्या
मुझे कोई बीमारी हुई थी? तुम्हीं पागलों की तरह सारे समय मुझे दवा पिलाती
रहती हो। अब मैं नहीं खाऊंगा। जैसे आज मैंने नहीं खाया—" अपनी बहादु
अपने कौतुक भरे चेहरे से सुशोभन ने रहस्योद्घाटन किया, "रात में सोने
पहले तुमने मुझे जो टेबलेट दिया था, मैंने उसे सिर्फ मुंह में दवा रखा था
तुम्हारे कमरे से बाहर जाते ही मैंने फेंक दिया था।"

"फेंक दिया?"

"बिल्कुल फेंकूंगा। तुम मुझे सिर्फ दवा क्यों खिलाती रहोगी?"

सुचिन्ता उस प्रसन्नता भरे मुख को चकित होकर देखती रहीं। दवा
न जाने के कारण ही शायद यह अनिद्रा और ऐसी स्नायविक चंचलता है
हाल तो यही दवा सुला-सुलाकर पागल के चंचल स्नायुओं के तनाव क
कर रही थी। इस दवा को नियमित देते रहने से लाभ होगा, डाक्
यही राय थी।

सुशोभन ने सुचिन्ता की नजर बचाकर दवा को फेंक दिया था।
को और थोड़ा सतर्क रहना चाहिए था।

"सुशोभन, अब कभी ऐसा मत करना।"

"क्या नहीं करूंगा?"

"यही दवा फेंक देना, रात खुद न सोकर यहां आकर मेरे
करना—"

"सुचिन्ता, तुम नाराज हो गयी ?" सुशोभन के चेहरे पर अपराधीपन छा गया।

शायद सुचिन्ता कहने जा रही थी, "हाँ मैं नाराज हूँ।" लेकिन ऐसा कह नहीं सकी। उस अबोध चेहरे को देखकर जैसे उनकी अन्तरात्मा उनके इस विचार से उन्हीं को धिक्कारने लगी।

अपने को थोड़ी-सी असुविधा के आघात से बचाने के लिए वे इस अबोध विश्वस्त व्यक्ति को चोट पहुँचायेंगी ? क्या सुचिन्ता इतनी अधिक स्वार्थी हो गयी है ?

"नाराज क्यों होऊँगी ?" सुचिन्ता मुस्करा पड़ी, "मुझे तो नींद आ रही है। बेहद नींद आ रही है। चलो, तुम्हें सुला आऊँ, फिर मैं भी सोऊँगी।"

"क्यों मुझे सुनाने की क्या जरूरत है ?" सुशोभन गंभीरतापूर्वक बोले," मैं क्या कोई छोटा बच्चा हूँ ? इससे अच्छा है कि तुम्हीं लेट जाओ। मैं तुम्हारे माथे पर हाथ फेर रहा हूँ, तुम्हें गहरी नींद आयेगी।"

"खूब गहरी नींद आयेगी ? खूऽऽब गहरी नींद ?" अचानक एक विचित्र अस्वाभाविक स्वर में सुचिन्ता कहने लगी, "ऐसी नींद जो कभी नहीं टूटेगी ? सुशोभन ऐसा कर सकते हो ? मुझे ऐसी नींद में सुला सकते हो ? पहले तुम मुझे ऐसी नींद लाने की गारंटी दो, तब मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर सो जाऊँगी।"

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं सुचिन्ता तुम मुझसे इस तरह से बातें न किया करो।"

"नहीं कहूँगी ? ठीक है। लेकिन दिक्कत यह है कि मेरे सिर पर किसी के हाथ फेरने से मुझे नींद नहीं आती है।"

"नींद नहीं आती ?"

"नहीं।"

"आश्चर्य यह है। और मुझे क्या महसूस होता है, जानती हो सुचिन्ता ? मेरे माथे पर तुम्हारे हाथ फेरने से मैं खूब आराम से सो सकता हूँ। लेकिन तुम तो ऐसा कभी नहीं करती।"

"अच्छा करूँगी। किसी दूसरे दिन करूँगी। अब आज ऐसे ही सो जाओ, सुशोभन।"

"दूसरे दिन क्यों, आज ही।" अचानक जिद भरी भंगिमा में वे सुचिन्ता के बिस्तर पर धप्प से बैठते हुए और अपनी खास हँसी में रात की निस्तब्धता को भंग करते हुए बोले, "मुझे हिलाओ तो जानूँ। देखूँ, तुम्हारी देह में कितना जोर है।"

नहीं, सुचिन्ता की देह में ज्यादा ताकत नहीं है। कभी भी नहीं रही। लेकिन आत्मबल ? वह शायद शरीर की ताकत के विपरीत होता है। सभी को ऐसा

महसूस होता है, यह नहीं मालूम लेकिन सुचिन्ता के संदर्भ में ऐसा ही था। बेहद आत्मबल न होने से पागल की जोरदार खिलखिलाहट से चौंककर बड़े लड़के की नींद टूट जाने पर इसके चकित होकर उस कमरे में आ जाने के बावजूद भला सुचिन्ता इतने सहज ढंग से बैठी रह सकती थीं ?

और सिर्फ बैठे रहना ही नहीं, नजदीक बैठकर उस पागल के सिर पर हाथ भी फेरते रहना पड़ा था।

लेकिन निरुपम ने कुछ भी नहीं कहा।

सिर्फ वह उठकर एक बार दरवाजे के बाहर आकर सामने बरामदे में खड़ा हो गया था। एक बार कहना भी सही नहीं होगा, कहना चाहिए क्षण भर के लिए वह बाहर आया था। दूसरे ही क्षण वह छाया खामोशी से हट गयी थी। सुचिन्ता ने देखा, पलक झपकते न झपकते उस छाया को अँधेरे में गायब होते हुए देखा।

लेकिन निरुपम क्या कोई सवाल नहीं कर सकता था ? कुछ नहीं तो विस्मय प्रकट ही कर सकता था। माँ के ऊपर क्या थोड़ी-सी भी सहानुभूति प्रकट करना क्या उसके लिए संभव नहीं था ?

सुचिन्ता का बड़ा लड़का तो उदार और बेहद परिष्कृत स्वभाव का था। उनके घर में जबरन आये हुए एक पागल के लिए वह बहुत कुछ करता है। निरुपम के ऊपर दायित्व डालकर नीता जैसी बुद्धिमती लड़की भी निश्चित हो गयी थी। वह जानती थी कि सुचिन्ता के बड़े लड़के की सहानुभूति वैसे पागल के प्रति पूरी तौर से थी।

लेकिन आश्चर्य है, अपनी माँ के प्रति उसकी जरा भी सहानुभूति नहीं थी।

सुचिन्ता ने गहरी साँस लेते हुए सोचा, एक तुच्छ सवाल करके भी वह बहुत बड़ा बन सकता था, बहुत सुन्दर हो सकता था। अगर वह सिर्फ यही पूछ लेता कि, "क्या हुआ ? बात क्या है ?" लेकिन मनुष्य का मन बहुत कृपण है, दीन है।

मुट्ठी में ऐश्वर्य की चाभी बंद रहने के बावजूद व्यक्ति बड़े आदर से दैन्य को स्वीकार कर लेता है।

सुचिन्ता सारी रात स्तब्ध होकर बैठी हुई मनुष्य के इस इच्छाकृत दैन्य के बारे में सोचती रहीं।

रात में नींद में बाधा पड़ने की प्रतिक्रियास्वरूप सुशोभन सुबह देर तक सोते रहे। बत्ती रातभर जलती रही थी। सुचिन्ता ने सुबह जाकर उसे बुझा दिया। इसके बाद वे नहानघर में चली गयीं। सुचिन्ता के कमरे का आधा सरकाया हुआ पर्दा वैसे ही झूलता रहा।

नौकरानी संध्या रोज की तरह बरामदा पोंछने के लिए हाथ में पोंछना

और बाल्टी लेकर आयी। सरकाये हुए पर्दे से जब उसने छोटे कमरे में एक छोटी सी खाट पर एक भारी-भरकम आदमी को सोते हुए देखा तो वह काफी देर तक चौंककर खड़ी रह गयी। इसके बाद उसके चेहरे पर छुरी की धार जैसी एक तेज महीन हँसी फूट पड़ी। फिर वह अपने काम में जुट गयी।

सुबल चाय का पानी लेकर दूसरी मंजिल पर आया, ट्रे को टेबिल पर रखकर उसने कंधे से झाड़न उतारकर टेबिल को अच्छी तरह से पोंछ दिया। इसके इसके बाद पीछे मुड़कर देखते ही वह जड़ हो गया।

जड़ होने की बात ही थी।

उसे अच्छी तरह से याद है रात में पगला बाबू के सो जाने के बाद वह कमरे में पीने का पानी रखकर और बिस्तर में मसहरी खोंसकर गया था।

नहीं, सुबल के चेहरे पर हँसी की किरण नहीं फूटी। उसका काला चेहरा और भी काला हो गया और चेहरे की पेशियाँ मन ही मन कुछ सोचकर कठोर पड़ गयीं।

कलकत्ते में अनुपम कुटीर के अलावा ढेर सारे घर हैं। अगर वहाँ रहने का ठिकाना न हो तो ठीक है सुबल अपने 'देश' लौट जाएगा।

अब न इन्द्रनील के लिए चाय बनती है न नीलांजन के लिए ही। चाय बनती है सिर्फ निरुपम के लिए। इस समय वह रोज बरामदे के कोने में बिछी अकेली कुर्सी पर बैठकर अखबार पढ़ता हुआ मिलता है। लेकिन आज वह जगह खाली पड़ी हुई थी।

तनाव भरे काले-कलूटे चेहरे वाला सुबल इन्द्रनील और नीलांजन के खाली कमरों को पार करके निरुपम के कमरे के सामने आकर खड़ा हो गया। कुछ देर तक यूँ ही खड़ा रहा।

उसने देखा कि वह कमरा भी खाली था।

उसने चकित होकर देखा कि बिस्तरे की चादर खाट से नीचे लटक रही थी। इन्द्रनील के कमरे में साधारणतः ऐसा दृश्य नजर आ जाता था लेकिन निरुपम के कमरे में ऐसी अस्त-व्यस्तता आज तक नजर नहीं आयी थी। नींद से उठने पर बिस्तर झाड़कर कमरे की चीजों को व्यवस्थित करके तब वह अपने कमरे से बाहर निकलता था।

क्या निरुपम भी चला गया?

सुबल को ऐसा ही लगा।

अचानक सुबल के चेहरे पर क्रूरता झलकने लगी। वह एक के बाद एक तीनों कमरों की खिड़कियों-दरवाजों को खोलकर और उनके सारे पर्दे हटाकर दृढ़ कदमों से नीचे उतर गया।

अगल-बगल के तीनों खाली कमरों का खालीपन भयंकर रूप में

था। भोर की शर्मीली किरण खिड़कियों से बेरोक-टोक घुसकर दीवाल से सट-कर खड़ी हुई यह दृश्य देखती रही।

सुचिन्ता नहा-धोकर बिल्कुल सफेद ब्लाउज और कान के ऊपर वैसी ही एक सफेद पतली चादर ओढ़कर अपने कमरे के सामने आकर खड़ी हो गयीं। देखा, उस समय भी उस छोटे से बिस्तर पर अपनी भारी-भरकम देह लेकर किसी शिशु की तरह सुशोभन गहरी नींद ले रहे थे। लौटकर वे चाय की मेज के पास आकर खड़ी हो गयीं। देखा, सुबल हमेशा की तरह चाय रख गया है लेकिन हमेशा की तरह निरुपम अपनी कुर्सी पर नहीं बैठा हुआ था। उन्होंने पलटकर देखा और देखते ही देखते सुबल द्वारा तैयार किया हुआ वह सारा दृश्य उनकी नजरों के सामने आ गया।

लेकिन क्या वाकई यह दृश्य सुबल का तैयार किया हुआ था ?

या सुचिन्ता द्वारा निर्मित था। सुबल तो एक क्रूर हँसी हँसकर सिर्फ उसे उद्घाटित कर गया था।

मतलब निरुपम भी चला गया ?

सुचिन्ता ने भी सुबल की तरह ही सोचा। सोचने लगीं, आखिर कब गया ? क्या आधीरात को ही घर से बाहर निकल गया ?

नीलांजन के जाने के बाद उसके खाली कमरे में खड़े होकर उसे देखते हुए सुचिन्ता की आँखों से बरबस आँसू, झरने लगे थे। शायद उन्हें खुद भी इसका पता न रहा हो। लेकिन आज एक कतार में खड़े इन तीन-तीन खाली कमरों के भयंकर खालीपन को सूनी नजरों से ताकती हुई वे पत्थर की मूर्ति की तरह अचल हो गयी। गहरी सांस लेना तो दूर रहा लगा कि वे सांस लेना ही भूल गयी थीं।

लेकिन सुचिन्ता का बड़ा बेटा घर छोड़कर नहीं;गया था।

वह अपने परिवार के राहु की पुत्री से वचनबद्ध था। वह तड़के ही घर से निकलकर बहुत देर तक इधर-उधर घूमता रहा, इसके बाद डॉ० पालित के दिए हुए समय पर उनके चेम्बर में जाकर हाजिर हो गया।

डॉक्टर बोले, "अच्छा ऐसी बात है ? मैंने ऐसे आशा नहीं की थी।" फिर बोले, "इसका मतलब दो-एक सिटिंग और करनी पड़ेगी।"

डॉक्टर के यहां से होकर वह बिना नहाये-धोये ही कॉलेज चला गया। वहां से शाम को घर लौटा।

घर में घुसते ही उसे महसूस हुआ कि शायद माँ ने भी दिन भर कुछ नहीं खाया होगा। लेकिन दूसरे क्षण उसने जान-बूझकर मन को सख्त कर लिया। सोचा ऐसा न भी हुआ होगा, पागल का मन रखने के लिए ही शायद खाने की मेज पर साथ-साथ बैठकर हँसते-बतियाते हुए भोजन कर लिया हो।

अनुपम कुटीर के हमेशा शांत रहने वाले बड़े बेटे के मन में भी क्या बातों का तूफान उठ गया था ? अपने को वश में रखना क्या उसके लिए निरन्तर कठिन होता जा रहा था। इसीलिए बातों के जवाब में खामोश न रहकर वह बातें किए जा रहा था।

"समान होना ही चाहिए माँ। यही स्वाभाविक होगा। रोगी के प्रति सहानुभूति होनी ही चाहिए, लेकिन पागल को प्रश्रय देना न उचित कहा जा सकता है न वह जँचता ही है। मेरी राय में शालीनता ही किसी के लिए अंतिम सत्य होता है।"

"अंतिम सत्य के बारे मे क्या इतनी सहजता से विचार किया जा सकता है नीरू ?" सुचिन्ता बिना विचलित हुए बोलीं, "हर मनुष्य की अपनी खास धारणा होती है। शालीनता का मापदंड हर जगह एक समान नहीं होता।"

निरुपम अब और तर्क करता या रुक जाता ? एक साथ इतनी बातें क्या निरुपम ने कभी की थीं ?

फिर भी वह और भी शायद कुछ जरूर कहता। कहने जा भी रहा था, लेकिन भगवान ही जानते होंगे कि निरुपम और सुचिन्ता के भगवानों में से किसने आकर किसकी रक्षा की होगी, क्योंकि तभी सुबल ने आकर निरुपम के हाथों में एक टेलिग्राम थमा दिया।

एक और आकस्मिक टेलिग्राम !

फिर कोई बुरी खबर है क्या ?

नहीं बुरी खबर नहीं, खबर अच्छी ही थी। कम से कम दुनियादारी के तौर-तरीके में ऐसा ही कहा जाता है।

विवाह का समाचार ही शुभ समाचार कहा जाएगा।

निरुपम को नीता ने अपने लम्बे टेलिग्राम में सारी सूचनाएँ दी थीं। सागर से उसका विवाह सम्पन्न हो गया था। सागर की विवाहिता न होने से उसे कई स्थितियों में विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उसे सागर के मामले से सम्बन्धित बहुत सारे अधिकार भी नहीं प्राप्त हो रहे थे। इसीलिए जरूरत के लिए रजिस्ट्री से विवाह कर लेना पड़ा।

यह विवाह भावावेग का न होकर प्रयोजनसम्मत था।

शादी बहुत हड़बड़ाकर नहीं, बल्कि बहुत सोच-समझकर ही की गयी थी।

इसी बात की सूचना देते हुए नीता ने दोनों के लिए निरुपम से आशीर्वाद की कामना की थी और उसने यह भी लिखा था कि, "पिताजी को अभी यह सूचना देना बेकार ही होगा, बुआजी को कहने का साहस नहीं हो रहा है, इसी-लिए सिर्फ आपको ही यह खबर दे रही हूँ। बड़े भैया आप मेरे लिए उन लोगों से माफी माँग लीजिएगा।"

सबसे अन्त मे उसने यह भी लिखा था कि सागर को लेकर वह यथाशीघ्र भारत लौटने वाली है। साथ में सागर के दोस्त मिहिर रहेंगे, इसलिए चिंता की कोई बात नही है। पहले जाकर दिल्ली मे रुकना पड़ेगा क्योंकि सागर के कई मामले वहाँ सुलझाने हैं इसके बाद फिर भविष्य के बारे में सोच-विचारकर देखना पड़ेगा कि क्या करना उचित होगा। कहना नही होगा कि जीवन के हर क्षेत्र में नीता अपने भाग्योपलब्ध बड़े भाई के स्नेह और सहयोग की आशा रखती है।

उस टेलिग्राम की ओर एकटक देखते हुए निरुपम सोचने लगा, ऐसी शक्ति व्यक्ति मे कहाँ छिपी होती है? जिस शक्ति के वशीभूत होकर नीता जैसी लाड़-प्यार मे पली, एक कम उम्र की सुखी लड़की अन्धे पति और पागल पिता इन दो-दो दुर्वह भारों के बावजूद बिना विचलित हुए अपने सुखी भविष्य के बारे मे सोच सकती है। व्यक्ति मे ऐसी शक्ति आती कहाँ से है?

निरुपम की भी भविष्य के बारे मे कोई योजना है? क्या कभी थी भी? वर्तमान रात और आगामी कल के अलावा क्या उसने कभी अपने भविष्य के बारे मे कोई दूरगामी चिन्ता की थी? सिर्फ निश्चित दिनचर्या के अलावा निरुपम ने अपने भविष्य के बारे मे कुछ भी सोचा नहीं था?

भाग्य की विमुखता ही क्या व्यक्ति मे साहस जुटाती है? निरुपम के जीवन मे भी तो ऐसी परिस्थिति आ खड़ी हुई है लेकिन निरुपम उसे सहज रूप मे स्वीकार करके नये सिरे से भविष्य की योजना कहाँ बना पा रहा है? वह ऐसा साहस भी नही जुटा पा रहा है जिसके माध्यम से वह सुचिन्ता से स्नेह और सहानुभूति से पेश आ सके और सुशोभन को वह निकट आत्मीय की भाँति स्वीकार कर सके।

प्रेम करने और पाने से ही क्या व्यक्ति को अपने मन की अतल गहराइयों मे छिपी हुई कभी न खत्म होने वाली शक्ति के स्रोत की प्रतीति होती है।

लेकिन प्रेम करने और पाने का सौभाग्य भी इस संसार मे कितने लोगो को प्राप्त होता है? शायद ही किसी को अपने जीवन मे उस महिमामय से साक्षात्कार होता हो। साक्षात्कार होने पर भी आत्माभिव्यक्ति का मौका नही मिलता। शायद मौका मिल भी जाए तो वह द्विधा और कुण्ठा के कारण व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए लोग मन ही मन इतने दान-हीन-कठोर बन जाते हैं।

अचानक निरुपम को सुचिन्ता की याद आ गयी।

आज की सुचिन्ता नही। अनुपम मिहिर के संसार को यन्त्रवत चलाने वाली सुचिन्ता। निर्जीव, खामोश और विवर्ण सुचिन्ता। जहाँ निरुपम ने माँ को किसी भी बात का प्रतिवाद करते नहीं देखा। गृहस्थी मे अपनी बात को मनवाने की

कभी कोई कोशिश करते हुए नहीं देखा। निरुपम को अपने नाना की मृत्यु के दिन की एक घटना याद हो आयी।

सुबह-सुबह उनकी तबियत बहुत अधिक खराब हो जाने की सूचना मिली थी। सुचिन्ता उसी समय जाने के लिए तैयार हो रही थीं कि अनुपम ने सिर खुजलाते हुए कहा, "शाम को जाने से नहीं होगा ? मैंने तो आज कई लोगों को खाने पर बुला रखा है। इसको सँभालकर शाम को चली जाना"—सुचिन्ता बिना कुछ कहे हुए अपना जाना रोककर रसोईघर में घुस गयीं। कोई प्रतिवाद तक नहीं किया।

कुछ घण्टों के बाद ही रोगी की मृत्यु का समाचार मिला।

निरुपम को अचानक इस बात का अहसास हुआ कि माँ के इस मौन सहने को वह सिर्फ अनुकम्पा भरी नजरों से देखता आया है। माँ के मन को उसने कभी समझने की कोशिश नहीं की। हालांकि थोड़ी-सी कोशिश से ही आदमी को समझा जा सकता है। और उस तरह से समझने की कोशिश में ही व्यक्ति का महत्त्व है, उसकी मानवीयता है।

आदमी सब कुछ समझ-बूझकर भी समझना नहीं चाहता, यही आश्चर्य करने वाली बात है।

वह महत्त्वपूर्ण के प्रति सम्मान व्यक्त करता है, श्रद्धा प्रकट करता है लेकिन वैसा कभी बनना नहीं चाहता। 'महत्त्वपूर्ण होने की जरूरत क्या है, न होने से क्या बिगड़ जायेगा ?' ऐसा ही कुछ वह सोचता है।

हाथ में टेलिग्राम लिए हुए निरुपम सुशोभन के पास जा पहुँचा। सुशोभन पागलपन की चंचलता भूलकर अकेले गंभीर होकर बैठे हुए थे। सुशोभन सुबह से ही खामोश से थे। वे प्रायः ऐसे नहीं रहते थे। अन्य दिनों कुछ न करने पर भी कमरे में बैठकर जोर-जोर से कविता ही पढ़ते रहते थे।

आज नींद टूटने के बाद से वे चिन्तामग्न होकर खामोश बैठे थे।

न जाने क्या बात थी।

शायद जगने के बाद नये परिवेश को देखकर अचंभित हो गये थे या रात के पागलपन को याद करके गुमसुम थे, कौन जाने ? अपने पागलपन भरे आचरण का अहसास क्या पागल को होने लगा था ?

निरुपम ने टेलिग्राम को उनके सामने रखते हुए बोला, "इसे पढ़ लीजिए।"

"पढ़ लूँ। मैं इसे पढ़ूँ ?" सुशोभन निरुपम की ओर चकित दृष्टि से देखते हुए बोले, "क्या है यह ?"

"टेलिग्राम नहीं पहचानते ?"

"टेलिग्राम क्यों नहीं पहचानूंगा ? अच्छा बताओ तो तुम मुझे समझते क्या हो ?"

"ऐसा कुछ भी नहीं। इसे आप पढ़कर समझने की कोशिश कीजिए।"

"क्यों जरूरत क्या है ?" मुशोभन उसी लहजे में बोले, "मैं क्यों समझने की कोशिश करूँ ? न जाने किसका टेलीग्राम है।"

"नहीं जानते ? आपकी नीता बेटी का है।"

"नीता का ? उसने टेलिग्राम किया है ?"

"हाँ। पढ़कर देखिये क्या लिखा है।"

"मैं पढ़ूँगा" कहकर वे खोयी-खोयी नजरों से मुशोभन को देखने लगे। इस सवाल ने बड़ा असहाय बना दिया।

निरुपम ने स्नेह भरे दृढ़ स्वर में कहा, "क्यों पढ़ेंगे नहीं ? क्या आपको पढ़ना नहीं आता ?"

"पहले जानता तो था।"

"अभी भी जानते हैं। पढ़कर देखिये।"

मुशोभन ने पहली पंक्ति बुदबुदाते हुए पढ़कर उसे एक तरफ करते हुए कहा, "मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"अच्छा नहीं लग रहा है ? लेकिन इसमें खूब अच्छा लगने की बात ही तो लिखी हुई है। नीता की शादी की बात लिखी है। उसने शादी कर ली है। मतलब आपकी लड़की नीता ने।"

"नीता की शादी। मेरी लड़की नीता की शादी हो गयी है।" अचानक मुशोभन ने निरुपम के दुबले-पतले दोनों कंधों को जोर से दबाते हुए उन्हें झिंझोड़ते हुए कहा, "यह बिल्कुल झूठ है।"

"मैं झूठी बात नहीं कह रहा हूँ। सचमुच शादी हो गयी है।"

"तुम्हारे कहने से ही मैं मान लूँगा ?" इतनी देर से खामोश पड़े मुशोभन अचानक चीख कर बोले, "अगर शादी हो गयी है तो शादी की शहनाई कहाँ बजी ?"

नहीं, नीता की शादी में शहनाई नहीं बजी थी। लेकिन इन लोगों की शादी में तो बजी थी। मतलब कृष्णा और इन्द्रनील की शादी में। शहनाई बजाने वालों को काफी पैसा देकर कृष्णा के पिताजी ने पूरे तीन दिनों तक शहनाई बजवायी थी। लेकिन शहनाई की आवाज खत्म होते न होते उन दोनों के विचारों का अलगाव नजर आने लगा। यह पार्थक्य हनीमून के दौरान ही उभर आया।

उन लोगों की आपसी बातचीत के बीच-बीच में ही मधुरता की ब... मिर्चे की भार ही दिनोंदिन बढ़ता गया। हालांकि यह कहना मुश्किल है कि इस भार के पीछे विच्छेद का संकेत था या एक दूसरे के ...

और मजबूत होती जा रही थी। सिर्फ अपरिचित के साथ विवाह में जो बात कुछ दिनों के बाद नजर आती है, परिचित के साथ विवाह में वही बात हनीमून के दौरान ही नजर आने लगती है। शायद यही स्वाभाविक है। पूर्वराग की स्थिति की समाप्ति और नव-अनुराग की व्रीड़ा-रक्तिम माधुरी के नेपथ्य में चले जाने और विवाह हो जाने के बाद वर-वधू को प्रतिदिन के पति-पत्नी की भूमिका में उतरने के लिए भी भला समय लगता होगा ?

अपने भविष्य के बारे में विचारते हुए ही विरोध का सूत्रपात हो जाता है।

कृष्णा के पिताजी ने लड़की और दामाद के लिए होटल का एक कमरा एक महीने के लिए बुक करवा दिया था। नवदाम्पत्य के एक माह लगभग पूरे हो रहे थे, तभी एक दिन कृष्णा ने जिद पकड़ ली कि वह कलकत्ता लौटने के बाद इन्द्रनील के घर में ही रहेगी, उसे 'घरजमाई' नहीं बनने देगी।

इन्द्रनील बोला, "यह असंभव है।"

कृष्णा नाराज होकर बोली, "जरा सुनूं तो असंभव क्यों है ?"

इन्द्रनील बिना किसी तर्क के बोला, "असंभव है इसीलिए असंभव है। इसमें क्यों का सवाल नहीं उठता।"

"शादी के बाद लड़कियाँ ही अपने ससुराल जाती हैं, लड़के नहीं।"

"मेरी तकदीर में तो उल्टा लिखा है। लड़की के घर में सात दिनों तक कौन दूल्हा शादी के लिए धरना दिए बैठा रहता है।"

"वह अलग बात थी"—कृष्णा नाराज होकर बोली, "उस मामले में मेरा कोई हाथ नहीं था। लेकिन इस समय मेरा जीवन सिर्फ मेरा अपना है। मेरी इच्छा—"

इन्द्रनील मुस्कराते हुए बोला, "अपनी इच्छानुसार तुम मुझे नचा सकती हो। लेकिन मुझे लेकर ससुराल में जाने की कामना मत करना, यही अनुरोध है।"

"तुम्हारे अनुरोध की परवाह किसे है ? अगर तुम अपनी ससुराल में रहोगे तो अपने दोस्तों के आगे मैं शर्म से सिर नहीं उठा पाऊँगी।"

इन्द्रनील ने हँसते हुए कहा, "खैर, मूल कारण का पता चल गया। मैं यही सोचकर परेशान हो रहा था कि अचानक तुम अपनी ससुराल जाने के लिए आखिर इतनी उतावली क्यों हो गयी हो ? क्या तुम्हें भी हिन्दू कुलवधुओं की हवा लग गयी ? लेकिन कृष्णा, तुम अपने दोस्तों के सामने मारे शर्म के आँखें नहीं उठा पाओगी। क्या यह बात तुमने पहले नहीं सोची थी ? यह व्यवस्था तो शादी से पहले ही निश्चित हो गयी थी। तब तो तुमने आपत्ति नहीं की थी ?"

कृष्णा बोली, "उस समय आपत्ति करके क्या मैं शादी को खटाई में डाल

देती ? ऐसी मूर्ख मैं नहीं हूँ। यह बात मैं अच्छी तरह से जानती थी कि पिता जी की बातें माने बिना यह शादी संभव नहीं थी।"

"शादी नहीं हुई होती तो क्या बिगड़ जाता।"

"मेरा बिगड़ता।" कृष्णा मुस्कराकर, बोली, "नचाने के लिए एक बंदर की सख्त जरूरत महसूस होने लगी थी।"

"इस दुनिया मे बंदर तो दुर्लभ नहीं है।"

"दुर्लभ है। ऐसा न होता तो मेरी सभी हतभागी सहेलियाँ अभी तक कुँवारी क्यों बैठी हुई हैं। मुझसे तो वे सब बेहद जलने लगी हैं। कहती हैं," तू बड़ी भाग्यवान है।" असल में आजकल सभी माता-पिता अपनी लड़कियों की शादी की बात ही नहीं सोचते।"

"नहीं सोचते ?"

"बहुत कम लोग सोचते हैं। अधिकतर माता-पिता सोचते हैं कि उनको इतने झंझट मे पड़ने की जरूरत क्या। अगर वह किसी को फँसा लेती है तो शादी हो जाएगी, नहीं तो जरूरत क्या है। खर्च भी बचता है, झंझट भी नहीं करना पड़ता।"

"तो सभी लोग जुटाती क्यों नहीं ?"

"अहा !" कृष्णा बोली, "सभी क्या मेरी तरह चतुर होती हैं ?"

"ठीक कहती हो। लेकिन फिलहाल अब तुम्हारी बुद्धि आगे सफल होने वाली नहीं है। अपने मकान मे तुम्हें ले जाना मेरे लिए असंभव है।"

कृष्णा गंभीर होकर बोली, "तुम्हारे लिए असंभव होगा लेकिन मेरे लिए नहीं। क्या उस मकान मे मेरा कोई अधिकार नहीं है ?"

"तुम्हारा अधिकार ?" इन्द्रनील चकित होकर देखने लगा।

कृष्णा मुँह टेढ़ा करते हुए बोली, "इतना चकित होने की क्या बात है ? अपने पिता के तुम तीन लड़के हो। तीन हिस्सों मे एक हिस्सा तुम्हारा है। तुम्हारा मतलब मेरा। मैं वहाँ जाकर अपना हक लेकर रह सकती हूँ।"

इन्द्रनील ने कहा कि कृष्णा चाहे तो वहाँ जाकर अपने हक के लिए लड़ सकती है, वह इन सबके बीच नहीं पड़ेगा।

कृष्णा बोली, "ठीक है मैं खुद देख लूँगी।" मन ही मन वह कड़वाहट में भरकर सोचने लगी, दर असल तुम्हारी असुविधा कहाँ है, इसे मैं खूब समझती हूँ। कहीं तुम्हारी माँ की चरित्र जगजाहिर न हो जाय, इसीलिए डरते हो न। खैर—वह बाधा अब मैं अधिक दिन नहीं रहने दूँगी। एक तरफ से सब साफ कर दूँगी।

असल में कृष्णा अपनी माँ के उकसावे पर चल रही थी। मुहल्ले में रहकर लड़की की सास एक पागल के साथ पागल बनी रहेगी। इसे व बर्दाश्त [illegible]

कतई तैयार नहीं थीं। उन्होंने अपनी लड़की से साफ-साफ कह दिया था, "जरा ठहर, शादी हो जाने दे, तब मैं निपटूंगी।"

इसीलिए जब-तब कृष्णा यही चर्चा छेड़ बैठती है। साथ ही साथ पति के प्रेम में बेसुध-विह्वल नवविवाहिता की भूमिका भी निभाती रहती है। अपने प्रेम दुलार, मनुहार में इन्द्रनील को वशीभूत करने में इसे देर नहीं लगती।

इसी तरह से दिन बिताते हुए एक दिन कलकत्ता लौटने का वक्त आ गया।

लेकिन इन्द्रनील को किस कलकत्ते में वापस लौटना था ?

जिस कलकत्ते में एक अविवेकी अबोध-व्यक्ति समस्त सुख और शान्ति का अपहरण करके बैठा हुआ था ?

इन्द्रनील के अभियोग को भी गलत नही कहा जा सकता। उन लोगों की सुख शांति को वाकई उस पागल ने खत्म कर दिया था। और दूसरी तरफ उसके सुख-चैन की कोई सीमा नहीं थी। मस्ती से खाना-सोना और जब-तब खुले गले से कविता पाठ करना बिना किसी विघ्न-बाधा के चल रहा था।

द्रुत चहलकदमी करते हुए कविता पढ़ने की सुशोभन की खास आदत रही है। आज भी वे उसी मुद्रा में खूब ऊँची आवाज में काव्य पाठ कर रहे थे—

—"वीनातंत्रे हानो हानो खरतर झंकार झंजना
तोलो उच्च सूर
हृदय निर्दयाघाते झर्झरिया झरिया यड़ूक
प्रबल प्रचूर।
गाओ गान प्राण भरा झड़ेर मतन उर्ध्वतमे
अनन्त आकासे—
उड़े जाक् दूरे जाक—विवर्न विशीर्न जीर्न पाता
विपुल निश्वासे।

भावार्थ : वीणा तंत्रिका को तीव्र झंकृत करते हुए वीणा के स्वर को और ऊँचा उठाओ। जिस स्वर के सबल निर्मम आघात से यह मन उद्वेलित हो उठे। ऐसा तूफानी गीत गाओ जो अनंत को आच्छादित कर दे। जिसकी गहरी सांसों से यह विवर्ण, विशीर्ण, जीर्ण पत्ता कहीं उड़कर दूर चला जाए।

'विपुल निश्वास में—विपुल निश्वास में—' अपनी तेज चहलकदमी को रोककर सुशोभन अचानक अपने माथे पर हाथ घिसने लगे। गूंगी आंखों से दीवाल की ओर ताकते रहे फिर भी इसके बाद की पंक्तियाँ उनके ध्यान में नही ही आयीं।

अचानक वे 'सुचिन्ता,' सुचिन्ता !' कहकर चीखने लगे।

सुचिन्ता काम-काज छोड़कर चली आयीं।

सुशोभन परेशान होकर बोले, "इसके बाद क्या है सुचिन्ता ?"

सुचिन्ता हँसकर बोली, "किसके बाद ?"

"आह ! किसके बाद, यह समझ नहीं पा रही हो ?" सुशोभन चंचल होकर बोले "जो मैं कह रहा था। मैं क्या कह रहा था। हाँ—वही—हाँ-हाँ विपुल निश्वासे, विपुल निश्वासे। लेकिन इसके बाद ?"

"विपुल निश्वासे ?"

सुचिन्ता चकित होकर बोली, "मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

"नहीं समझ पा रही हो ? बहुत खूब। दिनाजपुर वाले घर की छत पर मैं जोर-जोर से बोलकर कंठस्थ करता रहता था और तुम मुँह बाये मुझे देखती रहती थी। अब भी कहीं कुछ समझ में आया कि नहीं, या कुछ याद नहीं पड़ रहा है।"

सुचिन्ता कुछ अड़चन में पड़ते हुए बोली, "नहीं, नहीं वह सब तो याद है लेकिन तुम याद किससे करते थे यही सोच रही हूँ।"

"और किससे याद करता था। क्लास में फर्स्ट आने पर बंगला भाषा के मास्टर जी ने अपनी ओर से उस पुस्तक को उपहार में दिया था।"

सुचिन्ता बोली, "ऐसा कहो। वह पुस्तक थी चयनिका।"

"हाँ-हाँ चयनिका। लेकिन तुमने भी तो मुझसे सुन-सुनकर काफी कुछ कंठस्थ कर लिया था। तब इसके बाद की पंक्तियों को क्यों नहीं बतला पा रही हो। यही 'उड़े जाक, दूरे जाक विवर्न विशीर्न पाता'—

सुचिन्ता धीरे-धीरे कुछ रुक-रुककर बोली,' 'आनन्दे आतंके मिशि, क्रन्दने उल्लासे—"

"देट्स राइट।" सुशोभन चीख पड़े, "ठीक कह रही हो। क्रन्दने उल्लासे गरजिया मत्त हाहारवे। झंकार मंजीर बाँधि उन्मादिनी कालवैशाखीर नृत्य होक तवे।" (क्रन्दन में उल्लास में हाहाकार भरा गर्जन करके उन्मादिनी कालवैशाखी अपने पैरों में झंझा की पायल बाँधकर नृत्य में प्रस्तुत हो।)

सुशोभन फिर से द्रुत चहलकदमी करते हुए उदात्त कंठ से फिर कविता पढ़ने लगे।

'छन्दे-छन्दे पदे पदे अंचलेर आवर्त आघाते
उड़े होक क्षय।
धूलि सम तृण सम, पुरातन वत्सरेर यत
निष्फल संचय।

(उसके हर छन्द से हर चरण से आंचल के आवर्त आघात से पुराने वर्ष का सब निष्फल संचय धूल और तिनके की तरह उड़कर खत्म हो जाए।)

सुचिन्ता अपना काम छोड़कर चली आयी थीं क्या वे इसे भूल गयी थीं। वे भूल गयी थीं कि एक प्रौढ़ा विधवा के सामने एक उद्भ्रांतचित्त प्रौढ़ पागल दिन के प्रकाश भरे कमरे में बैठकर काव्यपाठ किए जा रहा था। अपनी कल्पना में वे देखने लगीं कि एक पुराने घर के टूटे हुए मुंडेरों वाली छत पर सूरज ढलने की वेला में एक सुकुमार किशोर अपने बड़े-बड़े बालों को हिलाकर चहलकदमी करते हुए काव्य पाठ कर रहा है और एक किशोरी लड़की उसे मुंह बाये देख रही है।

"हे नूतन एशो तूमि सम्पूर्न गगन पूर्न करि
पुंज पुंज रूपे
व्याप्त करि लुप्त करि स्तरे स्तरे स्तवके स्तवके
घन घोर स्तूपे।"

(हे नूतन तुम सम्पूर्ण-सृष्टि को पूर्ण करते हुए, पुंजीभूत रूप में सबको व्याप्त करते हुए और पुरातन के सारे कल्मष को तुम लुप्त करते हुए आओ। तुम्हारा स्वागत है।)

उन्होंने देखा कि उस कविता की झंकार के साथ-साथ रोज का उस लड़के का जाना-पहचाना चेहरा किसी नयी आभा से चमक उठा।

खीरतक्ति और चन्द्रपुलि का शौकीन, पेड़ पर चढ़कर फूल तोड़ने में उस्ताद वह लड़का अचानक एक अबूझी दुनिया की आभा से कोई दूसरा लड़का नजर आने लगा। इसीलिए उसका पहले का मधुर धीमा कंठ स्वर क्रमशः ऊंचा होने लगा—

"हे दुर्दम हे निश्चित हे नूतन, निष्ठुर नूतन
सहज प्रबल
जीर्न पुष्पदल यथा ध्वंस भ्रंश करि चतुर्दिके
बाहिराय फल।
पुरातन पर्नपूट दीर्न करि विकीर्न करिया
अपूर्व आकारे।
तेमनि सबले तूमि परिपूर्न हयेछ प्रकाश
प्रनाम तोमारे।"

(हे दुर्दम! हे निश्चित! हे नूतन! तुम प्रबल हो, फिर भी कितने सहज हो। जिस तरह से जीर्ण पुष्पदल को ध्वंस करके फल का आविर्भाव होता है, उसी तरह से तुम भी पुराने को नष्ट करके एक अपूर्व नूतन की सृष्टि करते हो। मैं तुम्हारी शक्ति को प्रणाम करता हूँ।)

धीरे-धीरे घर-गृहस्थी का हर काम और काम-काज की दुनिया आँखों के

सामने से ओझल हो गयी। ओझल हो गया सुबह-शाम, दिन-रात का ज्ञान, सिर्फ चेतना में यही स्वर झंकृत होता रहा—

"तारपर फेले दाओ, चूर्न करो जाहा इच्छा तव
भग्न करो पाखा।
जेखाने निक्षेप करो हृत पत्र च्युत पुष्पदल
छिन्न-भिन्न शाखा।
खनिक खेलना तव, दयाहीन तव दस्युतार
लुंठनावशेष
सेथा मोरे फेले दियो अनन्त तमिस्र सेइ
विस्मृतीर देश।
नवांकुर इक्षु बने—"

(इसके बाद तुम भले ही नष्ट कर दो पंखों को तोड़ दो, झरे हुए फूस-पत्तों को फेंक दो जो तुम्हारी मर्जी हो करो। तुम्हारे लिए तो यह सब कुछ एक सहज खेल है। दयाहीन दस्युता का लुंठनावशेष है। तुम चाहो तो विस्मृति के घने अंधकार में मुझे भी फेंक सकते हो। नव अंकुरित इक्षु वन में—)

"माँ!"

यह संबोधन सुनकर सुचिन्ता चौंककर मुड़कर देखने लगी।

नहीं, और कोई नहीं। सुबल था। सम्मान प्रकट करने के लिए उसने थोड़ी दूरी बनाए रखकर आवाज दी थी।

टूटे हुए मुंडेरों वाली काई लगी हुई छत से सुचिन्ता नीचे उतर आयी, उतर आयी दुमंजिले कमरे के मोजेक वाले फर्श पर। भौंहें सिकोड़कर बोली, "क्या चाहिए?"

सुबल ने सिर झुकाए हुए कहा, "नीचे की मंजिल में छोटे भैया छोटी बहू को लेकर आये हैं।"

छोटे भैया छोटी बहू को लेकर आये हैं।

यह कौन-सी माया है!

सुचिन्ता क्या सचमुच चेतना की दुनिया में लौट आयी थी या वे कल्पना के एक राज्य से दूसरे राज्य में छिटक कर आ पड़ी थीं?

उन्होंने साफ-साफ ही सुना था। फिर भी अपने संदेह को दूर करने के लिए दुबारा पूछ लिया, "कौन आया है नीचे?"

"छोटे भैया और छोटी बहू। वही जो उस तरफ के सामने वाले मकान में रहती थीं।"

सुचिन्ता ने टोक दिया—"मालूम है। पूछ आओ, क्या वे मुझसे कुछ कहना चाहते हैं?"

"जी, वे लोग ऊपर ही आ रहे हैं। इसी की सूचना छोटे भैया ने भिजवायी है।"

"सूचना देने की क्या बात है? उन्हें आने को कहो।" कहकर सुचिन्ता दीवाल के पास रखे हुए मोढ़े को खींचकर उस पर बैठ गयीं।

बाधा पाकर सुशोभन का काव्य पाठ रुक गया।

नजदीक आकर बोले, "कमरे से चली क्यों आयी? यहाँ बैठ गयी? क्या 'चयनिका' की कविताएँ तुम्हें पसंद नहीं हैं?"

"पसंद क्यों नहीं है। कैसी बातें कर रहे हो, भला वह भी अच्छी नहीं लगेगी? पैर दर्द कर रहा था इसलिए बैठ गयी।"

"पैर में दर्द हो रहा है?"

सुशोभन थोड़ा व्याकुल होकर बोले, "पैर में दर्द क्यों हो रहा है? क्या खूब पैदल चलना पड़ा है?"

"नहीं, पैदल क्यों चलूंगी? कहाँ चलूंगी? तुम जरा थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहो।"

"बैठ जाऊँ? चुपचाप?"

"हाँ हाँ, अभी वे लोग यहाँ आते होंगे।"

"वे लोग? कौन हैं वे लोग?"

"वे लोग? वे—देखो आ रहे हैं। मेरा छोटा लड़का और उसकी बहू।"

वे लोग आये।

इन्द्रनील और नवपरिणीता पत्नी कृष्णा।

जिस लड़की को सुचिन्ता पहले भी देख चुकी थीं। जिस सास को पहले से कृष्णा ने देख लिया था। लेकिन आमने-सामने खड़े होकर उन्होंने क्या कभी एक दूसरी से बात की थी?

नहीं—ऐसा तो नहीं हुआ था?

आज कृष्णा ने रु-ब-रु होकर बात करने की ठान ली थी।

इन्द्रनील उसके पीछे खड़ा हुआ था। सचमुच कृष्णा ही क्या उसे यहाँ खींच लायी थी या इन्द्रनील के मन के प्रबल आकर्षण ने उसे अनुपम कुटीर की ओर खींच लिया था? सिर्फ मन ही मन इसे स्वीकार न कर पाने के कारण ही वह आत्मसमर्पण की मुद्रा में कृष्णा के पीछे-पीछे अपने मकान में चला आया था।

गहने-कपड़े से सजी कृष्णा ने झुककर सुचिन्ता के पैर छू लिए और उसी समय उसने अपनी नजरों के कटाक्ष से उस व्यक्ति की ओर भी देख लिया। उस व्यक्ति को जो सुचिन्ता के पीछे वाले कमरे के दरवाजे पर खड़ा होकर विह्वल नजरों से देख रहा था।

नहीं, बहू का मुंह देखने के लिए सुचिन्ता झटपट सोना ढूंढ़ने के लिए बक्स

या आलमारी खोलने नही गयीं। सिर्फ बहू के माथे को हल्के से छूते हुए बोलीं, "एक गुरुजन को प्रणाम करते समय सामने कोई दूसरा गुरुजन उपस्थित हो तो उसे भी प्रणाम करना चाहिए बहू।"

कृष्णा अपने एक हाथ की मोटी चूड़ी को दूसरे हाथ से घुमाते हुए बहुत साफ गले से बोली, "यहाँ और कौन गुरुजन हैं?"

सुचिन्ता क्षण भर के लिए उसकी ओर देखकर गर्दन घुमाकर बुलायीं, "सुशोभन जरा यहाँ आ जाओ। बहू तुम्हें प्रणाम करेगी। तुम्हें वह देख नहीं पा रही है।"

'बहू' शब्द का अर्थ पूरी तरह न समझ पाने के बावजूद 'जरा इधर आओ' शब्द को समझकर सुशोभन आगे बढ़ आये।

लेकिन कृष्णा ने इस परिस्थिति पर ध्यान नही दिया। बल्कि खड़े रहकर पूछ बैठी, "वे कौन हैं?"

सुचिन्ता ने अपने लड़के की ओर देखा। फिर वह हँसते हुए बोलीं, "घर में कौन-कौन रहता है, उनसे कैसा व्यवहार किया जाता है, ये सारी बातें तो पहली रात में ही सिखा दी जाती हैं। क्यों रे इन्द्र तूने इस एक महीने में क्या किया?"

इन्द्रनील बिल्कुल खामोश रहा।

जवाब कृष्णा ने ही दिया।

बोली, "घर में अपने दोनों जेठ और आपके सिवाय तो और किसी के रहने की खबर तो मुझे नही है माँ। सुना था आप लोगों के और कोई नही है।"

सुचिन्ता पूरी तरह से खुले गले से हँस पड़ीं। बोलीं, "बहू, सुनी हुई बातें जाने कितनी बार कितनी गलत तरीके से कही गयी होती हैं। मैंने भी सुना था इन्द्र की शादी बहुत सम्पन्न घर में—खैर अब ये बातें रहने दो। सुशोभन, तुम अपने कमरे में जाकर आराम करो।"

सुशोभन की जान में जान आयी। झटपट कमरे में घुसकर अपनी खाट पर जाकर बैठ गये।

कृष्णा सुचिन्ता की अधूरी कही गयी बात के अपमान की परवाह न करते हुए बोली, "आपने तो हम लोगों को बैठने के लिए भी नही कहा।"

सुचिन्ता उठकर खड़ी होते हुए बोलीं, "तुमने भी खूब कहा। तुम लोगों से मुझे कहना पड़ेगा? अपना मकान है, अपनी जगह है, तुम लोग भी क्या औप-चारिकता की आशा करते हो? क्यों इन्द्र, तुम्हारा भी क्या 'आइये बैठिये' कह कर स्वागत करना होगा?"

लड़कों में एक इन्द्रनील को ही सुचिन्ता कभी-कभी तू कहकर बुलाती थीं,

लेकिन माँ का ऐसा हास-परिहास भरा रूप क्या इसके पहले कभी इन्द्रनील ने देखा था ? ऐसे लहजे के लिए क्या वह पहले से प्रस्तुत था ?

लगा वह थोड़ा हकबका गया हो।

इसलिए कृष्णा ने ही बात की पतवार पकड़ी।

"चूँकि घर में आप ही सबसे बड़ी हैं इसलिए आपकी अनुमति की जरूरत है ही। और जब आप अपने से नहीं कह रही हैं तो मुझे ही कहना पड़ रहा है कि हम लोग आकर अब यहीं रहेंगे।"

सुचिन्ता स्थिर दृष्टि से कई पल तक अपने लड़के के चेहरे की ओर देखती रही फिर हँसते हुए बोली, "शादी होने पर लोग अपनी पत्नी को गहने आदि उपहार में देते हैं, तो तूने क्या पैसों के अभाव में अपनी वाक् शक्ति ही अपनी पत्नी को उपहार में दे दी है ? लगता है अब से तेरी बातें तेरी पत्नी से ही सुननी पड़ेंगी।"

इन्द्र का गोरा चेहरा लाल हो गया।

फिर भी उसने गर्दन उठाकर कहा, "नहीं, मैं भी कह रहा हूँ, कल-परसों या दो-चार दिन बाद जब भी होगा, हम लोग यहाँ आयेंगे, मतलब रहने ही आयेंगे। सिर्फ घर को अपने लायक बनाना होगा।"

सुचिन्ता बोलीं, "रहने लायक कहने से तुम्हारा क्या मतलब है, मैं समझ नहीं पा रही हूँ। तुम्हारा कमरा जैसा था, वैसा ही पड़ा हुआ है। तुम जैसा चाहो, अपनी इच्छानुसार उसे सजा लो।"

"सजाने-बजाने की बात नहीं कर रहा हूँ—" इन्द्रनील असहिष्णु होकर बोला, "स्वाभाविक बनाने की बात कर रहा था। नीता के बारे में मैंने सुना है कि वह बहुत जल्दी स्वदेश लौट रही है और लौटकर वह अपने दिल्ली वाले मकान में ही रहेगी। अब बिना किसी असुविधा के उन्हें वहाँ भेजा जा सकता है।"

'उन्हें' कहने के साथ-साथ इन्द्रनील ने सुशोभन के कमरे की ओर इशारा करके अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया।

इस बात को सुनकर सुचिन्ता को शायद आत्मसंयम बरतने में तकलीफ हुई थी, यह ठीक से स्पष्ट नहीं हुआ, फिर भी उन्होंने अपनी भावनाओं को जब्त कर लिया। तब उन्होंने बड़े ही सहज भाव से कहा, "इन्द्र, आदमी तो कोई माल असबाब नहीं है कि उसे हटाकर कमरे में जगह बनायी जा सके। उसका हिसाब अलग ही होता है।"

इन्द्र सोचने लगा कि शुरू में ही अपनी पत्नी को साथ लेकर यहाँ आना उचित नहीं हुआ। उसे पहले यहाँ आकर यहाँ के वातावरण को देख-समझ लेना चाहिए था। फिर भी सुचिन्ता की ऐसी स्पष्ट बातों ने उसे लगभग गूँगा बना दिया था।

सुशोभन के बारे में सुचित्रा कृष्णा के सामने ही इतनी पुर्जोर वकालत करेगी, इन्द्रनील की ऐसी धारणा ही नही थी।

लेकिन कृष्णा के न आने पर वह जो कुछ कहना चाहता था वे बातें अनकही रह जाती। इन्द्रनील अपनी माँ के साथ इतनी बातें कर ही नहीं सकता था। हालांकि कृष्णा की वाचालता से उसे मन ही मन परेशानी भी हो रही थी फिर भी वह सोच रहा था कि अगर कृष्णा की कोशिशों और आग्रह से अगर इस मकान में रहने की व्यवस्था हो जाय तो काफी मुक्ति का अहसास होगा। वाकई, मर्द होकर अपने मुहल्ले में ही ससुराल में रहना काफी शर्मनाक है। कृष्णा की माँ भले ही यह कहती रहे कि 'तुम लोगों के अलावा मेरा और कौन है' इसके बावजूद मन नही मानता। फिर 'अनुपम कुटीर' में रहने के लिए कृष्णा ने भी हठ ठान ली थी।

इस जिद के पीछे जो भी बात रही हो, वह थी इन्द्रनील के अनुकूल ही।

लेकिन जिद के साथ-साथ उसकी एक कठोर शर्त से सारा मामला गड़बड़ होता नजर आ रहा था।

सुशोभन के रहते हुए कृष्णा यहाँ नही रह सकेगी।

कृष्णा की माँ की भी यही धारणा थी, "हाँ बेटा, अपनी दुलारी इकलौती बेटी को मैं किसी 'आगल-पागल' के यहाँ नहीं भेजूंगी। पहले उसे यहाँ से हटाने की व्यवस्था करो फिर मेरी लड़की को ले जाने की बात कहना।"

इन्द्रनील ने जवाब में कहा था, "यहाँ ले जाने की बात मैंने नही कही है। आपकी दुलारी बेटी ही यहाँ जाने के लिए जिद पकड़ बैठी है।"

लीलावती मुँह बिचकाकर बोली, "जिद की बात ही है। बात यही है कि लड़कियाँ दूसरी मिट्टी से गढ़ी हुई होती हैं। नामाजर होते ही अतर के सारे बंधन भी अपने आप ही टूट जाते हैं। लेकिन उसे बाद में पछताना होगा। इसे मैं अभी से देख-समझ रही हूँ।"

एकांत में लड़की के पास वे कुछ और ही बातें करती थी, "ससुर की आदतें अच्छी नहीं हैं, इससे शर्मनाक बात और क्या होगी। जैसे भी हो कोशिश करके जड़ से उखाड़ देना। क्या कहीं और रहने की जगह नहीं ? वे यहीं आकर रहें। इतनी उम्र हो गयी है, लड़के जवान हो गये हैं लेकिन लाज-शरम तो बिल्कुल धोकर पी ही गयी हैं। छि: ! और तुमसे भी कहती हूँ, तुझे शादी करने के लिए और कोई जगह नहीं मिली ? इनके रंग-ढंग तो तूने पहले ही देख लिए थे ?"

कृष्णा बड़ी बेजारी से बोली, "पहले इतनी सारी बातें कहाँ मालूम थीं ? नीता दीदी के पिताजी अस्वस्थ होकर चिकित्सा करने के लि[illegible]कत्ता आये हुए हैं, बस यही जानती थी।"

"यह नीता दीदी कौन है, उन लोगों से किस तरह की रिश्तेदारी है, क्या इस पर सोच-विचार नहीं किया था ?"

"इतना कहाँ सोचा था ? सोचा था होंगे कोई रिश्तेदार। नीता दीदी बुआ बुआ करती थीं।"

"तेरी तरह मूर्ख लड़की और कहीं नहीं मिलेगी। और तुम्हारी यह नीता दीदी, सीधी-सादी लड़की नहीं है। अपने पिता को इनके सिर पर पटककर खुद एक बहाने से खिसक गयी। खैर, अगर तुम नहीं कर सकती तो मुझे ही उपाय करना होगा। मोहल्ले में किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रही। सुनती हूँ पालतू कुत्ते की तरह वह भी पालतू पागल को हर सुबह लेक तक घुमाने के लिए ले जाती हैं। बस जंजीरों का फर्क है। छी: ।'

लड़की से बात करते वक्त वाणी का थोड़ा संयत रखना चाहिए, इस बात को लीलावती गुस्से के मारे भूल गयी थीं। कृष्णा भी बिना चूँ-चपड़ किए हुए सब कुछ सुनती गयी थी, इसके बाद संकल्प करके इन्द्रनील को पकड़कर यहाँ ले आयी थी।

सुचिन्ता द्वारा आदमी की तुलना बिस्तर-बक्स से न करके किसी दूसरे हिसाब से करने की बात पर कृष्णा अपने आरक्त चेहरे से कह पड़ी, "मतलब यही समझना होगा कि हमारा यहाँ रहना आपको पसंद नहीं है।"

इस बार सुचिन्ता ने लड़के की ओर से अपनी नजर हटाकर बहू को देखते हुए बोलीं, "अगर तुम लोग गलत समझने पर उतारू हो तो मैं क्या कर सकती हूँ ? सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ, तुम लोग यहाँ आकर रहना चाहते हो यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई है। और यह मैं झूठ नहीं कह रही हूँ।"

कृष्णा अपना राग अलापती रहीं, "आप झूठ नहीं कह रही हैं, इसे कैसे समझ लूँ ? मेरी माँ का कहना है कि घर में किसी भी बाहरी आदमी के रहने पर वे मुझे यहाँ नहीं भेजेंगी—"

"तुम्हारी माँ ने क्या कहा है क्या नहीं कहा है, यह मेरे जानने की चीज नहीं है बहू", सुचिन्ता ने कहा, "जो सचमुच के बाहरी लोग हैं उनकी बातों पर ख्याल करने का मेरे पास बिल्कुल समय नहीं है।"

अचानक इन्द्रनील बोल पड़ा, "इसके मतलब हमारे रहने, न रहने में तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं है। यही बात मैंने मँझले भैया के मामले में भी देखी—"

सुचिन्ता मृदु गंभीर स्वर में बोलीं, "इन्द्र दूसरे की बातों में सिर खपाने की जरूरत नहीं है, तुम अपनी बात कहो।"

"मेरी क्या बात है—" इन्द्रनील होंठों को काटते हुए बोला, "वे इस मकान

मे जिंदगी भर के लिए रह जाएँगे, ऐसा नहीं सोचा था, जो स्वाभाविक था वही कहने आया था, लेकिन जब ऐसा होना संभव ही नहीं है तब—"

"जिंदगी भर का हिसाब इतना चटपट लगा लेना ठीक नहीं है इन्द्र ! लेकिन अगर एक असहाय व्यक्ति की मौजूदगी को अगर तुम लोग जान-बूझकर समस्या बना दोगे तो उसका समाधान करना सचमुच मेरे लिए कठिन हो जाएगा।"

शायद कृष्णा अपनी माँ के पास अपनी काबिलियत दिखलाने वाली बात को सोचकर एक जबर्दस्त आघात कर बैठी। बोली, "इस मकान में लगता है आपके लड़कों का कोई अधिकार नहीं है ?"

सुचिन्ता को अपने पैरों के नीचे से जमीन खिसकने का अहसास हुआ, लगा वे किसी गह्वर मे समाती जा रही हैं। एक साथ इतनी बातें कभी उन्होंने की भी थीं ? क्या सामने खड़ी बीस-बाईस वर्ष की लड़की उनकी प्रतिद्वंद्विनी थी, जिसके आमने-सामने होकर वे बहस किए जा रही थी ?

लेकिन और उपाय भी कहाँ था ? भला धृष्ट की धृष्टता को भी रोका जा सकता है ?

और धृष्ट के साथ अच्छा व्यवहार करके भी कोई चल सकता है ?

इसीलिए सुचिन्ता का पूरा चेहरा पत्थर की तरह सख्त हो उठा।

वैसे ही सख्त चेहरे से वे बोली, "बहू, अधिकार दो तरह के होते हैं। मनुष्यता के नाते जरूर अधिकार है, सो पैसे अधिकार है। लेकिन अगर कानून-कचहरी करना चाहोगी तो समझ लो कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि कागजात में इस मकान पर मेरा ही स्वामित्व है।"

यह सुनकर इन्द्रनील चौंक पड़ा। यह बात तो उसे मालूम नहीं थी।

कृष्णा के चेहरे पर स्याही पुत गयी। सोचने लगी इन्द्रनील ने उसे तो यह बात नहीं बतायी थी।

"ठीक है। मुझे यह बात नहीं मालूम थी।" कहकर इन्द्रनील धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतर गया। कृष्णा साथ-साथ नहीं गयी। शायद वह अपने बचे हुए डंक को पूरी तरह से घुमोकर ही जाना चाहती थी। वह बोली, "हाँ, मालूम रहने से आपको डिस्टर्ब करने नहीं आता। घर जब आपके नाम से हैं तब आप जिसे चाहेंगी, वही इसमें रहेगा। जिसे आप न चाहें, उसे भगा सकती हैं।" कहते हुए वह भी सीढ़ियों की ओर बढ़ गयी।

सुचिन्ता के छोटे लड़के की पत्नी का जरीदार आँचल सीढ़ियों से उतरकर गायब हो गया, फिर भी सुचिन्ता काफी देर तक उसी ओर देखती हुयी खड़ी रहीं।

वे लोग सुचिन्ता को क्या सुना गये, सुचिन्ता ने जवाब मे क्या कहा, अब वह सब सुचिन्ता को याद नहीं आ रहा था। सुचिन्ता को ऐसा महसूस हो रहा था

कि जैसे उसकी समस्त चेतना को एक जरीदार आँचल ने आकर ढाँक लिया हो।

उस आँचल में बिजली की चमक थी। आग की तरह जलाने वाली थी। सुचिन्ता को लगा कि जैसे उन्हें बिजली का करेण्ट लग गया हो। वह दग्ध हुई जा रही थीं।

लेकिन अगर जरी का यह आँचल उनको जला देने के उद्देश्य से यहाँ नहीं आया होता। अगर सिर्फ अनुपम कुटीर का छोटा लड़का ही उनके पास आया होता तो?

तब क्या उसके इस तरह से चले जाने पर सुचिन्ता अनुपम कुटीर की मर्यादा को तोड़कर उसे दौड़कर पकड़ लेतीं? कहतीं, "जायेगा? देखूँ कैसे जाता है? देखूँ, जा सकता है कि नहीं।"

दूसरे दिन कृष्णा की माँ और मौसी मिलने आयीं।

मौसी जबर्दस्त महिला थीं और अपने सारे हथियारों से लैस होकर ही आयी थीं, लेकिन सुचिन्ता के शांत, विनम्र चेहरे को देखकर वे पहले पहल अचकचा गयीं। अपनी बहन से उन्हें कुछ दूसरी रिपोर्ट मिली थी। फिर भी जब सुचिन्ता ने उनसे बैठने का आग्रह किया तो डंक चुभोये बिना उनसे रहा नहीं गया। बोलीं, "समधिन के बारे में मैंने सुना है कि घर में किसी के आने पर बैठने के लिए कहने की उन्हें आदत ही नहीं है।"

सुचिन्ता एक कौतुकपूर्ण हँसी चेहरे पर लाते हुए बोलीं, "सुनी हुई बातों पर क्या यकीन करना चाहिए? जाने कितनी गलत खबरें सुनने को मिलती हैं। पड़ोसियों का तो काम ही निंदा प्रचार करते रहना है।"

कृष्णा की माँ के भले ही जितनी बुद्धि रही होगी, बारीक व्यंग्य समझने की बुद्धि बिल्कुल नहीं थी। इसीलिए वे इस बात से तिलमिलाकर कह उठीं, "पड़ोसियों के पास इतना फालतू समय नहीं है कि आपकी निन्दा प्रचारित करते रहें। आज देख रही हूँ कि बिल्ली के भाग से छींका टूट गया है, नहीं तो भला अपना लड़का और बहू आकर उल्टे पैरों लौट गये होते?"

सुचिन्ता के चेहरे पर पर वह कौतुकपूर्ण हँसी लुप्त हो गयी। वे मृदु गंभीर स्वर में बोलीं, "बेटा और बहू तो भाई-कुटुम्ब नहीं हैं घर के सदस्य हैं। अगर वे अपने को कुटुम्ब मान बैठने की गलतफहमी में पड़ें तो यह उनकी गलती होगी।"

मौसी छोटी बहन के अनुरोध पर मोर्चा सँभालने आयी हुई थीं, इसलिए ड्यूटी पालन करने के लिए उन्होंने मोर्चा सँभाल लिया। बोलीं, "समधिन, अब नयी बहू तो आते ही रसोई में घुसकर अपने लिए भात परोसकर खाने नहीं लगेगी। नयी बहू तो कुटुम्ब जैसी ही होती है। इसके अलावा बहू का वरण कर

के अपने घर में ले आने का एक तौर-तरीका भी तो हमारे बगाली समाज में है। क्या समधिन को यह मालूम नहीं है?"

सुचिन्ता अचानक खिलखिला उठी। बोली, "अभी भी उन सारे पुराने तौर तरीकों को आप लोग सीने से लिपटाये हुए हैं? बड़े आश्चर्य की बात है।"

मौसी मुँह बनाकर बोलीं, "अब आप जैसी आधुनिका तो हम लोग नहीं हो पायी हैं समधिन। जिस युग में जन्म लिया है उसी के तरह ही हम लोग हैं।"

सुचिन्ता बोली, "क्या मुश्किल है, 'उसी तरह हम लोग हैं कहने से ही क्या रहा जा सकता है, या रहना संभव है? काल तो अपनी गति से दौड़ रहा है, क्या उसके साथ ताल-मेल रखने की जरूरत नहीं है?"

"हम लोग ठहरे गँवार लोग, न हम लोग 'काल' समझते हैं न 'ताल', सिर्फ समझते हैं चाल। मतलब यही कि चाल-चलन आदमियों जैसा होना चाहिए। आप ही की बात लीजिए, जाने कहाँ के एक गैर-आदमी के लिए आप अपना घर नष्ट कर रही हैं क्या यही मनुष्यता है?"

सुचिन्ता ने शायद एक बार यह तय ही कर लिया कि अब वे बात बिल्कुल नहीं बढ़ाएँगी, खामोश रहेंगी। लेकिन दो-दो लोगों के सामने बिना जवाब दिए चुप रह जाना भी जितना मुश्किल काम था, उनके सामने से बिना कुछ उन्हें उठकर चला आना भी उतना ही मुश्किल था। इसीलिए वे पूर्ववत प्रसन्न चेहरे से बोलीं, "अपने-पराये' की व्याख्या करना बड़ा कठिन है दीदी, यह बात सच-मुच के गैर-आदमी को तो नहीं ही समझायी जा सकती है।"

"ओह! सच कहती हैं। इसका मतलब हुआ कि आप लोकनिन्दा को बिल्कुल महत्त्व नहीं देतीं।"

"एकदम ही महत्त्व नहीं देती, इसे कैसे कह सकती हूँ भला।" सुचिन्ता बोली, "बहुत महत्त्व देती हूँ। लेकिन दुनिया में कुछ बातें उससे भी बड़ी हो सकती हैं।"

"वह कुछ हम जैसों के लिए समझ पाना बड़ा मुश्किल है समधिन। लोक-निन्दा से खुद भगवान रामचन्द्र भी संकट में पड़ गये थे। हालांकि यह भी तय है कि आप अपनी रुचि-प्रवृत्ति के अनुसार ही करेंगी। चूँकि हम लोगों ने अपनी लड़की आपको दी है, इसीलिए—"

सुचिन्ता ने बाधा दी। दृढ़ स्वर से बोली, "यहीं पर आप गलती कर रही हैं। लड़की आप लोगों ने नहीं दी है।"

"देने से ले ही कौन रहा है?"—कृष्णा की माँ नाराज होकर बोलीं, "मेरी बुद्धि ही मारी गयी थी कि एक बार अपमानित होने के बावजूद दूसरी बार अपमानित होने के लिए आ गयी। मेरा सब कुछ मेरी लड़की का है। तिमंजिला मकान सूना पड़ा है। लेकिन लड़की की वही एक जिद है कि शादी

हो गयी है, अब मैं ससुराल जाकर रहूँगी। "इस लड़की के लिए ही मेरा सिर हर जगह नीचा हो गया। आओ दीदी चलें।"

सुचिन्ता बोलीं, "सिर अपनी औलाद ही झुकाते हैं, यह सच है। नहीं तो आप लोगों का—लेकिन अब इस बात को रहने दीजिए। लेकिन इतनी बात सुन जाइए, यह मुँह दिखावे की बात नहीं है, कि मेरे इन्द्र की बहू अपने ससुराल में आकर रहना चाहती है, यह सुनकर मुझे आंतरिक खुशी हुई है। उसके लिए इस घर के दरवाजे हमेशा खुले रहेंगे।"

मौसी जहरभरी आवाज में बोलीं, "दरवाजे पर पहाड़ बैठाकर दरवाजा खुला रखने का लाभ क्या है? घर में एक पागल पाल रखा है, वह यहाँ आकर रहेगी कैसे?"

"तब और क्या उपाय हो सकता है?"

मौसी बोलीं, "सब समझती हूँ। निरुपाय। कृष्णा ने जो कुछ कहा था उन में बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं थी। आपके लिए वह पागल एक तरफ है, बाकी सारी दुनिया दूसरी तरफ है। आपकी सराहना किये बिना मैं रह नहीं पा रही हूँ।"

सुचिन्ता हँसकर बोलीं, "मेरी तरफ से भी धन्यवाद स्वीकार करें।"

"क्या कहा?"

"कुछ नहीं।"

"हूँ, यह समझ गयी कि उसे आप बिलकुल नहीं छोड़ सकतीं हैं। चाहे सब भाड़ में जाएँ।" मौसी उठकर खड़ी हो गयीं।

सुचिन्ता भी खड़ी होकर बोलीं, "सिर्फ इतने से ही अगर सब चले जाते हैं तो इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझूँगी। उस राजा की कहानी तो आपको मालूम होगी? धर्म के लिए अलक्ष्मी खरीदकर बिचारे पर दुर्भाग्य का पहाड़ टूट पड़ा था। अलक्ष्मी के आने पर यश, सम्मान, भाग्य सभी एक-एक करके वहाँ से खिसकना शुरू कर दिया—"

"समधिन को बहुत कुछ मालूम है।" मौसी कड़वाहट भरी मुस्कराहट से बोलीं, "लेकिन अगर पुराने दिनों का ही उदाहरण ले रही हैं तो कहना चाहती हूँ कि धर्म के कारण खरीदने से, जिन्होंने राजा का त्याग कर दिया था, बाद में वे सभी एक-एक करके वापस भी लौट आये थे। लेकिन यहाँ तो वैसी बात मुझे नजर नहीं आ रही है।"

सुचिन्ता हँसने लगीं। बोलीं, "समधिन क्या सभी को सभी बातें नजर आती हैं। शायद आपको जो नजर नहीं आ रहा है, उसे मैं साफ-साफ देख रही हूँ।"

"समधिन के पास दिव्य दृष्टि है। अच्छा नमस्कार। आपके पास आकर बहुत जानकारी हुई।" यह कहकर वे दोनों सीढ़ियों की ओर बढ़ गयीं। तभी

उन्हें बाधा का सामना करना पड़ा। दो स्वस्थ लड़के धड़धड़ाते हुए सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। उनके पीछे-पीछे ही एक कांतिवान व्यक्ति भी ऊपर आ रहे थे।

कौन हैं ये लोग ? इनके घर में तो सुना है कि कभी कोई नाते रिश्तेदार नहीं आता। कौतूहल के वशीभूत होकर उनका अहंकार पराजित हो गया। मौसी ने लपककर सबसे छोटे बच्चे का हाथ पकड़ लिया और बोली, "मुन्ना, तुम्हारा नाम क्या है ?"

कहना न होगा कि उसको इस तरह से पकड़ा जाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। अच्छा लगने की बात भी नहीं थी। वह लगभग अपना हाथ झटकते हुए बच्चा बेजारी से बोला—"शानू मुखर्जी।" अगर पीछे-पीछे पिता न आये होते तो वह इतना भी नहीं कहता।

उसे इस समय ये दोनों औरतें बिल्कुल जहर की तरह लगी। न जान न पहचान बेमतलब की बात करने की क्या जरूरत थी।

लेकिन उसके मन की बात से तो वे औरतें परिचित नहीं थीं इसलिए मोटी औरत ने सुमोहन को न देखने की मुद्रा बना कर उससे दुबारा पूछ लिया, "तुम इन लोगों के क्या लगते हो ?"

"नहीं मालूम।"

इसी बीच दूसरा बालक सीढ़ियाँ से चढ़कर बगल से रास्ता बनाता हुआ ऊपर चढ़ आया। सुमोहन ने अपने बेटे से कहा, "शानू यह तुम कैसी बातें कर रहे हो ? ठीक से बताओ।"

शानू ने गंभीर होकर कहा, "क्या मुझे मालूम है कि मैं इन लोगों का क्या लगता हूँ।"

"ओह हाँ हाँ, बात तो ठीक ही है," सुमोहन ने मुस्कराकर कहा, "सवाल ही बड़ा गोलमाल वाला है। यहाँ तुम किससे मिलने आये हो यही बता दो।"

"और किससे—मँझले ताऊजी से मिलने आया हूँ। सभी जानते हैं।"

मँझले ताऊजी !

बड़ी मौसी को शायद रहस्य का कोई सूत्र हाथ लग गया, इसीलिए थोड़ा-सा एक तरफ होकर सुमोहन को रास्ता देते हुए बोली, "समझ गयी। वही जिन का दिमाग खराब है वही न ?"

"दिमाग खराब।"

शानू मुखर्जी का घरेलू नाम था 'गुंडा पहलवान डाकू,' वह अचानक अपनी खोपड़ी पर हाथ फेरने लगा, फिर बोला, "धत। खराबी दिमाग में नहीं होती है, खराब तो तबीयत होती है।"

यह कहकर वह उनसे हाथ छुड़ाकर भाग गया।

लेकिन ये लोग अचानक हाथ आये सूत्र को छोड़कर जाने के लिए तैयार

नहीं थीं। इसीलिए अपनी आवाज को गहन-गंभीर बनाते हुए बोलीं, "ये आपके बच्चे हैं न ?

"बिल्कुल।"

"आप शायद बीमार के भाई हैं ?"

"हाँ।"

"कहाँ रहते हैं आप लोग ?"

सुमोहन अंदर ही अंदर कुढ़ते हुए भी बाहर सौजन्यता प्रकट करते हुए बोले, "श्याम बाजार की तरफ।"

"ओह ! लगता है आपके घर में जगह की बहुत कमी होगी।"

"क्या कह रही हैं आप ?"

"मतलब कि वे तो आपके बड़े भाई हैं। आप सब हैं मुखर्जी और इस घर के लोग मित्तिर। असल में हम लोगों की वे समधिन हैं इसी से ये सारी बातें हम लोगों को मालूम हैं खैर, तब ये लोग आपके क्या हुए ? मकान मालिक ?"

सुमोहन गंभीर हो गया। गंभीर सौजन्य से बोला, "आप लोगों ने इन्हें अपना समधिन कहा है, लेकिन इनके बारे में आप लोग कुछ भी नहीं जानती हैं ?"

"नहीं, वैसा कुछ नहीं जानती। यही सोचती थी कि कोई नाते-रिश्तेदार न होने के कारण असहाय पागल को दया-धर्म की खातिर अपने घर में जगह दे रखी है। अब यह कहाँ मालूम था कि आप जैसे भाई भी हैं। इसी से पूछ लिया कि शायद किराये पर यहाँ रह रहे हैं।"

"नहीं, ये मतलब यहाँ की गृहस्वामिनी से हम लोगों का बिल्कुल घरेलू रिश्ता है—"

"वह तो समझती हूँ।" मौसी ने शहद पगी आवाज में कहा, "ऐसा न होता तो भला उनके भरोसे अपने पागल भाई को छोड़कर आप लोग निश्चिन्त बैठ सकते थे ? लेकिन दिक्कत यह है कि इनकी छोटी बहू इस पागल के डर के कारण यहाँ आकर रहने के लिए तैयार नहीं है ? "वह हमीं लोगों की लड़की है। हम दोनों इनके लड़के की सास और मौसिया सास हैं।" कहकर सुमोहन को चकित करते हुए दोनों बहनें सीढ़ियों से नीचे उतर गयीं।

कुछ देर तक उनके जाने वाले रास्ते की ओर ताककर सुमोहन जब ऊपर आये तो उन्होंने देखा कि कमरे में उल्लासपूर्ण शोरगुल हो रहा था। दोनों बच्चे गुलगपाड़ा मचा रहे थे और सुशोभन भी खुश होकर उन्हीं जैसा आचरण करते हुए कह रहे थे, "गुंडा पहलवान, डाकू, बिच्छू, बिन्दू, बिन्नू, शानू, शान्दू। क्यों सब याद है न ? मुझसे ही पूछा जा रहा है कि मुझे सबका नाम याद है कि नहीं ? इनका नाम मैं भूल जाऊँगा ? भला ऐसा भी कहीं हो सकता है ?"

सुमोहन से सारी-घटना सुनकर सुविमल और विचलित हो गये। बोले, "आज महसूस हो रहा है कि शोमन के बारे में हम लोगों की इतनी निश्चितता शायद उचित नहीं थी। कम से कम नीता के विदेश जाने के बाद हम लोगों को इस बारे में कुछ सोचना चाहिए था। सुचिन्ता के समधी पक्ष वालों ने अगर असुविधा व्यक्त की है तो उन्हें भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसके अलावा —"सुविमल थोडा सोचते हुए बोले, "शोमन की लड़की भले ही हम लोगों की मदद की भूखी न रही हो, लेकिन हम लोगों का भी तो एक कर्त्तव्य है।"

सुमोहन ने कहा, "उस हालत में हम लोगो का क्या कर्त्तव्य है?"

"है मोहन। कुछ तो है ही। मैं भी यही सोचकर निश्चिन्त था कि जब वह हमारी सहायता की भूखी नहीं है तब हम लोगों को क्या गरज पड़ी है। लेकिन अब सोचकर देखता हूँ कि कर्त्तव्य की सीमा को इतना संकुचित करना ठीक नहीं है। और इस कमउम्र की लड़की पर अभिमान करके अपने विवेक के दरवाजों को बंद रखना किसी मायने मे उचित नहीं है, मोहन। बेचारी अपने अंधे पति को लेकर अकेले तकलीफ झेल रही होगी। यह सब सुनकर भी चूंकि उसने हम लोगों से सहायता की भिक्षा नहीं माँगी है, इसलिए हम लोग भी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, यह मुझे बहुत नीचता लग रही है। हाँ मोहन प्रचंड नीचता। दूसरे की जरूरत समझकर अपना हाथ आगे बढ़ा देना ही मनुष्यता है क्या? उसके सहायता मांगने की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना घोर अन्याय है। उस हालत में तो और भी जबकि यह हम लोगों के शोमन की लड़की है। हम लोगों के स्नेह की पात्री है। अगर प्रतिपक्ष की दृष्टि से भी विचार करें तो उसकी सारी उद्दंडता का अपराध खत्म होकर हम लोगों के कर्त्तव्य की कमी ही उजागर होगी।"

"ऐसा क्यों?—"

सुविमल ने सुमोहन को बाधा देते हुए कहा, "ऐसा ही होना है मोहन, यही नियम है। लोग अपने से छोटों से आशा नहीं करते हैं, आशा करते हैं अपने बड़ों से। उनमे वे क्षमा, त्याग और उदारता की आशा करते हैं, आशा करते हैं खैर मैं क्या कह रहा था—कब आ रही है नीता?"

"उन्नीस तारीख को।"

"ठीक है। मैं चाहता हूँ कि उसके आने से पहले ही तुम दिल्ली चले जाओ।"

"दिल्ली चला जाऊँ। मैं?"

सुविमल बोले, "भला तुम्हारे अलावा मैं और किस पर अपना हक जता सकता हूँ? साधन, तपोधन पर तो—" कहकर उन्होंने हँसते हुए अपनी। बीच ही में खत्म कर दी। फिर बोले, "वह शोमन का घर है। तुम वहाँ जा रहो तुम्हें वहाँ रहने मे कोई भी दिवा नहीं होगी। लड़की और दामाद का ख्या

करने ही चले जाओ। जब पिता बीमार हैं तब यह काम चाचा और ताऊ को ही करना चाहिए। सच कहूँ तो कभी इस तरह से मैंने पहले सोचा ही नहीं था। चूँकि लड़की स्वावलम्वी और मुक्त विचारों की है इसलिए मैंने उसकी ओर से आँखें मूंद ली थीं। लेकिन हम लोगों ने भी कभी उसे यह नहीं महसूस करने दिया था कि हम लोगों के यहाँ तुम्हारा आश्रय है, हम लोगों पर तुम भरोसा कर सकती हो। शोभन प्रायः तीन-चार वर्ष से यहाँ नहीं आया। उसने लिखा, 'पिताजी की तवियत खराब है।' हम लोगों ने इस बात को यह सोचकर कोई महत्त्व ही नहीं दिया कि उसके यहाँ पर न आने की कोई चाल है। अगर समय पर हम लोग वहाँ जाकर चिकित्सा की ओर ध्यान देते तो शायद आज जैसी हालत न हुई होती। अभिमान नीता को करना चाहिए था, किया हम लोगों ने। खैर—जो हो गया उसके लिए क्या किया जा सकता है, लेकिन इस समय जो करना हो वही किया जाय।"

सुमोहन ने कहा, "ठीक है, मैं जाऊँगा।"

"हाँ, तुम चले जाना। और शायद भविष्य में भी तुम्हारा भरोसा पाकर नीता अपने पिता को यहाँ से ले जा सके। शोभन के थोड़ा-सा स्वस्थ हो जाने पर उसका सुचिन्ता के मकान में उसके रहने का कोई औचित्य नहीं रह जायेगा।"

"तुम्हारी राय है कि मैं अब दिल्ली में ही रह जाऊँ ?"

"नहीं दबाव से तुझे मैं कुछ भी नहीं कहूँगा मोहन। सिर्फ यही सोच रहा हूँ कि स्नेह के कारण मैंने अब तक तुम्हारा नुकसान ही किया है। अगर इस नुक-सान को किसी तरह—"

"वड़े भैया।"

"ठीक है ऐसे ही कुछ दिनों के लिए घूम आओ। इसके बाद सोचा जायेगा।"

अपने कमरे में आकर अचानक वह आग्रह के स्वर में अशोका से बोला, "तुम भी मेरे साथ चली चलो।"

"मैं !" अशोका उसकी इस मुद्रा को देखकर चकित हो गयी।

पति की आँखों में झाँककर फिर आँखें नीची करते हुए बोली, "लड़कों का स्कूल खुला हुआ है।"

सुमोहन ने अपने स्वभाव के विरुद्ध बड़ी व्याकुलता से कहा, "खुला रहने दो। कुछ दिन उन लोगों को यहीं अपनी ताई के पास रहने दो।"

"तुम भी कैसी बातें कर रहे हो।"

"बहुत मूर्खों जैसी बातें कर रहा हूँ न ? असल में आँखों के सामने हरदम ऐसी मास्टरनी जैसी सूरत को देखते रहने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि कुछ दिनों तक न देख पाने की बात सोचकर ही बड़ा सूना-सूना लग रहा है। खैर, जाने दो। मेरे जाने के लिए एक सूटकेस ठीक कर दो।"

"कर दूँगी"—अशोका बोली, "इसके बाद जाने क्या सोचकर वह पूछ बैठी, "मँझले भैया को क्या वाकई बहुत स्वाभाविक देखा ?"

पूछने की अशोका की आदत नहीं थी फिर भी पूछ बैठी।

सुमोहन ने कहा, "देखकर ऐसा ही लगा। मुझे देखकर पहली नजर में ही पहचान गये।"

"और तुम लोगों की सुचिन्ता ? उनका क्या हाल है ?"

"सुचिन्ता ? और क्या हाल होगा ? ठीक ही सभी। असल बात यह है कि मैं उसको ठीक से समझ नहीं पाता हूँ।"

"उसे नहीं समझ पाते ?"

"हाँ लेकिन इसमें चौंकने की क्या बात है ?"—सुमोहन मुस्काए हुए बोला, "तुम्हीं को मैं आज तक नहीं समझ पाया हूँ। अच्छा, हम लोग क्या दूसरों की तरह सहज सामान्य स्त्री-पुरुष नहीं हो सकते ?"

अशोका पहली जैसी नजर से देखकर मुस्कराते हुए बोली, "ऐसा कैसे हो सकता है ? हम लोग तो दूसरों से अलग हैं ?"

"मालूम है। लेकिन बीच-बीच में लगता है कि—"

"अगर इच्छा प्रबल हो तो सभी कुछ संभव हो सकता है।"

उस दिन सुमोहन के चले जाने के बाद ही से सुशोभन कुछ बदले-बदले से लगे। अब उनका अधिकतर समय खामोशी में खिड़की के पास कुर्सी में बैठे-बैठे सड़क से गुजरने वाले लोगों को देखने में बीतने लगा।

सुचिन्ता शरबत का गिलास लाकर पीछे खड़ी हो गयीं, बोलीं, "इस तरह से क्या देख रहे हो ?"

सुशोभन ने चेहरा घुमाकर चिंतित स्वर में कहा, "देखो सुचिन्ता हमेशा ही ऐसा महसूस हो रहा है जैसे कुछ गड़बड़ हो गया है।"

"अब कहाँ गड़बड़ी हुई ?" सुचिन्ता का हृदय किसी शंका से धड़क कर उठा। लेकिन अपने को संयत करते हुए बोलीं, "इस शरबत को पीने का समय अलबत्ता गड़बड़ा गया है। लो, अब पी लो।"

"रहने दो यह सब। अच्छा, यह बताओ जो लोग उस दिन लौट गये थे, वे लोग मेरे अपने ही लोग थे न ?"

सुचिन्ता आवेग रहित कंठ से बोलीं, "हाँ, अपने ही लोग थे। वे लोग तुम्हारे भाई और भतीजे थे।"

"तब वे लोग चले क्यों गये ? तुमने उन्हें आने के लिए क्यों कहा ?"

"मैंने कब उनसे आने के लिए कहा था ?"—[illegible] सहज में कहा।

सुशोभन बोले, "जाने के लिए भले ही नहीं कहा होगा, उनसे रुकने के लिए भी तो नहीं कहा। वे सब मेरे अपने लोग थे।"

सुचिन्ता का मन अचानक विद्रोह से भर गया। बोल पड़ीं, "इतने ही तुम्हारे अपने लोग थे तो यहाँ रह क्यों नहीं गये? उन्होंने ही कब रहना चाहा था?"

"वही तो। मैं ठीक से कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। अच्छा सुचिन्ता यह घर तो तुम्हारा है। यहाँ वे लोग आकर क्यों रहेंगे? उन लोगों के पास भी रहने के लिए मकान है। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। लग रहा है कि जाने कहाँ कोई बहुत बड़ी गलती हो गयी है।"

"उतना सोचने की जरूरत नहीं है।"—सुचिन्ता प्रायः धमकाते हुए बोलीं, "सोचने से तुम्हारी तकलीफ बढ़ जाती है, इसे भूल गये हो? लो, अब इस शरबत को पी लो। मैं जरा अखबार पढ़ लूं। अभी तक मौका ही नहीं मिला।"

सुशोभन ने शरबत का गिलास ठेलकर परे करते हुए दृढ़ स्वर में कहा, "रहने दो। अखबार रहने दो। तकलीफ होती है, इसलिए सोचूंगा नहीं। नहीं सोचूंगा कि कहाँ गलती हो गयी है।"

"डॉक्टर ने भी तुम्हें सोचने के लिए मना किया है।"

"मैं डॉक्टर की बात नहीं सुनूंगा। मैं सोचूंगा।"

हाँ, सुशोभन ने सोचने का विचार तय ही कर लिया था। जब तक गलती का पता नहीं चलता, वे तब तक सोचते रहेंगे।

कुहासे से ढंकी हुई पृथ्वी पर क्या सूर्य की किरणें आकर धक्का मारती हैं? कुहासे के उस धुंधली चादर को वे विदीर्ण कर देती हैं? तभी अचानक एक-एक चीज साफ-साफ नजर आने लगती है। पेड़-पौधे, हर दृश्य तब रोशन हो उठते हैं।

क्या उसी तरह भ्रष्ट चेतना के कुहासे की चादर को विदीर्ण करके चेतना दीप्त हो उठती है?

भंडार घर की खिड़की के पास खड़ी होकर अशोका एक चिट्ठी पढ़ रही थीं।

कमरे में घुसते ही मायालता ने दग्ध करने वाली नजरों उसे से घूरा मगर चेहरे पर मधुर मुस्कान लाते हुए बोल बैठीं, "देवरजी की चिट्ठी पढ़ रही हो छोटी बहू?"

अशोका चिट्ठी से अपनी नजरें उठाकर बोली, "हाँ!"

"भाई के पास तो आज सुबह ही चिट्ठी आयी है। शाम होते न होते एक दूसरी चिट्ठी। जो भी कहो छोटी बहू, तुम लोग गहरे में पैठकर पानी पीने वाले

हो। बाहर से देखकर कोई भी सोचेगा कि तुम दोनों में बिल्कुल नहीं पटती लेकिन जरा-सी आँख की ओट होते ही बुरी तरह से विरह सताने लगा है। नयी-नयी शादी हुए दूल्हे की तरह उसने पूरे चार पन्ने की चिट्ठी लिखी है। तो जरा सुनूँ, उसने लिखा क्या है?"

अशोका ने अपनी जेठानी के सामने चिट्ठी बढ़ा दी।

मायालता ने अपने हाथ को काबू में रखते हुए बड़ी तकलीफ से मुस्कराकर बोली, "अरे, तुम्हारा पति-पत्नी का प्रेमपत्र भला मैं कैसे पढ़ सकती हूँ? बस, तो मैं उसकी खास-खास बातें जानना चाहती हूँ।"

"इसे तो मैं खुद ही नहीं समझ पा रही हूँ।"

"कहती क्या हो छोटी बहू? क्या उसने खूब कविता की है?"

"वैसी क्षमता होती तब न?" अशोका थोड़ा हँसकर बोली, "लिखा है कि दो-तीन दिनों के लिए सागरमय की देखभाल के लिए नर्स की व्यवस्था करके नीता अपने पिता को देखने के लिए कलकत्ता आने वाली है। वापस जाते समय मुझे भी उसके साथ दिल्ली जाने के लिए कहा है।"

"मतलब? क्या देवर ने जमाई के घर में ही रहना तय कर लिया है?"

"वहाँ नहीं, पडोस मे मकान लिया है। सागरमय की मदद के लिए उसके चेम्बर में हमेशा एक आदमी की जरूरत है, इसीलिए नीता के अनुरोध पर—"

मायालता भौंहें सिकोड़ती हुई बोली, "चेम्बर! क्यों क्या वह अंधा अब डॉक्टरी भी करेगा?"

"ऐसा ही लिखा है।"

"तब तुम अपने जाने की तैयारी शुरू कर दो। यूँ ही नहीं कहती कि दुनिया अकृतज्ञों से भरी हुई है।"

मायालता अपनी भर आयी आँखों को बचाते-बचाते धम-धम करती हुई चली गयीं।

मनुष्य का मन भी कितना विचित्र होता है। मायालता चौबीसों घंटे जिनको 'बोझ' समझती रहती थी, हर समय जिनको ताने मारती थीं, "कहीं जाते भी तो नहीं कि थोड़ा हाथ-पैर फैलाकर निश्चित बैठ सकूँ। अब उन्हीं के जाने की सम्भावना मात्र मे ही मायालता की आँखों में आँसुओं का ज्वार उमड़ने लगा था।

ऐसा क्यों हो रहा था? क्या संग छूटने की कल्पना से? या अभिमान से? या उनके सामने से इस तरह से निकल कर चले जाने की ईर्ष्या से? जो भी हो, कारण मायालता को भी नहीं मालूम था। अपनी व्याकुलता के सुमार नहीं पा रही थीं।

मायालता की तकदीर हमेशा ही ऐसी रही थी।

उनकी तकलीफ की उनके पति-पुत्र भी परवाह नहीं करते। सुविमल ने व्यंग्य भरे लहजे में कहा, "अच्छा ही तो है, अब तुम हाथ-पैर फैला कर रह पाओगी। बैंक में रुपये जमाओगी।"

लड़के भी मुँह बनाकर बोले, "उनके चले जाने की बात पर माँ, तुम्हें रोना आ रहा है ? बलिहारी है तुम्हारी। समझ नहीं पा रहे हैं कि इनमें से किसे तुम्हारा अभिनय कहें—इतने दिनों का चिड़चिड़ाना या इस समय का टेसुवे बहाना।"

मायालता पुनः हमेशा की तरह प्रतिपक्ष पर ही सवार हो गयीं। दीवाल को सुना-सुनाकर कहने लगीं, "इसी को कहते हैं दुनिया। इतने दिनों का किया करा सब बेकार हो गया। सब छोड़-छाड़कर जमाई के यहाँ रहने की बात से शर्म भी नहीं आ रही है। यहाँ तो बाबू साहब के स्वाभिमान का पार नहीं था, अब जमाई की चाकरी करने में स्वाभिमान आड़े नहीं आयेगा। लड़की की भी बलिहारी है, पागल बाप जाने किसके यहाँ पड़ा हुआ है उसकी कोई खबर नहीं, इधर चाचा के प्रति प्रेम उमड़ आया है। आखिर चाचा से ही मतलब हल होगा तभी न ? चाचा-ताऊ कहकर कभी माना नहीं, कभी परवाह नहीं की—और आज—मैं होती तो ऐसी लड़की की परछाईं भी नहीं लाँघती।

भला दीवाल भी कहीं बोलती है ?

वही बोलते हैं जो हमेशा से मुखर रहते हैं।

कृष्णा ने चिट्ठी के माध्यम से अपनी बात कही थी, "नीता दीदी, तुम्हारे इत्मीनान से मुझे हैरानी होती है। तुम्हारे पिता भी यहाँ हैं, शायद इस बात को तुम भूल ही गयी होगी। यह भी भूल गयी होगी कि जिनके सिर पर तुम उन्हें लाद आयी हो उनका घर-परिवार है, समाज है, उनके भी लड़के हैं। अगर उनका धैर्य क्रमशः खत्म हो जाए तो शायद तुम उन्हें दोषी नहीं ठहरा पाओगी। सुना है तुम स्वदेश लौट आयी हो, अब तुम अपने पिता के बारे में क्यों नहीं सोच रही हो ?"

पत्र की भाषा में चतुराई भरी थी।

उनका धैर्य खत्म हो गया है, "न लिखकर कृष्णा ने 'अगर', कहकर बचाव की सूरत निकाल रखी थी। इन्द्रनील को बिना बतलाये ही उसने इस पत्र को लिखकर पोस्ट कर दिया।

कृष्णा ने अनुपम कुटीर में आना-जाना अभी भी बंद नहीं किया था। असल में अब अपनी माँ से भी उसकी नहीं पट रही थी, और इधर अपने पिता का तुच्छ भाव भी उसके लिए असहनीय हो रहा था। 'मेरा तो सभी कुछ कृष्णा का

ही है।' यह बात भले ही वे अपने मुँह से जाहिर करते रहें, लेकिन जब तक ये लोग इस दुनिया में हैं, तब तक तो यह नहीं हो सकता—तब तक वे दोनों मायके में रह रही लड़की और घरजमाई के नाम से ही जाने जाएँगे।

इसके अलावा वही बात थी।

अब माँ का हमेशा आक्षेप और निरंतर कृष्णा को दोषी ठहराते रहना और पिता द्वारा निरन्तर व्यंग्य के शूल चुभोते रहना असहनीय हो उठा था। उनके अंदर की कुढ़न व्यक्त होने का यही रास्ता रह गया था मगर उसे सहते जाना कृष्णा के लिए बहुत कठिन होता जा रहा था।

उस दिन माँ और मौसी की सफर-कहानी सुनने के बाद से कृष्णा के दिमाग में नीता को चिट्ठी लिखने की धुन सवार हो गयी थी। सचमुच ही जिसके दो-दो भाई भावज, नाते-रिश्तेदार, लड़की-दामाद मौजूद है उसे वेट्या की तरह सुचिन्ता क्यों पकड़ रखेंगी?

उधर से ही कोई रास्ता निकल आये तो अच्छी बात है।

अब सुचिन्ता को हरदम यही महसूस होता है कि वह बेवकूफों की तरह शादी के लिए पागल न हुई होती तो अच्छा रहता। दुनिया में जाने कितने 'प्रथम प्रेम' का अंत होता रहता है, कृष्णा का भी हो गया होता। इतने दिनों में कृष्णा की शादी किसी गाड़ी-बँगले और मोटी तनख्वाह पाने वाले व्यक्ति से हो गयी होती और वह बड़ी निश्चिन्तता से सहज-स्वाभाविक जीवन बिता रही होती।

अब तो यही लगता है कि सात जन्मों में भी कोई प्रेम विवाह न करे। बहुत हुआ तो शादी के पहले एक-आध बार प्रेम की आँख मिचौनी खेलने में ऐतराज नहीं है, लेकिन उस कमजोर डोर को पकड़कर लटकना परम मूर्खता ही कही जाएगी। शादी करनी हो तो पास में ऐसी डोर की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे जीवन-नैया को बाँधा जा सके।

चिट्ठी भेजकर कृष्णा जवाब के इंतजार में दिन गिनने लगी।

लेकिन नीता क्या इस चिट्ठी का जवाब देगी?

अगर देगी भी तो उसका क्या जवाब होगा?

नीता को और उसके अधेड़ दूल्हे को देखने की भी इच्छा होती है, यह देखने की भी इच्छा करती है कि यह शादी बिल्कुल निरुपाय हो जाने पर ही करनी पड़ी थी या काले पत्थर पर परखी गयी प्रेम की स्वर्ण माला गले में डाली गयी थी। एक बार देख आना कोई मुश्किल काम नहीं है लेकिन जाने की बात कहने का साहस नहीं हुआ। साहस नहीं हुआ इसलिए भी कि कहीं इन्द्रनील पुनः नीता के निकट न आ जाय। कृष्णा को नीता से भले ही ईर्ष्या न हो, लेकिन उससे डर जरूर लगता है।

चिट्ठी दिल्ली में नीता के हाथ में उस समय पड़ी जब वह सागरमय के

एक नर्स की व्यवस्था करके और उसे छोटे चाचाजी के जिम्मे सौंप कर कलकत्ता आने की तैयारी कर रही थी।

इसलिए उसने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। सोचा, खुद ही जा रही हूँ तब जवाब क्या दिया जाए। साथ ही सोचने लगी कि क्या वाकई सुचिन्ता बुआ क्लांत हो गयी हैं, उनका धीरज खत्म होने लगा है?

नीता ने तब क्या गलत समझा था? क्या गलत धारणा बनाकर निश्चित हो गयी थी? लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता था? या शायद यही स्वाभाविक होगा। तब शायद नीता भी किसी दिन थक जाएगी, सागरमय की अक्षमता का भार ढोते-ढोते धीरज खो बैठेगी। यह सोचकर ही नीता सिहर उठी, पूरी ताकत से वह कह बैठी—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

टेबलेट वाली शीशी के ढक्कन को खोलकर सुचिन्ता ने उसे अपनी हथेली पर उलट दिया। सिर्फ एक ही टेबलेट बचा हुआ था। बस आज ही के लिए था। आज ही मँगाना जरूरी हो गया। इस दवा ने उम्मीद से कहीं अधिक फायदा पहुँचाया था।

हाँ उम्मीद से कहीं अधिक, धारणा से कहीं अधिक।

सुशोभन भी धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। डाक्टर पालित का कहना था कि इस नयी दवा ने चिकित्सा-जगत में हलचल मचा दी है। उन्होंने इसका नियमित व्यवहार करने की सलाह दी है।

दवा खत्म हो गयी थी।

उसे मँगाकर रखना पड़ेगा।

निरुपम से कहना पड़ेगा।

सुशोभन को डाक्टर के पास ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती। शायद डाक्टर को जाकर बस रिपोर्ट दे देनी पड़ती है और वह रिपोर्ट निरुपम खुद ही समझ-बूझकर दे आता है। माँ से कुछ पूछने की जरूरत नहीं पड़ती। दवा आदि भी वह खरीदकर किसी समय आकर सुशोभन की मेज पर वह रख जाता है।

लेकिन अब वह ऐसा नहीं करेगा। सुचिन्ता इस बात को समझती थीं। अभी दवा खत्म होने का वक्त नहीं हुआ था। सुशोभन ने नाराज होकर न जाने कब काफी टेबलेट खिड़की से बाहर फेंक दिये थे।

कहा था, "नहीं खाऊँगा। तुम्हारे उस हतभाग्य डाक्टर की बातें अब और नहीं सुनूँगा। दवा पिला-पिलाकर उसने मुझे न जाने कैसा कर दिया है। पहले मैं कितना खुश रहता था, सुबह, दोपहर, शाम सब कितने अच्छे लगते थे। यह सारी हँसी-खुशी कहाँ चली गयी। अब हर समय जाने कैसी तकलीफ होती रहती

है, लगता है कोई भयंकर भूल हो गयी हो, हालांकि यह भूल कहाँ हो गयी है इसे नहीं समझ पा रहा हूँ, आखिर यह सब कर कौन रहा है? वही डॉक्टर न! उसकी दवा उठाकर मैं फेंक दूँगा।"

उन्होंने सचमुच ही कुछ टेबलेट उठाकर फेंक दिया था।

सुचिन्ता ने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर धमकाकर इस काम से रोका था। लेकिन जो नुकसान होना था, वह हो ही गया। निरुपम को यह बात नहीं मालूम थी। वह अपने अंदाज से समय पर दवा लाकर मेज पर रख जायेगा।

दवा खत्म हो जाने की बात उसने कभी सुचिन्ता से पूछने की जरूरत नहीं समझी।

उसके थोड़े से पूछने से सुचिन्ता के मन की जलन ठंडी होने वाली हो, तब भी नहीं। वह साफ-साफ कुछ नहीं कहता लेकिन वह इस बात को जतला देता है कि माँ से कुछ कहने सुनने की उसे इच्छा नहीं होती।

सुचिन्ता ने शीशी को प्रकाश के सामने करके देखा। एक ही टेबलेट बाकी बचा था। निरुपम को कहे बिना उपाय नहीं था।

लेकिन अगर वे न कहें?

अगर दवा न लाये तो क्या होगा? अचानक सुचिन्ता के मन में दवा जैसी जड़ चीज के प्रति ईर्ष्या की ज्वाला फूट पड़ी। उस ज्वाला से उनका सिर से पैर तक झनझना उठा।

इसी दवा के कारण ही सुशोभन उस भयावह अन्धकार के गह्वर से उबर पा रहा है। सुचिन्ता का श्रेय कहाँ था? क्या सुचिन्ता का मान-संभ्रम, जीवन और उसके जीवन की शांति का कोई मूल्य नहीं था? अपने को चूर कर खाद बनाकर सुचिन्ता ने जिस फसल को सहलहा दिया, उस फसल को उठाकर कोई दूसरा अपने घर ले जाएगा?

अगर सुचिन्ता खुद ही अपने हाथों से उस फसल को नष्ट कर दे तो क्या होगा?

नहीं, वे निरुपम के पास जाकर सिर झुकाकर दवा के लिए नहीं कहेंगी।

उसकी शांत हो रही स्नायुओं में दुबारा विशृंखलता की चपलता नजर आने लगे, वही ठीक होगा। सुचिन्ता निष्ठुर उल्लास से भरकर फिर से इस बात को परखने की प्रतीक्षा करेंगी कि सचमुच उनकी प्राणांतकर दुरूह साधना का वाकई कोई मूल्य है या नहीं। वे इस दवा की आखिरी खुराक को भी फेंक देना चाहती थी। वे परखकर देखना चाहती थीं कि विषधर का विष पत्थर के असर से निस्तेज होता है या सँपेरे की मधुर बीन के असर से।

खुली हुई शीशी को सुचिन्ता ने उलटने के इरादे से खिड़की के बाहर क- दिया और जिस तरह से अचानक उनका मन ईर्ष्या की ज्वाला से दग्ध होने ल-

था ठीक अचानक ही वह अपने आप शांत भी हो गया। वे शिथिल हो गयीं। वे मन ही मन अपने को धिक्कारने लगीं कि एक पागल के साथ रहते-रहते क्या वे भी पागल हो गयी थीं ?

नीलांजन और इन्द्रनील के कमरे अब पहले जैसे खुले हुए नहीं रहते। सुबल के चले जाने के बाद से नया नौकर दिन में एक बार झाड़-पोंछकर बंद कर जाता है, जिससे वे दुबारा धूल-धूसरित होकर उसका काम न बढ़ा दें। निरुपम के कमरे में जाते समय इन कमरों के बंद दरवाजों को देखकर लगा वे कि सुचिन्ता के भाग्य की ओर नये सिरे से इशारा कर रहे हैं।

दोनों दरवाजे बंद रहने लगे हैं। बगल का अधखुला दरवाजा भी शायद किसी दिन धीरे-धीरे पूरी तरह से बंद हो जाएगा।

खैर, फिलहाल तो यह आधा खुला हुआ था।

अगर साहस किया जाय तो अभी भी कमरे के अन्दर घुसा जा सकता है।

और वैसा साहस सुचिन्ता ने किया।

कपाटों को धीरे-धीरे ठेलकर कमरे में प्रविष्ट होकर वे बोलीं, "निरू, कमरे में हो ?"

भरसक स्वर को स्वाभाविक बनाने की कोशिशों के बावजूद सुचिन्ता के कानों में अपने ही स्वर की अस्वाभाविकता खटक गयी। संकोच से काँपता हुआ अस्वाभाविक स्वर।

लेकिन अब क्या किया जा सकता था !

देहयंत्र के सारे कल पुर्जों को क्या हमेशा अपने नियंत्रण में रखा जा सकता है ?

निरुपम ने किताब से नजरें हटा लीं।

सुचिन्ता का इस कमरे में कुछ देर तक बैठने का मन हुआ।

लेकिन निरुपम तो उन्हें बैठने के लिए कहने वाला नहीं था।

उसने पहले ही कभी नहीं कहा था तो भला आज कैसे कहता ? लेकिन उसके कहने की क्या जरूरत थी ? अगर अपने लड़के के कमरे में सुचिन्ता बिना कहे हुए ही बैठ जायँ तो इसमें हर्ज क्या था।

सुचिन्ता मन ही मन अपनी पूरी ताकत लगाकर बैठ गयीं। बोलीं, "दवा खत्म हो गयी है, उसे लाना होगा।"

निरुपम ने यह नहीं पूछा कि, 'इतनी जल्दी कैसे खत्म हो गयी ? या अभी तो दवा लाने की बात नहीं है ऐसा भी नहीं कहा। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "अच्छा।"

यह सुनकर उसकी आँखों में कोई सवाल उभरा था कि नहीं, इसे सुचिन्ता नहीं समझ पायीं।

लेकिन सुचिन्ता चाहती थीं कि उसकी आँखों में कोई सवाल उठे। वह कुछ पूछ ही ले।

उस सवाल के माध्यम से ही सुचिन्ता बात आगे बढ़ाने की सोच रही थी, किसी काम-काज की बात नहीं। बस यही चाहती थी कि परस्पर संवाद हो।

जिस सुचिन्ता को लोग बचपन में बातों की सूरमा के रूप में जानते थे, वही सुचिन्ता जीवन भर चुप रहते-रहते हाँफ गयी थी।

सुचिन्ता ने अपने भाग्य और जीवन पर अभिमान करके अपनी वाणी को मुहरबन्द कर दिया था।

लेकिन आज कसक रहा था कि क्या उस अभिमान का मूल्य किसी ने दिया, क्या कभी किसी ने सुचिन्ता को समझने की कोशिश की? तब आखिर किसके लिए सुचिन्ता अपना मुँह बन्द रखें? नहीं, अब वे और चुप नहीं रहेंगी।

शायद बातों के लिए ही वे तैयार होकर आयी थीं। इसीलिए बोल पड़ीं, "दवा खत्म होने के बाद खरीदने से पहले क्या डॉक्टर को रिपोर्ट देनी पड़ती है?"

"रिपोर्ट हर सप्ताह देनी पड़ती है।"

निरुपम किताब में आँखें गड़ाए हुए ही बोला।

"लेकिन तुमने मुझसे तो कभी कुछ पूछा नहीं?"

"पूछने की क्या बात है? सब नजर ही आता है।"

अब सुचिन्ता क्या कहती?

फिर भी वे बोलीं, "दवा अभी खत्म होने की बात नहीं थी, खत्म कैसे हो गयी तुम यह जानना नहीं चाहोगे?"

"यह सब जानने की फुर्सत किसे है?" निरुपम की नजरें फिर पुस्तक की ओर चली गयीं।

"ठीक कहते हो। तुम लोगों का समय बड़ा कीमती है।"

सुचिन्ता अपने लड़के का समय अब और बर्बाद न करके चली आयीं।

उन्होंने सोचा, क्या उन्होंने अपनी ओर से कभी कोशिश नहीं की थी?

उन्होंने बार-बार रोशनी पैदा करने की कोशिश की थी लेकिन भाग्य की वंचना के कारण रोशनी जलने की बजाय बार-बार बुझती ही रही थी। ऐसी हालत में वे और क्या करतीं। अपने मन की बात सुचिन्ता को मन ही में कैद रखने के अलावा कोई चारा नहीं था। उनकी बातों को यहाँ कौन सुनने वाला था?

लेकिन अगर कोई सुनना ही चाहता हो? नहीं, अपराध होगा, निन्दनीय होगा।

यह कमरा और वह कमरा।

सिर्फ इन दोनों कमरों में आज जो चलने-फिरने की आहट होती है, वह भी शायद अधिक दिनों तक नहीं रहेगी। अनुपम कुटीर निस्तब्ध हो जाएगा।

उस कमरे में सुचिन्ता हाथ में अखबार लेकर पढ़ने बैठी थीं। बैठने से पहले उन्होंने कुर्सी को खींच लिया था।

"सुचिन्ता तुम मेरे इतना नजदीक आकर क्यों बैठी हुई हो? यह तो उचित नहीं है।"

सुशोभन ने जज की तरह राय देते हुए कहा।

सुचिन्ता के हाथ से अखबार छूटकर नीचे गिर गया। भयंकर एक आहत विस्मय से वे पागल के चेहरे की ओर देखते हुए धीरे से बोलीं, "किसने कहा उचित नहीं है?"

"मैं कह रहा हूँ।" सुशोभन ने अपनी कुर्सी खींचकर सुचिन्ता से काफी फासला करते हुए कहा, "हम लोगों की इतनी उम्र हो गयी है, हम लोगों को भला कौन कहेगा?"

सुचिन्ता बेहद सर्द आवाज में बोलीं, "रोज ही तो मैं इस कुर्सी पर बैठकर इसी तरह से तुम्हें अखबार पढ़कर सुनाती रही हूँ।"

"अब नहीं बैठोगी।" सुशोभन और भी गंभीर होकर बोले।

"बिल्कुल बैठूंगी। रोज बैठूंगी।"

सुचिन्ता जैसे लाठी के सिरे को नदी में डालकर उसकी थाह लेना चाहती थीं या शायद देखना चाहती थीं कि यह वास्तव में जल ही है, कहीं मृग-मरीचिका तो नहीं है?

"ऐं, बैठोगी? रोज बैठोगी? तुम पागल हो गयी हो क्या सुचिन्ता? क्या तुम महसूस नहीं करती कि तुम्हारे इस पागलपन के कारण ही नाराज होकर तुम्हारे बेटे तुम्हें छोड़कर चले गये।"

सुचिन्ता एकटक देखती हुई दृढ़ स्वर में बोली, "फिर वही बात? उस दिन तुमको बताया था न कि वे लोग नौकरी करने बाहर गये हैं।"

"तुम गलत कह रही हो।" सुशोभन ने जिद भरे स्वर में कहा, "तुम्हारा छोटा बेटा तो नहीं गया है। उसको मैंने देखा है। वही तो उसी दिन आया था। साथ में उसकी बहू भी थी। मैं तुम्हारे पास खड़ा था, इसलिए वह तुमसे नाराज होकर चला गया।"

सुचिन्ता उसी तरह देखते हुए बोलीं, "तुम्हें मैंने ज्यादा बोलने से मना किया है न?"

सुशोभन इस बात से पहले की तरह नाराज नहीं हुए। यह भी नहीं कहा कि "तुम्हारे मना करने की परवाह करूँ तब न?" सिर्फ म्लान होकर बोले,

दिमाग में ढेरों बातें उथल-पुथल होती रहती हैं। न कहने से मैं रहूँगा कैसे ? जाने कितनी चिंताएँ हैं, जाने कितनी बातें हैं। सोच-सोचकर ही तो आखिर गलती की जड़ तक पहुँच पाया हूँ।"

"गलती कहाँ पर है, इसे समझ गये हो ?

सुचिन्ता ने भावहीन चेहरे से प्रश्न किया।

सुशोभन और भी म्लान होकर बोले; "मुझे मालूम है कि तुम नाराज हो जाओगी। लेकिन नाराज होने से कैसे काम चलेगा सुचिन्ता ? हम लोगों की इतनी उम्र हो गयी है। हम लोगों को तो सब कुछ सोच-विचारकर चलना पड़ेगा। कहते-कहते सुशोभन का चेहरा गंभीर हो गया।

अचानक सुशोभन का चेहरा ढीली मासपेशियों वाले किसी वृद्ध का चेहरा लगने लगा। सुशोभन की इतनी उम्र हो गयी थी, यह पहले कभी उनके चेहरे से पता नहीं चलता था।"

क्या सुशोभन ने अपना प्रसन्नता से दीप्त चेहरा हमेशा के लिए खो दिया ? इसके मतलब अब वे अपने वृद्ध चेहरे को और अधिक गंभीर करके बैठे हुए उचित अनुचित की बातें सोचते रहेंगे।

लेकिन यही तो सभी ने चाहा था ? सुचिन्ता ने भी यही कामना की थी। इस बात की साधना के लिए ही तो सुचिन्ता ने अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया था। अभी भी अपने जीवन के सब कुछ की आहुति अपनी साधना के होमकुंड में दे रही थी।

तब सुचिन्ता ऐसी मलिन क्यों हुई जा रही थी ?

अपनी साधना के सफल होने पर तो हर कोई उस सफलता की मूर्ति को देखकर स्तब्ध हो जाता है ?

सुचिन्ता की हर बात क्या दूसरों से अलग थी ?

सिर्फ सुचिन्ता ही क्यों, दुनिया में इस तरह के एक आध व्यक्ति होते ही हैं। ऐसा न होने पर अशोका क्यों कहती "मैं दिल्ली क्यों जाऊँगी। क्या मेरा दिमाग खराब हुआ है ?" लेकिन उसने ऐसा क्यों कहा ? यहाँ रहकर तो उसका हमेशा ही दम घुटता रहता था। यहाँ से मुक्ति पाने के लिए उसका प्राण पछाड़ खाता रहता था।"

सुविमल ने आते ही कहा, "छोटी बहू दो-चार दिन के लिए घूम ही आओ कभी तो कहीं निकलना नहीं हुआ।"

अशोका मुस्कराकर धीरे से बोली, "जब मँझले भैया स्वस्थ थे, जब वहाँ का माहौल ठीक था, तब जाना होता तो अलग बात थी।"

सुविमल कुछ देर खामोश रहकर वोले, "लेकिन लगता है मोहन वहीं सेटल होना चाहता है। कलकत्ते से तो अव तक कुछ हो नहीं पाया।"

"वड़े भैया उनको कभी भी कहीं भी कुछ नहीं होगा।" कहकर सिर नीचा करके अशोका मुस्कराने लगी।

"मेरे भाई को तुम वहुत नीचे गिरा रही हो। यह भी तो संभव है कि अव उसमें कुछ करने की इच्छा जागृत हो गयी हो।"

"ऐसा हुआ हो तो वहुत अच्छी वात होगी।"

"मैं सोच रहा था," सुविमल ने कहा, "तुम लोगों के वहाँ पर रहने से वाद में सुशोभन को यहाँ से ले जाना मुश्किल नहीं होगा।"

"लेकिन वे तो यहाँ अच्छी तरह से हैं।"

सुविमल थोड़ा मुस्कराकर वोले, "वह तो है ही। लेकिन कोई भी वात दुनिया के तौर-तरीकों से मेल न खाने पर अंत में भी अच्छी मानी जायेगी इस पर आज तक कोई विचार नहीं हुआ है। खैर, देखा जायेगा।"

"लेकिन आप क्या मुझसे वहाँ जाने के लिए कह रहे हैं?"

सुविमल थोड़ा हँसकर वोले, "सवाल तो तुमने वड़ा सांघातिक किया है। तुम्हारे चले जाने का मतलव ही इस मकान की ज्योति वुझ जाने जैसा होगा, कोई मधुर गीत वंद हो जाने जैसा होगा। लेकिन अपने स्वार्थ को परे रखकर कहता हूँ कि इस जीवन में शायद वीच-वीच में व्यवस्था में वदलाव लाने की जरूरत महसूस होती है। इससे व्यक्ति का आत्मविश्वास वढ़ता है, जड़ता खत्म होती है और घरेलू एकरसता से मुक्त होकर मन का उत्कर्ष होता है। मोहन की चिट्ठी पढ़ने से मेरी धारणा और दृढ़ हुई है।"

अशोका मौन होकर सुनती रही।

वह खामोश होकर सोचने लगी।

सुमोहन में आत्मविश्वास का विकास होना क्या संभव है। अगर ऐसा हुआ तो कहना होगा कि दिल्ली की आवोहवा का असर जादुई है।

लेकिन अशोका को भी शायद इतने दिनों तक एक साथ रहते-रहते सुमोहन की हवा लग गयी थी, इसलिए वह सोच रही थी कि आखिर व्यवस्था में वदलाव की जरूरत क्या है? सव चल तो रहा ही है। सोच रही थी कि उसे यहाँ सिर्फ सुविमल का ही स्नेह प्राप्त नहीं है वल्कि मायालता भी उसे किसी से कम स्नेह नहीं करती।

हाँ, मायालता के मन को अशोका समझती थीं।

समझती थी इसीलिए जीवन के इतने दिन इतने दिन साथ रहकर विता सकी। दुनिया के ऐसे नादान लोग ही तो वुद्धिमानों के पैरों की वेड़ियाँ वन जाते हैं।

अगर सचमुच अशोका को जाना पड़ा तो उसको सबसे अधिक मायालता की ही याद आयेगी। अकुशल और असहिष्णु मायालता को असहाय होकर कितना कष्ट उठाना पड़ेगा, इस बात से अशोका अनभिज्ञ नहीं थी।

लेकिन मायालता के पैने और दर्पयुक्त वचनों को सुनकर यह किसी के लिए भी विश्वास कर पाना कठिन था कि वहाँ से चले जाने पर अशोका के मन में मायालता की याद बनी रहेगी।

उन दिनों मायालता जब तक अपने पंचम स्वर में 'मनुष्य जाति ही नमक हराम होती है' की रट लगाती घूमती रहती थीं। इसके बाद ही कहती थी, क्या राजा के न होने से राज-काज नहीं चलता? क्या इनके न होने से गृहस्थी की गाड़ी रुक जायेगी? उँह! अभावों के मारे मैं लड़के की शादी नहीं कर पा रही थी। अब उसी धूम-धाम से शादी करके इज्जत से रहूँगी। तब आज जैसी दासी बाँदी होकर नहीं रहना पड़ेगा।" इसके अलावा वे नीता को लक्ष्य बनाकर भी कुछ नहीं कह रही थीं, ऐसी बात नहीं थी।

भद्रमहिला अपनी वाणी को जरा भी विश्राम नहीं देती थीं।

अगर कोसने में शक्ति रही होती तो नीता जाने कब की भस्म हो गई होती।

लेकिन इस युग में वाणी की कोई शक्ति नहीं होती इसलिए नीता का भस्म होना तो दूर ही रहा बल्कि पहले की तुलना में वहीं अधिक स्वास्थ्यवती और व्यक्तित्व सपन्न हो गयी थी।

आश्चर्य है इतनी आँधी तूफानों के बीच भी नीता किस तरह से अपने चेहरे की कांति और स्वास्थ्य के लावण्य को बनाए रह सकी थी?

हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर अचानक कृष्णा से आमना-सामना हो जाने पर कृष्णा के मन में सबसे पहले यही सवाल उठ खड़ा हुआ।

मुलाकात बड़े ही अप्रत्याशित रूप में हुई थी। प्रायः कहानियों में घटी घटनाओं जैसी ही थी। नीता दिल्ली वाली गाड़ी से उतरी थी और कृष्णा इन्द्र-नील को गाड़ी में चढ़ाकर लौट रही थी एक की चाल बहुत तेज थी और दूसरी मुर्झायी, थकी-थकी धीमी चाल वाली थी, इसके बावजूद दोनों का आमना सामना हो गया।

नीता कह उठी "अरे, तुम?"

कृष्णा बोली, "अरे, आप!"

इसके बाद बड़ी तेजी से उन दोनों के बीच जो संवाद हुआ उसका सारांश था कि, नीता यहाँ की हालत को थोड़ा व्यवस्थित करके पिता को देखने चली आयी थी। दो-तीन दिनों से अधिक रहना नहीं होगा। शायद परसों ही लौटना पड़े। नीता के चाचा वहाँ पर हैं इसलिए यहाँ आने में विशेष असुविधा नहीं हुई।

और कृष्णा?

वह इन्द्रनील को गाड़ी में चढ़ाने आयी थी। वर्धमान कालेज से एक साधारण वेतन वाली लेक्चरार की नौकरी का जुगाड़ करके इन्द्रनील अपनी पत्नी और उसकी माँ के सारे निषेधों को ठुकराकर चला गया।

"लेकिन निषेध क्यों ? कुछ तो करना ही पड़ेगा ?" नीता ने कहा, "और शुरू में ही कोई बड़ी चीज मिल जाएगी यह सोचना ही बेकार है। यही संतोषजनक है कि एजूकेशन लाइन है।"

कृष्णा ओंठ उलटते हुए बोली, "एजूकेशन लाइन। दो व्यक्तियों का दो अलग जगहों में पड़े रहने का कोई मतलब होता है ? कोशिश करने पर इसी कलकत्ते के एजूकेशन लाइन में क्या कोई नौकरी नहीं मिलती ?"

"क्यों नहीं मिलती ?" नीता चकित होकर बोली, "लेकिन कलकत्ते से बाहर जाकर कोई नौकरी नहीं करेगा इस बात में मुझे कोई वजन नहीं दीखता। दोनों के अलग-अलग जगहों में पड़े रहने से क्या मतलब है तुम्हारा ? क्या तुम भी कोई नौकरी कर रही हो ?"

"मेरा क्या दिमाग खराब है ! मुझसे गुलामी नहीं हो सकती। लेकिन उसके उस वर्धमान में जाकर मैं नहीं रह सकूँगी।"

"तुम वहाँ जाकर नहीं रह सकूँगी।"

"मेरे दो टुकड़े कर दे, तब भी नहीं। रहने के लिए उसे कोई सभ्य शहर नहीं मिला ? मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है। सोचा था, स्टेशन पर भी नहीं जाऊँगी बस जीव-दया के नाते चली आयी। आप सुनकर यकीन नहीं करेंगी कि मेरे पिताजी ने उसको आश्वासन दिया था कि वे किसी दोस्त से कहकर उसके लिए बढ़िया नौकरी की व्यवस्था करवा देंगे जवाब में बाबू साहब ने कहा, "उस काम में मेरी तबियत नहीं लगेगी।"

पिताजी ने कहा, "ठीक है, विदेश जाना चाहते हो तो कहो, वहीं भिजवाने की कोशिश करूँ।" यह सुनकर मुझे बड़ा मजा आया था। सोचा था, तब मैं भी नहीं छोड़ूँगी। मेरी दो-तीन सहेलियाँ शादी के बाद बड़े मजे से अपने-अपने दूल्हों के साथ अमेरिका चली गयी थीं। लेकिन यह सुनकर भी बाबू साहब ने कहा, 'आपके रुपयों से विदेश जाकर मैं बड़ा आदमी बन जाऊँ, यह मेरे मिजाज के अनुकूल नहीं है।' आप यकीन कर रही है ? इस सड़े देश की ऐसी सड़ी नौकरी से ही मिजाज का ताल-मेल बैठा। अब क्या बताऊँ घर में मेरी कैसी पोजीशन हो गयी है। उसकी बुद्धि को सभी धिक्कार रहे हैं; इसके अलावा शादी के बाद भी अपने मायके में पड़े रहना—"

बात खत्म करते-करते कृष्णा रुक गयी। शायद सोचने लगी इस तरह से नीता से अपने मायके में पड़े रहने का कारण बता देना उचित होगा या नहीं।

चिट्ठी में ढेरों बातें लिखी जा सकती हैं। लेकिन इस तरह से आमने-सामने कह पाना—

कृष्णा की उस अधूरी बात से ही प्रश्न का उपादान जुट गया। नीता ने चकित होकर पूछ लिया, "मायके में क्यों पड़ी हुई हो ?"

"अब क्या बताऊँ। क्या आपको मेरी चिट्ठी नहीं मिली थी ?"

"मिली थी।" नीता मधुर मुस्कराकर बोली, "लेकिन उससे तुम्हारे मायके में पड़े रहना, या पड़े रहने का कारण ठीक से समझ में नहीं आया। अब हालांकि समझ में आ रहा है।"

"जब समझ रही हैं, तब अधिक कहने के लिए क्या है ?"

नीता कुछ देर चुप रहकर विचित होते हुए बोली, "लेकिन मैंने तो हमेशा यही सुना कि पिताजी के स्वास्थ्य में उन्नति हो रही है। अच्छा, क्या वे लोगों को देखकर अपना धीरज खो बैठते हैं ?"

अबकी बार कृष्णा अपने खास लहजे में तेज होकर बोल पड़ी, "वे क्या हैं या नहीं हैं, इसे देखने की कभी मुझे फुर्सत नहीं हुई नीता दी। लेकिन असहिष्णुता तो दूसरे पक्ष की भी हो सकती है। और इसे समझने की बुद्धि आप में नहीं है, ऐसा मैं नहीं मानती। एक पक्ष मेरे 'माँ-बाप' का भी है और उनका भी मत-सम्मत नाम की कोई चीज है।"

सारी बातें कार में लौटते समय हो रही थीं।

कृष्णा जिस कार में आयी थी उसी में उसने नीता को भी बैठा लिया था। कृष्णा के पिता के पास दो गाड़ियाँ थीं, एक उनके अपने काम के लिए थी और दूसरी परिवार के लिए थी। इसलिए किसी को असुविधा नहीं होती थी।

नीता खिन्न होकर बोली, "सच कह रही हो। देखूँ, वहाँ कैसी हालत है।"

कृष्णा विद्रूप भरे स्वर में ओंठ सिकोड़कर बोली, "हालत जैसी भी हो, आप कुछ व्यवस्था कर पाएँगी, मुझे ऐसा नहीं लगता।"

"मतलब ?"

"मतलब वहीं जाकर समझियेगा। चकित होकर चले आने के सिवा मुझसे भी कुछ करना संभव नहीं हुआ था।"

नीता कुछ नहीं बोली।

बाकी रास्ता खामोशी में ही कट गया।

नीता बेहद चिंता में पड़ गयी थी। सोचने लगी कि उसे अब तक जो सूचनाएँ मिली थीं, क्या वह सब गलत थी ? नीता की दुश्चिंता को कम करने के लिए क्या निरुपम ने लगातार झूठा आश्वासन देता आ रहा था ?

क्या सुशोभन ने कुछ अधिक ही अस्वाभाविकता का प्रदर्शन किया था ?

क्या सुचित्रा भयंकर असुविधा की हालत में दिन बिता रही हैं ?

नीता के स्वार्थ ने क्या उन जैसी शांत, भद्र, निर्लिप्त स्वभाव वाली महिला की शांति को खत्म कर दिया था ?

लेकिन क्या सिर्फ नीता का ही स्वार्थ था ? क्या इसीलिए नीता थी ? नीता के उस दिन के उस निर्णय के पीछे क्या और कोई बात नहीं थी ? उस दिन—जब नीता पहली बार अपने पिता को लेकर अनुपम कुटीर में आयी थी।

सुशोभन तो खैर पागल ही थे, उन्होंने अपने मन की सारी बातों को व्यक्त कर दिया था, लेकिन जो पागल नहीं था, जिसका सभी कुछ अव्यक्त था, क्या उस अव्यक्त स्थिरता द्वारा भी आजीवन संचित उस ऐश्वर्य भंडार का आभास व्यक्त नहीं हुआ था ? उस ऐश्वर्य ने क्या उसे सिर्फ विध्वस्त ही किया था ? उस इसके लिए कोई तरीका नहीं ढूंढ़ा था ?

देखूं, जाकर देखूं, सुशोभन कैसे हैं ?

तुक मुझे पहचान लोगे पिताजी ?

क्या अभी तक तुम्हें मेरा नाम याद होगा ? समझ में नहीं आ रहा है कि इतने दिनों से वे लोग मुझे वाकई बेवकूफ बना रहे हैं ? पिताजी तुम अगर मुझे पहचान नहीं पाओगे तो ? क्या मैं उस दुख को सह पाऊँगी ?

अनुपम कुटीर के दरवाजे के करीब कृष्णा ने नीता को उतार दिया।

"तुम भी उतर आओ न।" नीता को यह कहने साहस नहीं हुआ और शायद मन भी नहीं हुआ। वह अपने पिता के पास अकेली ही जाना चाहती थी। कौन जाने वह अपने बहुत दिनों की बिछुड़ी बेटी जिसे वे भूल भी चुके होंगे, जाने कैसा व्यवहार करें।

लेकिन सुशोभन क्या भूल गये थे ? भूल गये थे कि नीता नाम की भी कोई थी। नहीं-नहीं, सुशोभन उसे कैसे भूल सकते थे ? उन्होंने तो लगातार सोच-सोचकर भूल को खोज निकाला था।

नीता की सारी आशंका और सारे उद्वेग को झटके से खत्म करके सुशोभन ने लपक कर अपनी बेटी को सीने से लगा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए रुंधे गले से वे बार-बार कहने लगे, "नीता, मेरी बेटी, तू आ गयी। इतने दिनों तक क्यों नहीं आयी थी ?"

उसके बाद मौके पर उन्होंने सागर का भी जिक्र किया। पूछा, 'सागर नाम के उस लड़के से तो तेरी शादी हुई थी न ? ये लोग तो यही कह रहे थे। उसे अपने साथ क्यों नहीं ले आयी ?"

नीता का मन खुशी से भर उठना चाहता था, लेकिन जाने कहाँ कोई चीज टूटी हुई नजर आ रही थी। नीता क्या हर क्षण यही आशा कर रही थी कि अब सुशोभन खुश होकर चीखने लगेंगे, "सुचिन्ता, तुम कहाँ चली गयी। जाने

किस बेकार के कामों में तुम फँसी हुई हो। यहाँ कौन आया है, क्या तुम्हें नजर नहीं आ रहा है?"

नही सुशोभन बिलकुल नहीं चीखे।

सुशोभन को समझ में आ गया था कि इस तरह से चीखना-चिल्लाना नहीं चाहिए। इस तरह से चीखने को पीछे जो परम निश्चिंतता की भावना रहती है सुशोभन के मन से लुप्त हो चुकी थी। अब सुशोभन दिन-रात सोचते रहते थे। और लगातार सोचते रहने से ही सुशोभन शायद गंभीर हो गये थे।

आखिरकार नीता ही पूछ बैठी, "सुचिन्ता बुआ नजर नहीं आ रही हैं।"

सुशोभन चिंतित होकर बोले, "मुझे तो मालूम नहीं वहाँ गयी है।"

"तुम्हे मालूम नही है?"

"मैं? मुझे कैसे मालूम होगा? वह कब क्या करती है मुझे बताती थोडे है।"

"लेकिन घर इतना खाली-खाली क्यों लग रहा है? सिर्फ नीचे एक नये नौकर को काम करते हुए देखा। उसी ने कहा, "सभी लोग ऊपर हैं।"

सुशोभन ने गंभीर होकर कहा, "सभी तो चले गये हैं।"

"चले गये?"

"हाँ, सुचिन्ता के लडके नाराज होकर चले गये।"

"नाराज होकर? आखिर इसकी वजह?"

सुशोभन कुछ और गंभीर होकर बोले, "नाराज हो सकते हैं। नाराज होना उनकी कोई गलती नही थी।"

नीता भी जैसे नदी के पानी की थाह लेना चाहती हो। इसलिए आश्चर्य चकित होकर बोली, "लेकिन ऐसा क्यों हुआ पिताजी? बुआ तो लडकों से कुछ भी नहीं कहती थी।"

"कुछ कहने-सुनने की बात नही है", सुशोभन का स्वर कोमल हो गया, "वह दूसरी बात है। अच्छा नीता, मैं सुचिन्ता के मकान मे किस हैसियत से रह रहा हूँ? मैं यहाँ पर कब आया? मुझे यहाँ पर कौन ले आया था?"

सुशोभन जब ये सारी बातें सोच रहे थे, सुचिन्ता उस समय घर में ही थीं। वे छत पर थी।

सुशोभन ने कभी कहा था, "सुचिन्ता तुम अपनी दादी की तरह आम का अचार नहीं बना सकती हो?" आज सुचिन्ता उसी के लिए कोशिश कर रही थीं कि वे अचार डाल सकती हैं कि नही।

लेकिन सुशोभन ने क्या कहा था?

बहुत दिन पहले कहा था। उस समय सुशोभन दुनियादारी के कायदे-कानून से परे थे। लेकिन उस समय आम का मौसम नही था।

सुचिन्ता छत से नीचे उतरकर चौंककर खड़ी हो गयीं।

"प्रणाम बुआ जी।" सुचिन्ता ने उनके नजदीक जाकर प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए सुचिन्ता बोलीं, "आने के पहले मुझे सूचना क्यों नहीं दी ? निरुपम तुम्हें लेने शायद स्टेशन चला जाता—"

"आपको और अधिक परेशान करने की तबियत नहीं हुई। इसके अलावा आखीर तक यह तय नहीं कर पायी थी कि मैं यहाँ आ भी सकूँगी या नहीं।"

"सागरमय कैसे हैं ?"

नीता कोमल स्वर में बोली, "ऐसे तो ठीक ही हैं।" इसके अलावा कुछ नहीं कहा। जो बेठीक था उसके बारे में उसने कुछ नहीं बताया। अपनी आवाज को कुछ और मुलायम करते हुए बोली, "पिताजी को तो खूब अच्छा ही देख रही हूँ। मुझे तो इतनी आशा नहीं थी।"

सुचिन्ता निर्लिप्त होकर बोली, "हाँ काफी लाभ हुआ है। डॉक्टर पालित ने प्रायः असाध्य को साध्य कर दिया।"

"डॉक्टर पालित।" नीता कुछ खिन्न होकर बोली, "क्रेडिट क्या डॉक्टर पालित को ही है ? असाध्य को साध्य करने की प्रशंसा सिर्फ उन्हीं को क्यों ? यह काम तो बुआ आपने किया है।"

यह सुनकर सुचिन्ता के चेहरे पर मुस्कराने, नाराज होने या आवेग से उद्वेलित होने का कोई लक्षण नहीं दिखायी दिया। सहज लहजे में मृदु प्रतिवाद करते हुए बोलीं, "पागल लड़की। मैंने क्या किया ? इतनी सेवा तो कोई भी साधारण नर्स कर लेती है।"

"तुम परसों जा रही हो ? परसों ? दिल्ली जा रही हो ?" सुशोभन थोड़ा रुककर बोले, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"तुम भी चलोगे ?"

नीता ने एक बार अपने चारों तरफ देखा। देखा सुचिन्ता को भी। ढलती साँझ की मन्द होती हुई रोशनी में बरामदे के कोने वाले बेंत के मोढ़े पर बैठकर वह कुछ लिख रही थीं। गर्दन झुकी हुई थी, सिलाई का कपड़ा अपनी जगह पर रखा हुआ था। स्थिर मुद्रा में वे बैठी हुई थीं।

सुशोभन की इस घोषणा को सुनकर भी उनकी स्थिरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नीता हिचकिचाते हुए बोली, "इतनी जल्दी तुम कैसे जा सकते हो पिताजी ?"

सुशोभन के हाथ में एक किताब थी।

सुशोभन उसके पन्नों को शुरू से अंत तक और अंत से शुरू तक लगातार उलट-पुलट रहे थे। आजकल ऐसा ही करते थे। इन दिनों उनके हाथों में हमेशा

कोई न कोई पुस्तक रहती थी जिसके पन्नों को वे उलटते रहते थे। पुस्तक में मन को केन्द्रित करने लायक धैर्य अभी उनमें विकसित नहीं हुआ था।

नीता की बातें सुनकर सुशोभन दो-तीन बार किताब के पन्नों को पलट गये। इसके बाद भौंहें सिकोड़कर बोले, "इतनी जल्दी से तुम्हारा क्या मतलब है नीता ?"

नीता अप्रतिभ होकर बोली, "जल्दी का मतलब है कि अब एक ही दिन जाने के लिए रह गया है और तुम्हारी अभी सारी तैयारी बाकी है।"

"मेरे लिए क्या तैयारी करनी है।" सुशोभन थोड़ा असहिष्णु होकर बोले, "सब ठीक हो जाएगा। तुम छोड़ जाओगी तो मुझे कौन ले जायेगा ? मुझे तो अब ठीक से याद भी नहीं आ रहा है कि दिल्ली किस दिशा में है।"

"तब ?" इस बात से नीता उत्साहित होकर बोली, "तब तुम इस समय कैसे जाओगे पिताजी ? इस बार रहने दो, मैं फिर आकर तुम्हें ले जाऊँगी।"

"नहीं, बाद में नहीं, इसी समय।"

नीता ने फिर एक बार इधर-उधर ताका ! सुचिन्ता पूर्ववत् अपना काम किए जा रही थी। इस वार्तालाप का कोई भी टुकड़ा उनके कानों में जा रहा था, उन्हें देखकर ऐसा नहीं महसूस हुआ।

इसलिए नीता ने कुछ ऊँची आवाज में कहा, "तुम्हारे अभी जाने की जिद करने से बुआ नाराज हो जाएँगी पिताजी। ठीक कह रही हूँ न बुआजी ?"

सुचिन्ता ने इस बार इधर अपनी नजरें फेरीं और नीता के आँखों के इशारे की बिल्कुल परवाह न करते हुए बोली, "नहीं, मैं नाराज क्यों होऊँगी ?"

"हाँ, वह नाराज क्यों होगी ?" सुशोभन फिर किताब के पन्नों को तेजी से पलटते हुए बोले, "इसमें नाराज होने की क्या बात है ? यह तो मेरा अपना मकान नहीं है। मुझे यहाँ पर क्यों रहना चाहिए ?"

नीता पिता की ओर झुकते हुए दृढ़ स्वर में बोली, "ऐसी बात—ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए पिताजी। सुचिन्ता बुआ का घर क्या हम लोगों का घर नहीं है ? वह कोई पराई तो नहीं हैं।"

"नहीं, तुम बिल्कुल गलत कह रही हो।" उत्तेजना के मारे वे कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए बोले, "सुचिन्ता से किस तरह से हम लोगों का रिश्ता हो सकता है ? वह मुखर्जी तो नहीं है।"

"मुखर्जी न होने से भी वह गैर नहीं हैं पिताजी।"

"ऐसा नहीं होता।" सुशोभन दृढ़ स्वर में बोले, "यह सब चालाकी भरी बातें हैं। मतलब तुम मुझे नहीं ले जाना चाहती हो।"

"वाह, ले क्यों नहीं जाना चाहती हूँ ? लेकिन सुचिन्ता बुआ तो अब किसी

नहीं जाएँगी—" नीता जैसे अपने पिता को असली परेशानी से सतर्क कर देना चाहती थी, "वहां तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ?"

"तुम तो हो।" सुशोभन चिढ़कर बोले, "तुम मेरी बेटी हो, तुम नहीं कर सकतीं ?"

शायद प्रकाश कम हो जाने के कारण पत्थर की स्थिर मूर्ति कुछ और झुक गयी। थोड़ी देर पहले ही जहाँ नाना रंगों की छटा नजर आ रही थी, अब लुप्त होकर उस पर एक गहरी छाया उतरने लगी थी।

नीता ने आखिर दांव मारा, "हम लोगों के एक साथ चले जाने से बुआ अकेली हो जाएँगी। उन्हें तकलीफ नहीं होगी ?"

नीता आदत के अनुसार पहले जैसे लहजे में ही पिता से बातें कर रही थी।

सुशोभन अपनी बेटी के इस दांव से परास्त नहीं हुए। गंभीर होकर बोले, "दुःखी होने से काम कैसे चलेगा ? यह उचित नहीं होगा।"

नीता जोर से हँसते हुए बोली,"दुःख क्या उचित-अनुचित का विचार करता है पिताजी ?"

लेकिन उसकी हँसी का वेग कम होने के पहले ही पागल आदमी ने उन लोगों को स्तब्ध करते हुए कहा, "दुःख अपने तरीके से काम करता होगा, लेकिन आदमी को तो हर काम उचित-अनुचित का विचार करके ही करना पड़ेगा।"

नीता स्तब्ध होकर अपने पिता को छोड़कर दूर बैठी हुई उस स्थिर मूर्ति की ओर देखने लगी थी जो घिरते हुए अँधेरे में हाथ की सिलाई की व्यर्थ चेष्टा त्याग कर खामोश बैठी हुई थी।

बुद्धि की भ्रष्ट हुई चेतना दुबारा लौट आयी थी। लौट आया था उचित-अनुचित का ज्ञान। इससे अधिक खुशी की बात क्या हो सकती थी ? फिर भी किसी भयंकर आशंका ने नीता को सुन्न कर दिया।

बुद्धिभ्रष्ट की खोयी हुई बुद्धि क्या किसी तीखी छुरी की फाल बनकर लौट आयी थी ? जो छुरी किसी के कोमल मन को विद्ध करके एकदम से नष्ट कर देना चाहती थी।

नीता ने उठकर कमरे की बत्ती जला दी।

उसने अचानक कहा, "ठीक है पिताजी, अब तुम आराम करो, मैं जरा एक बार इस मकान की ताई जी से मिल आती हूँ। जाने कल मौका मिले, न मिले।"

सुशोभन भी साथ ही साथ व्यस्त होकर बोले, "तुम अकेली नहीं जाओगी। साथ में मैं भी चलूँगा।"

"तुम ? तुम अब इस शाम के समय—आज रहने दो, बल्कि कल दिन में मेरे साथ चलना।"

पागल की एक ही रट अभी मिटी नहीं थी। सुशोभन बोले, "नहीं, अभी

जाऊँगा। शाम को नहीं जाना चाहिए ? तू क्या घने जंगल में पैदल जाने वाली है नीता ? शाम को तू निकल सकती है और मैं नहीं ?"

नीता हताश होकर बोली, "रहने दो पिताजी, अब कल ही हम दोनों चलेंगे। अब आज जाने की तबियत नहीं हो रही है।"

"अभी तबियत थी, अब नहीं है ? बड़े आश्चर्य की बात है नीता। तुम लोगों का कहना था कि मेरे दिमाग में गड़बड़ी है, जबकि तुम्हीं लोगों का दिमाग गड़-बड़ है।"

नीता फिर से आशान्वित क्यों हो उठी ? पागल पिता की स्वस्थ मूर्ति क्या उसे विचलित कर रही थी ? उस मूर्ति को क्या वह साहस करके सह नहीं पा रही थी ? क्या ऐसी शिथिल बातों से उसे आश्वस्ति होती थी ? उस स्वस्ति के सुख से भरकर वह हँसते हुए बोली, "यह बात तुमसे किसने कही थी पिताजी ? सुचिन्ता बुआ ने ?"

"सुचिन्ता की बात नहीं हो रही है। तुम्हीं ने कहा था।"

"मुझे तो याद नहीं पड़ रहा है।"

सुशोभन खीझकर बोले, "याद नहीं पड़ता है ? ठीक से याद करो।"

"बड़े भैया, पिताजी ने तो अब एक नया पागलपन शुरू किया है।"

निरुपम से मिलने पर नीता ने सबसे पहले यही कहा।

पागलपन !

निरुपम के मन में बहुत सारी बातें नाचने लगीं। किनारे पर आकर क्या नाव डूब गयी ? लड़की को देखकर खुशी के मारे स्वस्थ हो रहे सुशोभन क्या पुनः अपनी समझ-बूझ खो बैठे ? इसके बाद ही उसने महसूस किया कि नीता पहले से कितनी सुंदर हो गयी थी। खैर, होने दो अब यह देखने की जरूरत नहीं है। बड़े भैया होने के नाते उसे और बड़ा होना पड़ेगा।

लेकिन नीता का पति तो अंधा है। वह अब कभी भी नीता का लावण्य से छलकता हृदय-ऐश्वर्य की दीप्ति से सुन्दर चेहरे को नहीं देख पायेगा। फिर भी आश्चर्य है कि नीता के चेहरे पर कितनी कांति है, और वह हमेशा ऐसे ही रहेगी।

नीता की बातों के जवाब में उसने कहा, "कब आयीं ?" उसके चेहरे पर भी नीता को देखकर रौनक आ गयी थी, इसे वह खुद भी नहीं जान पाया।

"जाने कब की आयी हूँ। आपका तो पता ही नहीं था। दिन भर कहाँ रहते हैं ?"

"इधर-उधर नेशनल लाइब्रेरी में। तुम अकेली ही आयी हो ?"

"दिल्ली से अकेली ही आयी हूँ। हावड़ा स्टेशन से छोटे बाबू की बहू ने

गाड़ी से यहाँ पहुँचा दिया।"

"छोटे बाबू की बहू।"

"कृष्णा! इन्द्र की बहू!" कहकर नीता हँसने लगी। इसके बाद ही गंभीर होकर बोली, "इन्द्रनील वर्धमान कालेज में लेक्चरर होकर चला गया, उसकी बहू उसे छोड़ने स्टेशन गयी थी। आपको नहीं मालूम?"

निरुपम ने सिर हिलाया।

"मँझले भैया भी चले गये। ऐसा क्यों हो गया बताइये तो? मैंने ऐसा तो नहीं सोचा था।"

निरुपम चुपचाप रहा।

नीता उदास होकर बोलीं, "अच्छा बड़े भैया, क्या मनुष्य सचमुच इतना अधिक दुर्बल प्राणी होता है? जरूरत पड़ने पर वह उदार नहीं हो सकता? महान् नहीं बन सकता? वह अपने को सुन्दर नहीं बना सकता? दूसरों के प्रति सहानुभूतिशील नहीं हो सकता? नहीं हो सकता न? हालांकि ऐसा होने पर जीवन कितना सहज बन सकता था। जानते हैं मुझे पहले क्या महसूस होता था? यही कि मनुष्य इच्छा करने पर क्या नहीं बन सकता है। अब देखती हूँ, वह ऐसा नहीं कर सकता। उस जरा-सी इच्छा के बदले हम लोग छोटे हो जाते हैं, संकीर्ण बनते हैं, निष्ठुर होते हैं, कंजूस बनते हैं, शायद बहुत गिर भी जाते हैं और इसी तरह से जीवन को निरन्तर जटिल बनाते जाते हैं। फिर भी वह थोड़ी-सी कामना पूरी नहीं कर पाते।"

"निरुपम ने कहा, "दो-एक लोगों के चाहने से तो संभव नहीं है। अगर संयोग से दुनिया के सभी लोग महापुरुष बन जाएँ तभी यह हो सकता है।"

नीता बोली, "आप तो हँसी कर रहे हैं। लेकिन दुनिया के सभी लोग तो एक ही तरह के पदार्थ नहीं हैं। हर किसी का अपना व्यक्तित्व है। अगर कोई अपने को ही सुधारने की कोशिश करे तो उससे भी कुछ बात बन सकती है। हम लोग सिर्फ अपने स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं सोचते। 'दुनिया के करोड़ों लोग कितना कष्ट उठा रहे हैं, सिर्फ अपनी ही हालत सुधार कर क्या करेंगे?' क्या कभी यह बात हम लोगों ने सोची है। अपने लड़के को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते हैं, अपनी लड़की की शादी अच्छी जगह करना चाहते हैं, अपने परिवार को अच्छा खिलाना-पहनाना चाहते हैं, अपने घर को अच्छी तरह से सजाए रखना चाहते हैं, ये सारी बातें हम लोग भी चाहते हैं और इसकी कामना करते समय दूसरों की भलाई की बात बिल्कुल ध्यान में नहीं लाते। अगर आदमी महान् होने की बात को खुद ही पर 'एक्सपेरीमेन्ट' करके देखे तो बुरा क्या है?"

"वह एक्सपेरीमेन्ट तो तुम कर ही रही हो—" निरुपम मुस्कराते हुए बोला,

"हम लोग इसका 'रिजल्ट' देख लें, फिर उत्साहित होंगे। तुम कुछ नये पागलपन के बारे में कह रही थीं?"

"उसे तुम पागलपन की संज्ञा क्यों दे रही हो?"

यह सवाल निरुपम ने नहीं बल्कि उनकी माँ ने किया। बोलीं, "हम लोग तो इसी की आशा कर रहे थे। डॉक्टर भी इसी के लिए भरोसा दे रहे थे।"

"बात तो ठीक ही है—" नीता ने आहिस्ते-आहिस्ते कहा, "लेकिन जाने क्यों विश्वास नहीं हो रहा है।"

सुचिन्ता सहज स्वर में बोली, "तुम बहुत दिनों के बाद देख रही हो, इस-लिए तुम्हें ऐसा लग रहा है।"

हाँ, कल शाम की उस स्तब्धता के बाद से ही सुचिन्ता आश्चर्यजनक रूप में सहज हो गयी थी। शायद रात को प्रार्थना करते वक्त उन्होंने अपने में यह शक्ति अर्जित की होगी। शायद उन्होंने खुद को बार-बार यही कहकर समझाया होगा कि सुशोभन के स्वस्थ और स्वाभाविक होने की कामना ही तो हम लोगों ने की थी।

शायद सोचा था हम लोग पृथ्वी के अकृतज्ञ और निष्ठुर होने की बात सोच-सोचकर क्यों विचलित होते रहते हैं? उसकी निष्ठुरता ही तो कल्याण-कारी हाथों का स्पर्श है, उसकी अकृतज्ञता ही तो मुक्ति-वाहिका है।

इसलिए जब नीता ने उनसे कहा, "बुआ आप पिताजी को थोड़ा समझाइये न, उन्होंने फिर एक पागलपन शुरू कर दिया है—" तब सुचिन्ता ने सहज भाव से कहा था, "इसे तुम पागलपन क्यों कह रही हो? हम लोगों ने यही तो चाहा था।"

सचमुच, इसी की तो आशा की गयी थी।

क्या नीता इसी आशा के वशीभूत होकर ही अपने पिता को लेकर अनुपम कुटीर के दरवाजे पर आकर नहीं खड़ी हुई थी?

इसके बावजूद नीता सोच रही थी।

"लेकिन क्या मैंने यही आशा की थी?"

सोचने में व्यवधान पड़ गया।

सुशोभन आकर बिना सुचिन्ता की ओर देखे हुए व्यस्त होकर बोले, "नीतू, आज उस मकान में हम लोगों के जाने की बात थी न?"

"हाँ, चल तो रही हूँ।" नीता ने कहा, "अच्छा बुआ, आप भी हम लोगों के साथ चलिए न?"

सुचिन्ता के कुछ कहने के पहले ही सुशोभन गहरे असंतोष से भरकर कह पड़े, "सुचिन्ता वहाँ क्यों जाएगी? वहाँ पर सुचिन्ता की क्या जरूरत है? सुचिन्ता से उन लोगों का क्या रिश्ता है?"

नीता का चेहरा लाल हो गया। वह अप्रतिभ होकर सुचिन्ता की अ
देखती रह गयी। लेकिन वहाँ उसे कुछ भी नजर नहीं आया। वह निर्विक
बनी रहीं। लेकिन नीता अचानक कुढ़कर नाराज हो उठी। बोली, "पिताजी
हम लोग भी तो सुचिन्ता बुआ के रिश्तेदार नहीं हैं, फिर भी—"

सुशोभन बात काटकर और भी गंभीर गले से बोले, "रिश्तेदार नहीं हैं,
यह बात अब तुम मुझे सिखाओगी ? क्या मैं नहीं जानता ? अगर नहीं जानता
तो यहाँ से जाने की बात ही क्यों करता ? दूसरों के घर में नहीं रहना चाहिए
इसीलिए न ?"

"पिताजी, अब तुम यह सब क्या कहने लगे ?"

"ठीक ही कह रहा हूँ—" सुशोभन उत्तेजित होकर कुछ और कहने
जा रहे थे लेकिन उन दोनों को चकित करते हुए सुचिन्ता खिलखिलाकर हँस
पड़ीं। बोलीं, "लो अब बाप-बेटी का झगड़ा शुरू हो गया। ठीक है, जहाँ तुम
लोगों के वह परम आत्मीय रहते हैं, अब अकेले-अकेले जाकर ही उनसे मिल
आओ। मुझे जाने की जरूरत नहीं है। लेकिन असमय में जा रहे हो, कहीं रात
का खाना-वाना खाकर तो नहीं लौटोगे ?"

अल्पभाषी सुचिन्ता की इस प्रगलभता को देखकर नीता को थोड़ी-सी हैरानी
ज़रूर हुई लेकिन वह झटपट कह उठी, " नहीं, नहीं, ऐसा कैसे होगा ? वहाँ से
खाकर क्यों लौटेंगे ?"

उसकी बात पूरी होते न होते सुशोभन भौंहें सिकोड़कर बोले, "अगर वे
खाने के लिए कहेंगे तो खाना ही पड़ेगा। उनकी बातें न सुनकर सिर्फ
सुचिन्ता की ही बातें सुनने से वे लोग निन्दा नहीं करेंगे ?"

"वह तो है ही, अब तो तुम्हारा लोक-निन्दा का ज्ञान भी प्रबल हो गया है।
...भाई, खाना खाकर मत आना। कल तुम लोग चली जाओगी, इसलिए
हमने अच्छी-अच्छी चीजें बनवायी हैं।" कहकर हँसमुख चेहरे से सुचिन्ता
...गयीं।

नीता उनके जाने की दिशा में चकित होकर देखती रह गयी। तब क्या
...ल जो कुछ देखा था वह गलत था ? कृष्णा की चिट्ठी में लिखी हुई बात
...थी ? सुशोभन के दायित्व से सुचिन्ता बेहद थक गयी थीं। अब वे मुक्ति
...लिए छटपटा रही थीं ? क्या इसीलिए 'जरा दो-चार दिन ठहर जाओ'
... कहने की सौजन्यता भी वे नहीं प्रकट कर पा रही थीं ? मुक्ति की
...क्या वे हल्की हो गयी थीं ? प्रगल्भ हो गयी थीं ?

...तो अपनी ओर से भरसक मौका दे रही थी।

...ता की अकृतज्ञता से लज्जित होकर बोली भी थी, "जरा आप ही
समझाइये बुआ—। अब उन पर एक नया पागलपन सवार हुआ है।"

लेकिन सुचिन्ता ने उस मौके का फायदा नहीं उठाया। बल्कि उसे गँवाते हुए बोली, "यह क्या। पागलपन की क्या बात है? यही तो हम लोगों ने चाहा था।"

गणना करने मे नीता को तकलीफ हो रही थी।

उसने यह नही सोचा था कि यहाँ से जाना इतना सरल हो जाएगा। यह बड़े आश्चर्य की बात थी। कही भी किसी को तकलीफ नही होगी? कोई भी जाने से रोकेगा नही?

क्या नीता का बहुत दिनो का सोचा-विचारा हुआ एक अनैसर्गिक फूल हवा लगकर बासी फूल की तरह पेड़ से निःशब्द झर जाएगा?

तब क्या सुशोभन की हर बात मे पागलपन भरा है?

और सुचिन्ता की हर बात मे करुणा?

इसीलिए सुशोभन के यहाँ से चले जाने के अवसर पर सुचिन्ता अच्छे-अच्छे व्यंजन बनवाने की बात इतने खुले ढंग से कर पा रही थीं। सब कुछ सहज होकर कह पा रही थी। लेकिन क्या यही सच था? क्या नीता इतने दिनों तक सिर्फ गलत ही देखती रही? नही, यह असंभव है। दुनिया से बहुत अधिक धोखा खाने के कारण ही शायद सुचिन्ता भी उसे धोखा देना चाहती थी। जिस तरह से बच्चे अपनी माँ से मार खाते हुए भी, 'नही लगी है, बिल्कुल चोट नही लगी है' कहकर माँ को ठगते रहते हैं।

चोट लगने की बात स्वीकार करने से ही उनका सारा अहंकार धूल मे मिल जाएगा।

नही, वे अपने अहंकार को धूल मे नही मिलने देंगी।

उत्तीर्ण हुई थी सुचिन्ता। अंततः आज की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हो गयी थीं। लेकिन अंतिम प्रश्न-पत्र के वक्त वे क्या लिखेंगी, क्या सुचिंता ने इसकी भी तैयारी कर ली थी?

उनके चले जाने के बाद सुचिन्ता बहुत देर तक निश्चल होकर बैठी रहीं। बैठकर शायद वे यही हिसाब लगा रहीं थी कि अब और कितनी देर तक उन्हें यह कवच धारण करके रखना होगा। उनका देह-मन अब थोड़ी शांति और विश्राम चाह रहा था, चाह रहा था एक ऐसा निर्जन कोना जहाँ निश्चिंत होकर अपने को बिल्कुल छोड दिया जा सके। जहाँ पर अपने कवच-शिरस्त्राण को उतारकर रखा जा सके। अब सुचिन्ता नफा-नुकसान, लेन-देन और भाग्य-भगवान की कामना छोड़कर चिंताविहीन, मृत्यु की तरह मधुर-मनोहर उस विश्राम का वरण करने को व्यग्र थी।

लेकिन अभी मुक्ति पाने में कई घंटे बाकी थे। काफी दिन पहले जो गाड़ी अनुपम कुटीर के दरवाजे पर आकर खड़ी हुई थी, वही गाड़ी जब अनुपम कुटीर

के दरवाजे से हमेशा के लिए विदा हो जाएगी, जब अनुपम कुटीर के सामने वाली सड़क से ओझल हो जाएगी और जब धूल में पड़े उसके पहियों के निशान भी मिट जाएँगे, तभी जाकर सुचिन्ता को छुट्टी मिलेगी।

पहियों के वे निशान कहीं गहरे में दाग बन गये हैं कि नहीं यह सोचना ही हास्यास्पद है। यह दुनिया जवानों की है, नये लोगों की है। अगर इस दुनिया के समारोह के किसी कोने में आकर जीर्ण वार्धक्य खड़ा होकर कहे कि इस आनन्द यज्ञ में उसका भी हिस्सा है तो सभी इस बात को सुनकर हँसने लगेंगे और उसे धिक्कारने लगेंगे। कहेंगे, यह तो बड़ा ही पतित और लोभी है। क्या इसे नहीं मालूम कि इस दुनिया में एक 'विस्मृति गृह' भी है। वहीं इसकी जगह है, वहीं जाकर यह आश्रय ले। हम लोग इसे भूलना और भूले ही रहना चाहते हैं। सामने की पंक्ति में खड़ा रहकर क्या यह उल्टी रीति चलाना चाहता है?'

सुचिन्ता मंत्र जपने की तरह कहने लगीं, यही हो, यही हो। मेरे लिए विस्मृति का अंधकार ही रहे। दुनिया मुझे भूल जाए। मुझे छुट्टी मिल जाएगी। अपने जीवन-यज्ञ के होम-अनल में जो आहुतियाँ मैंने दी हैं उन्हें याद करके अपने को छोटा नहीं बनाऊँगी। मेरे जमा खाते में इस होम-अनल का भस्मटीका ही रहे।

पिछले कई दिनों से सुशोभन पर अभिमान करके अपने मौन की बात सोच-कर उन्हें खुद पर लज्जा आने लगी। वे मन ही मन जपने लगीं कि 'वह सहज होकर स्वस्थ होकर अपने घर-द्वार अपने नाते-रिश्तेदारों के बीच पहुँच जाए। अंतिम परीक्षा का प्रश्न-पत्र मेरे लिए कठिन न हो और मैं बिना किसी गलती के उसे हल करके परीक्षा में सफल हो सकूँ।'

लेकिन सही बात कौन-सी थी? क्या सुचिन्ता इसे जानती थीं? अब भी कहीं पर कोई भय अपने पंजे जमाए हुए बैठा था, जिधर ताकने का उन्हें साहस नहीं होता था।

कुछ दिनों से सुशोभन कुछ अधिक गंभीर लगने लगे थे; थोड़े नाराज भी लगते थे। लेकिन आज उस मकान से वे खूब प्रसन्न चित्त लौटे। लगा उनकी पुरानी खुशी फिर से लौट आयी हो।

उन्होंने चिल्लाते हुए कहा, "सुचिन्ता, मैं सब ठीक कर आया। एकदम टिकट तक खरीदने की कम्प्लीट व्यवस्था हो गयी है। नीता ने सोचा था कि वह मुझे दिल्ली नहीं ले जाएगी, यहीं बहला-बहलाकर रख जायगी। मैंने पहले ही नीता का इरादा समझ लिया था। इसीलिए उस मकान में उसके साथ गया। वहाँ मेरे बड़े भैया रहते हैं। वे सारी व्यवस्था कर देंगे। छोटी बहू मेरी देख-भाल करेगी।

सुचिन्ता, तुम इतनी चुपचाप क्यों हो ? मेरे साथ और कौन-कौन जाएगा, तुमने यह नहीं पूछा ?''

सुचिन्ता हँसते हुए बोली, ''तुमने पूछने का मौका ही कब दिया ? रेलगाड़ी की तरह अपनी ही बात चलाए जा रहे थे--''

''रेलगाडी, रेलगाडी !'' सुशोभन ने अपने सिर को धीरे-धीरे हिलाते हुए कहा,''रेलगाडी पर चढे बहुत दिन हो गए। वह स्टेशन, वह प्लेटफार्म, रेल की खिडकियो से आता हुआ धूल का बवंडर ! आह ! यह सब सोचकर ही कितना अच्छा लग रहा है। उन लोगों की तरह मुझे भी खुशी के मारे उछलने-कूदने की इच्छा हो रही है।''

सुचिन्ता चकित होकर बोली, ''किसकी तरह ?''

''अरे हाँ, तुमसे तो कहना ही भूल गया। टंका-टुंका भी तो मेरे साथ जा रहे हैं। उनकी माँ भी जाएगी। वही अच्छी मेरी छोटी बहू !''

सुचिन्ता नीता की ओर कौतूल भरी नजरों से देखकर गंभीर होकर बोली, ''और अगर मैं तुम्हें कहीं जाने न दूँ तो ?''

''नही जाने दोगी ? तुम मुझे नहीं जाने दोगी ?''

''यही तो सोच रही हूँ। जाने के समय रोक दूँगी।''

सुशोभन की भौंहें सिकुड गयीं। अचानक वे अपने उत्साह को भंग करके गंभीर हो गये। भारी गले से बोले, ''बचपना मत करो।'' कहकर धीमी गति से वे अपने कमरे मे चले गये।

शायद दूसरे ही क्षण उन्हें सुचिन्ता की उन्मुक्त खिलखिलाहट और उनकी आवाज सुनायी-पड़ी, ''रहने दो, पागल को ज्यादा चिढ़ाने की जरूरत नहीं है। नीता, अब भोजन परोसा जाय ? रात काफी हो गयी है।''

सुशोभन ने भौंहे सिकोड लीं। सुचिन्ता इतना हँस क्यों रही है ? पहले भी क्या कभी इतना हँसती थी ?

इसके बाद जब रात काफी बीत गयी, जब अनुपम कुटीर की सारी बत्तियाँ बुझ गयीं तब अनुपम कुटीर मे बहने वाली हवा अँधेरे में जगे हुए व्यक्ति के दीर्घ निश्वास से बोझिल हो उठी।

अनुपम कुटीर का बड़ा लड़का सोचने लगा एक असहनीय अवस्था तो खत्म हो रही है लेकिन फिर भी क्यों नहीं मन का बोझ हल्का हो रहा है ? बाबा, इस असहनीय अवस्था के विदा होने के साथ-साथ कुछ और भी जैसे विदा हो रहा है। जाने कहाँ एक पुल था जो टूटने लगा है। सारी चीजें जाने कैसी धुँधली होती जा रही हैं। फिर दूसरे ही क्षण चकित होकर सोचने लगा, लेकिन इतना असहनीय लगने का कारण भी क्या था ? शायद ऐसा ही होता हो। गार्हस्थ्य के धूल-कीचड़ में जो क्षमा ढूँढे नहीं मिलती, वही विदा की उदास बेला में सामने

आकर खड़ी हो जाती है। प्राण तब हाहाकार कर उठते हैं। मन कहता है, इतना कठोर होने की जरूरत क्या थी ? थोड़े से सद्व्यवहार से क्या बिगड़ जाता।"

इसी रात को बहुत-बहुत दूर सोये हुए अनुपम कुटीर के मँझले लड़के की नींद भी टूट गयी थी। अपनी सद्यःविवाहित दक्षिण भारतीय पत्नी के निश्चित सोये चेहरे की ओर देखते हुए सोचने लगा, "यह मैंने क्या किया ? क्या वाकई इसकी जरूरत थी ? दुनिया अगर अपनी गति से चलती हो तो इसमें मुझे क्या लाभ हुआ ?

अनुपम कुटीर के छोटे लड़के की नींद नहीं टूटी थी।

वह सो रहा था।

अनभ्यस्त काम के बोझ से थककर चूर होकर वह अपनी खाट पर थोड़े से बिछे बिछौने पर वह गहरी नींद में सो रहा था। शायद इस श्रम की थकान से ही वह किसी दिन सुखी होगा। सुखी होने के उपादान उसमें मौजूद थे।

लेकिन इन सबसे क्या अनुपम कुटीर का जीवन बदल जाएगा ? अब निरुपम से ही उसका अस्तित्व जाना जाएगा। अब सारे जीवन अस्तित्वहीनता का बोझा ढोकर जीवित रहना पड़ेगा। नहीं, सस्ते उपन्यास की नायिकाओं की तरह मौत को बुलाकर उस बोझ को सुचिन्ता उसकी नाव पर नहीं चढ़ाएँगी। बस, वे अबसे जीवन और मृत्यु दोनों के बारे में निर्लिप्त हो जाएँगी।

हमेशा से खामोश रहने वाला अनुपम कुटीर बीच के इन कई दिनों के आँधी-तूफान के बाद फिर के खामोश और विवर्ण हो जाएगा।

हाँ, सुचिन्ता यही सब सोच रही थीं।

सोच रही थीं कि सुचिन्ता नाम की भी कोई थी, धीरे-धीरे लोग इसे ही भूल जाएँगे। वे सब उदासीन होकर अपनी राह चले जाएँगे, भूलकर भी नहीं जानना चाहेंगे कि कभी इस साधारण से मकान की रात हलचल भरी हो गयी थी और दिन विक्षुब्ध क्रंदन में स्तब्ध हो गया था।

सोच रही थीं, शायद कभी कोई किसी से पूछ बैठे, "इस पुराने से लगने वाले मकान में कौन रहता है ?"

शायद उस व्यक्ति का जवाब होगा, "कौन जाने। कभी-कभी एक विधवा बुढ़िया नजर आती है।"

सुचिन्ता यही सब सोच रही थी।

सोचा नहीं था—लेकिन जो सोचा था उसे अब रहने ही दिया जाए, वह तो ढेर सारी बातें हैं। आज की ही बात ली जाए।

आज की रात साँसों से मर्मरित थी।

आज नींद की दवा का असर नहीं हुआ था। स्वस्थ हो गये सुशोभन सारे कमरे में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। अब उनमें अच्छा-बुरा सोचने की

क्षमता पैदा हो गयी थी। तभी सोच रहे थे कि सुचिन्ता की समझ बहुत कम है। लोग क्या कहेंगे, वह इसकी परवाह ही नहीं करती। मेरे पास आकर बैठ जाती है, मुझसे हँस-हँसकर बातें करती है। फिर यह भी कह रही थी कि मुझे वह जाने नहीं देगी, जाते समय मुझे रोकेगी। छिः छिः कितनी खराब बातें हैं यह सब। उसे मना करना पड़ेगा। कहना होगा, "सुचिन्ता क्या मेरा मन नहीं करता कि तुम्हारे पास बैठूं, तुम्हारे हाथों में अपना हाथ रखूं, लेकिन इच्छा करने से ही तो कुछ नहीं होता। ऐसा करना उचित नहीं है।"

और नीता ?

नीता भी जगी हुई थी लेकिन उस समय वह अनुपम कुटीर में नहीं थी। वह हजारों मील दूर चली गयी थी। एक जोड़ा मुंदी हुई पलकों को वह उदास आँखों से देखे जा रही थी और मन ही मन अपने से व्याकुल होकर पूछ रही थी, तुम कहते हो कि मेरी आँखों से ही तुम देखोगे। लेकिन दुनिया के सारे कर्त्तव्य निभाते हुए भी क्या मैं निरन्तर अपनी आँखों को तुम्हारी आँखें बना पाऊँगी ?"

इसके बाद, बहुत देर के बाद, वह अनुपम कुटीर में जब लौट आयी तब उसने सुशोभन को चहलकदमी करते हुए देखा।

उसने कहा, "पिताजी, पानी चाहिये ?"

"नहीं रहने दो।"

"नींद नहीं आ रही है ?"

"आ जाएगी।"

"तुम तो चहलकदमी कर रहे हो! उससे अच्छा तो यही होगा कि हम सभी लोग बैठकर बातें करें।"

"हम सभी से मतलब क्या है तुम्हारा ?" सुशोभन ने भौंहें सिकोड़ीं।

"क्यों मैं, तुम और सुचिन्ता बुआ। उन्हें बुला लाऊँ ?"

अचानक सुशोभन खड़े हो गये। तीव्र भर्त्सना करते हुए बोले, "नीता, पहले तो तुम इतनी असभ्य नहीं थी।"

इसलिए सभी के मिलकर बातें करने का प्रस्ताव वहीं खत्म हो गया। किसी एक समय सब खामोश भी हो गया। भोर की हवा में बनात सोये हुए लोगों की साँसों की धीमी आवाज तैरने लगी।

लेकिन अभी तो रात के बाद संभावनाओं भरी सुबह भी शेष थी।

दिन अभी रात जैसा अँधेरा नहीं हुआ था।

सुचिन्ता किसी काम से दरवाजे के सामने से गुजरते-गुजरते चमककर खड़ी हो गयीं, फिर वे कमरे में घुस पड़ीं। बोलीं, "यह क्या कर रहे हो ?"

सारे कमरे में कपड़े लत्ते तथा और जरूरी सामान बिखरे पड़े थे।

दो-दो सूटकेस खुले पड़े हुए थे और सुशोभन पसीना-पसीना होकर कमरे में टहल रहे थे।

सुचिन्ता बोलीं, "यह क्या कर रहे हो ?"

सुशोभन वीर दर्प से बोले, "तैयारी कर रहा हूँ।"

"तैयारी हो रही है ? खैर, ठीक ही कर रहे हो," सुचिन्ता हँसते हुए बोलीं, "बहुत देर तुमने तैयारी कर ली है, अब रहने दो मैं सँभाल दे रही हूँ।"

सुशोभन ने उस बात को कोई महत्त्व नहीं दिया, अचानक खाट पर बैठते हुए बोले, "तुम हँस क्यों रही हो ?"

"हँसूँगी नहीं ?"

"मैं जाने की तैयारी कर रहा हूँ और तुम हँस रही हो ? तुम्हें कष्ट नहीं हो रहा है ?"

सुचिन्ता स्थिर हो गयीं। उनकी दोनों आँखों में कोई गहरी छाया तैरने लगी। बोलीं, "तुमने तो कहा था कि हम लोगों की उम्र हो गयी है, हम लोगों को एक दूसरे की याद में दुःखी नहीं होना चाहिए। ऐसा उचित नहीं होगा।"

सुशोभन फिर से परेशान होकर उठ खड़े हुए, "सुचिन्ता, तुमने मेरी बात को ठीक से समझा नहीं। मैंने कहा था इस तरह की बातें करना उचित नहीं है। इसका क्या मतलब है यही कि तुम हँसोगी ?"

"हँसने पर तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

सुशोभन अस्थिर होकर एक बार खूब नजदीक आ गये, इसके बाद फिर हटकर दबे गले से बोले, "लगता है, बहुत अच्छा लगता है। लेकिन मेरे जाने के वक्त नहीं।"

सुचिन्ता उस अस्थिर व्यक्ति की तरफ स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोलीं, "तब तुम चले क्यों जा रहे हो ?"

"क्यों जा रहा हूँ ? यूँ ही मैं तुम्हें नादान नहीं कहता सुचिन्ता। जाना है इसलिए जा रहा हूँ। मुझे क्या तकलीफ नहीं हो रही है ? लेकिन क्या किया जा सकता है ? समाज है, सभ्यता है, लेकिन तकलीफ भी है। और वह रहेगी।"

सुचिन्ता अचानक जमीन पर पड़े कपड़ों के ढेर पर धप्प से बैठ गयीं। जाने क्या मुट्ठियों में बंदकर उसे भींचते हुए बोलीं, "मुझे कोई तकलीफ नहीं हो रही है। बिल्कुल नहीं हो रही है।"

सुशोभन फिर चहलकदमी करने लगे। फर्श पर रखी हुई चीजों को लाँघ-लाँघकर चलने के कारण उनकी चाल बहुत विचित्र लग रही थी।

लेकिन बहुत शांत और गंभीर होकर बोले, "ऐसा कहकर सुचिन्ता तुम मुझे बदल नहीं सकती। मैं क्या तुम्हें जानता नहीं ? मैं यह नहीं जानता क्या कि मेरे जाने के बाद तुम बहुत रोओगी।"

"नहीं, नहीं । मैं बिल्कुल नहीं रोऊँगी ।"

"पिताजी हम लोगों को एक बार डॉक्टर पालित से मिलने जाना पड़ेगा ।"

नीता बाहर जाने की वेशभूषा में तैयार होकर आयी थी ।

इसके बाद ?

इसके बाद सिर्फ भाग-दौड़ की हलचल में ही कई घण्टे बीत गये । डॉक्टर के यहाँ से लौटकर वे लोग बाजार गये । और भी कहीं गये । सुशोभन के अस्त-व्यस्त सामान को ठीक करके खाते-पीते जाने कब समय बीत गया । तब तक उस मकान की छोटी बहू और उनके बच्चे आ गये ।

सभी एक साथ जाने वाले थे ।

गाडी पर चढाने का जिम्मा इस मकान के बडे बेटे पर था ।

दोनों शैतान लडके शोर-गुल करते हुए आगे ही टैक्सी मे चढ़कर बैठ गये थे । नीता अपने पिता को लेकर उतर रही थी । जाने के समय अशोका कह पड़ी, "*दीदी, आप भी स्टेशन चलिए न* ।"

"मैं स्टेशन चलूँ ?" सुचिन्ता जैसे आसमान से गिरीं । बोलीं, "क्या कहती हो । अब मैं स्टेशन जाऊँगी ? चारों तरफ कितना काम बिखरा पड़ा है ।"

"काम । आप इस समय काम की बातें सोच रही हैं ? आपके कहने से ही क्या मैं विश्वास कर लूँगी ? दीदी, आप मेरी आँखों को धोखा नहीं दे पायेंगी ।"

सुचिन्ता खूब जोरों से हँसते हुए बोली, "कल की लडकी की हिम्मत तो देखो । दुनिया भर की नजरों को धोखा देती आयी अब यह आकर मेरी आँखों के धोखे को पकड़ रही है । चलो, दरवाजे तक चलती हूँ । अपने उत्पाती बच्चों के साथ बड़ी सावधानी से सफर करना ।"

अब और कितनी देर ? कितनी देर तक अब और सुचिन्ता अपने को सँभाल पायेंगी ?

इतनी तरह के सवालों को हल करना पडेगा, क्या इस बात को सुचिन्ता पहले से जानती थीं ?

फिर भी सुचिन्ता सँभाल रही थी ।""अपनी बातों की पतवार को वे सँभाले हुए थी ।

यही अंतिम लहर थी ।

इसके बाद मुक्ति थी ।

अब जीवन भर बिना कोई बात किए हुए भी शायद सुचिन्ता के दिन कट जाएँगे ।

दो-दो सूटकेस खुले पड़े हुए थे और सुशोभन पसीना-पसीना होकर कमरे में टहल रहे थे।

सुचिन्ता बोलीं, "यह क्या कर रहे हो ?"

सुशोभन वीर दर्प से बोले, "तैयारी कर रहा हूँ।"

"तैयारी हो रही है ? खैर, ठीक ही कर रहे हो," सुचिन्ता हँसते हुए बोलीं, "बहुत देर तुमने तैयारी कर ली है, अब रहने दो मैं सँभाल दे रही हूँ।"

सुशोभन ने उस बात को कोई महत्त्व नहीं दिया, अचानक खाट पर बैठते हुए बोले, "तुम हँस क्यों रही हो ?"

"हँसूँगी नहीं ?"

"मैं जाने की तैयारी कर रहा हूँ और तुम हँस रही हो ? तुम्हें कष्ट नहीं हो रहा है ?"

सुचिन्ता स्थिर हो गयीं। उनकी दोनों आँखों में कोई गहरी छाया तैरने लगी। बोलीं, "तुमने तो कहा था कि हम लोगों की उम्र हो गयी है, हम लोगों को एक दूसरे की याद में दुःखी नहीं होना चाहिए। ऐसा उचित नहीं होगा।"

सुशोभन फिर से परेशान होकर उठ खड़े हुए, "सुचिन्ता, तुमने मेरी बात को ठीक से समझा नही। मैंने कहा था इस तरह की बातें करना उचित नहीं है। इसका क्या मतलब है यही कि तुम हँसोगी ?"

"हँसने पर तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

सुशोभन अस्थिर होकर एक बार खूब नजदीक आ गये, इसके बाद फिर हटकर दबे गले से बोले, "लगता है, बहुत अच्छा लगता है। लेकिन मेरे जाने के वक्त नहीं।"

सुचिन्ता उस अस्थिर व्यक्ति की तरफ स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोलीं, "तब तुम चले क्यों जा रहे हो ?"

"क्यों जा रहा हूँ ? यूँ ही मैं तुम्हें नादान नहीं कहता सुचिन्ता। जाना है इसलिए जा रहा हूँ। मुझे क्या तकलीफ नहीं हो रही है ? लेकिन क्या किया जा सकता है ? समाज है, सभ्यता है, लेकिन तकलीफ भी है। और वह रहेगी।"

सुचिन्ता अचानक जमीन पर पड़े कपड़ों के ढेर पर धप्प से बैठ गयीं। जाने क्या मुट्ठियों में बंदकर उसे भींचते हुए बोलीं, "मुझे कोई तकलीफ नहीं हो रही है। बिल्कुल नहीं हो रही है।"

सुशोभन फिर चहलकदमी करने लगे। फर्श पर रखी हुई चीजों को लाँघ-लाँघकर चलने के कारण उनकी चाल बहुत विचित्र लग रही थी।

लेकिन बहुत शांत और गंभीर होकर बोले, "ऐसा कहकर सुचिन्ता तुम मुझे छल नहीं सकती। मैं क्या तुम्हें जानता नहीं ? मैं यह नहीं जानता क्या कि मेरे जाने के बाद तुम बहुत रोओगी।"

"नहीं, नहीं। मैं बिल्कुल नहीं रोऊँगी।"

"पिताजी हम लोगों को एक बार डॉक्टर पालित से मिलने जाना पड़ेगा।"

नीता बाहर जाने की वेशभूषा में तैयार होकर आयी थी।

इसके बाद ?

इसके बाद सिर्फ भाग-दौड़ की हलचल में ही कई घण्टे बीत गये। डॉक्टर के यहाँ से लौटकर वे लोग बाजार गये। और भी कहीं गये। सुशोभन के अस्त-व्यस्त सामान को ठीक करके खाते-पीते जाने कब समय बीत गया। तब तक उस मकान की छोटी बहू और उनके बच्चे आ गये।

सभी एक साथ जाने वाले थे।

गाड़ी पर चढ़ाने का जिम्मा इस मकान के बड़े बेटे पर था।

दोनों शैतान लड़के शोर-गुल करते हुए आगे ही टैक्सी में चढ़कर बैठ गये थे। नीता अपने पिता को लेकर उतर रही थी। जाने के समय अशोका कह पड़ी, "दीदी, आप भी स्टेशन चलिए न।"

"मैं स्टेशन चलूँ ?" सुचिन्ता जैसे आसमान से गिरीं। बोली, "क्या कहती हो। अब मैं स्टेशन जाऊँगी ? चारों तरफ कितना काम बिखरा पड़ा है।"

"काम। आप इस समय काम की बातें सोच रही हैं ? आपके कहने से ही क्या मैं विश्वास कर लूँगी ? दीदी, आप मेरी आँखों को धोखा नहीं दे पायेंगी।"

सुचिन्ता खूब जोरों से हँसते हुए बोली, "कल की लड़की की हिम्मत तो देखो। दुनिया भर की नजरों को धोखा देती आयी अब यह आकर मेरी आँखों के धोखे को पकड़ रही है। चलो, दरवाजे तक चलती हूँ। अपने उत्पाती बच्चों के साथ बड़ी सावधानी से सफर करना।"

अब और कितनी देर ? कितनी देर तक अब और सुचिन्ता अपने को सँभाल पायेंगी ?

इतनी तरह के सवालों को हल करना पड़ेगा, क्या इस बात को सुचिन्ता पहले से जानती थीं ?

फिर भी सुचिन्ता सँभाल रही थीं।....अपनी बातों की पतवार को वे सँभाले हुए थीं।

यही अंतिम लहर थी।

इसके बाद मुक्ति थी।

अब जीवन भर बिना कोई बात किए हुए भी शायद सुचिन्ता के दिन कट जाएँगे।

इसीलिए सुचिन्ता अकारण बोले जा रही थीं। कह रही थीं, "सीढ़ी के सामने किसने जूता रख दिया ? छिः छिः ऐसे भागमभाग के समय।"

कह रही थीं, "सारे सामानों को गिनकर गाड़ी में चढ़ाया है तो ? उतारते समय इन्हें फिर से गिन लेना।"

कह रही थीं, "छोटी बहू, तुम साथ जा रही हो, इसलिए निश्चिंत हूं। अकेली नीता के लिए दो-दो रोगियों को संभाल पाना कठिन होता। इस पागल को संभालना सरल नहीं है।"

सुचिन्ता और भी बहुत कुछ कह रही थीं। जिस सुचिन्ता को आज तक से इतनी बातें एक साथ करते हुए किसी ने देखा नहीं था।

हां, सुचिन्ता इस मंझधार से अपनी बातों का पतवार खेकर ही किसी तरह से अपने को उबार रही थीं। शायद उनकी नाव मझधार के पार चली गयी होती लेकिन दुर्भाग्य से पतवार हाथ में ही रह गयी और उनकी नाव अचानक एक चक्कर खाकर एकदम से उलट गयी।

गाड़ी पर चढ़ने के ठीक पहले सुशोभन अचानक मुंह फेरकर खड़े हो गये ! बोले, "मैं नहीं जाऊंगा, मेरी जाने की तबियत नहीं हो रही है।"

"पिताजी, गाड़ी का समय हो गया है—" नीता व्याकुल होकर अपने पिता की पीठ पर हाथ रखते हुए बोली, "देर होने से ट्रेन चली जायेगी।"

लेकिन सुशोभन इस व्याकुलता से जरा भी विचलित नहीं हुए। बोले, "जाने दो। मुझे यहां की याद सता रही है।"

"सुशोभन !"

सुचिन्ता नजदीक आकर बोलीं, "क्या कर रहे हो ? देखते नहीं नीता को तकलीफ हो रही है।"

अचानक सुशोभन शेर की तरह दहाड़ उठे, "और मुझे ? मुझे तकलीफ नहीं हो रही है ? समझ नहीं पा रही हो कि तुम्हारे लिए मेरा मन जाने कैसा-कैसा करने लगा है।"

पड़ोसियों और राह चलते हुए लोग रुककर इस नजारे को देखने लगे। उनकी ओर देखकर निरुपम गाड़ी से उतर पड़ा। दबी हुई मगर क्रुद्ध आवाज में बोला, "क्या बचपना कर रहे हैं, खुद ही तो जाने के लिए परेशान हो गये थे।"

"हुआ था। लेकिन अब नहीं हूं। बस। चलो सुचिन्ता, चलो, हम लोग चलकर कहीं छिप जाएं।"

सुशोभन ने गाड़ी की ओर से मुंह फेर लिया।

समय तेजी से बीत रहा था। नीता अनुनय भरे स्वर में बोली, "मैं तुम्हें फिर ले आऊंगी पिताजी, अब आज चलो।"

लेकिन पागल भी भला अनुनय से पिघलता है ?

पागल अपनी ही जिद में बोला, "नहीं जाऊँगा। कह रहा हूँ न कि तबियत
हीं हो रही है।"

ड्राइवर ने अपनी खीझ व्यक्त की, अशोका व्यग्र होकर बोली, "अब आइये
ले भैया।"

"आह, तुम क्यों बकबक कर रहे हो ? कौन हो तुम ?"

निरुपम ने अपनी बातों पर बल देते हुए कहा, "बीच रास्ते में क्या कर
हे हैं ? गाड़ी में चढ़िये। नहीं तो विवश होकर जबर्दस्ती—"

सुनकर सुशोभन जैसे भयभीत हो गये, दिशाहारा आर्तनाद करते हुए बोले,
सुचिन्ता, ये लोग मुझे जबर्दस्ती ले जा रहे हैं। तुम रोक लो। तुमने कहा था
तुम मुझे रोक लोगी, जाने नहीं दोगी।"

नहीं अब द्विधाग्रस्त होने से काम नहीं चलेगा।

सारी लज्जा और संकोच को इस दुनिया में रक्त-मांस वाले साढ़े तीन हाथ
मनुष्य को ही वहन करना पड़ता है।

उस दुःसह को संहृत करके सुचिन्ता आगे बढ़कर कड़े स्वर में बोली, "सुशो-
न, गाड़ी में चढ़ जाओ।"

"नहीं चढ़ूँगा—" सुशोभन के स्वर में अब कातरता नहीं थी, रूठे हुए
वर में बोले, "मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगा।"

"नहीं, मेरी बात सुनोगे। सुशोभन जिद नहीं करनी चाहिए। बातें न मानने
लोग निन्दा करेंगे—"

"निन्दा करें—" वे पिंजड़े में बंद शेर की तरह दहाड़ उठे, "मेरे ठेंगे से।
परवाह नहीं करता।"

"छिः सुशोभन। ऐसा क्यों कर रहे हो ? तुम ठीक हो गये हो ?"

"नहीं, नहीं, नहीं। मैं बिल्कुल नहीं ठीक होऊँगा। मैं ठीक होना नहीं
हता। तुम मुझे धोखे से ठीक करके भगाना चाहती हो। मैंने तुम्हारी चालाकी
कड़ ली है।"

सुशोभन दरवाजे की तरफ बढ़ने लगे।

नीता कातर होकर बोली, "बड़े भैया, अब क्या होगा ?"

अशोका कातर होकर पुकारने लगी, "मँझले भैया यह क्या कर रहे हो ?
म सभी लोग दिल्ली चल रहे हैं न। साथ में आपके संडा-गुंडा भी हैं।"

"रहने दो। तुम न जाने कौन मुझे समझाने आयी हो ! मैं तुममें से किसी
ो भी नहीं पहचानता। बस।"

अनुपम बिगड़ते हुए बोला, "देखती हूँ बिना जबर्दस्ती किए मानेंगे नहीं।
ाँ, तुम अंदर जाओ। मैं जिस तरीके से भी होगा—आइये। चले आइये, नहीं
ो गाड़ी छूट जाएगी।"

निरुपम ने सुशोभन के कंधे के पास अपना हाथ रखा।

सुशोभन ने उस हाथ को तेज़ी से झटक दिया। बिगड़कर बोले, "जाओ, जाओ, गाड़ी छूट जाने दो।"

"क्या कह रहे हैं ?"

निरुपम दबी हुई क्रुद्ध आवाज में बोला, "माँ, तुम जाओ। मैं देखता हूँ—"

लेकिन वह क्या देखेगा ?

किसको देखेगा ?

जो पागल रास्ते में खड़े-खड़े 'सुचिन्ता, तुम मुझे रोक क्यों नहीं रही हो ?' कहकर चिल्ला सकता हो, उसको देखेगा ?

"नहीं होगा।"

सुचिन्ता ने निरुपम की ओर देखा।

"तुम लोग चले जाओ।"

"हम लोग चले जाएँ ?"

"उपाय क्या है ?"

"और तुम ?"

"मैं ?"

सुचिन्ता हँसने लगीं। बोलीं, "यहाँ तो सभी कुछ गड़बड़ हो गया है। लग रहा है अब इस पागल को लेकर मुझे जीवन भर नाकों दम होना पड़ेगा।"

वे सुशोभन की पीठ पर अपना हाथ रखकर उसे सहारा देती हुई अनुपम कुटीर के दरवाजे की ओर बढ़ चलीं।